

ब्रह्मवैवर्त पुराण



लेखकः

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद्, षट्-दर्शन, २० स्मृतियों

एव १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशकः

संस्कृति संस्थान
वरेली [उ०प्र]

प्रकाशकः

डा० चमनलाल गीतम
संस्कृति मंत्रालय, ग्वाजा कुतुब,
वरेली ।



लेखकः

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य



सर्वाधिकार सुरक्षित



मुद्रकः

शेखर प्रिण्टलीण्ड,
मुन्दायन दर्याजा, मथुरा ।



प्रथम संस्करणः

१९७०



मूल्यः

सात रुपये पन्नास पीसे

प्राकथन

'ब्रह्म वैवर्त पुराण' अठारहो पुराणों में एक दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखता है। अन्य पुराणों में जहाँ 'प्रधिकांश वर्णन पाँच मुख्य विभागों में सम्बन्धित होते हैं, वहाँ 'ब्रह्म वैवर्त' में सृष्टि की उरसि का थोड़ा-सा वर्णन कर देने के अनिश्चित शेष में ऐसी कथाएँ और साम्प्रदायिक माधनाएँ और उरासनाएँ दी हैं, जो अन्यत्र बहूँ ही कम पाई जाती हैं। इसके सभी कथानकों में कुछ नवीनता है और कितनी बातें तो ऐसी हैं जिनका अन्य किसी भी पुराण में उल्लेख नहीं है। इसीलिए प्रारम्भ में दी गई 'अनुकुराणिका' में लेखक ने स्वयं कह दिया है—

पुराणोपुराणाना वेदाना भ्रम भजनम् ।
हरिभक्ति प्रदं सर्वतत्त्वज्ञान विविद्धं नम् ॥
कामिनां कामदञ्ज्वेद मुमुक्षूणाञ्च मोक्षदम् ।
भक्तिप्रद वैष्णवाना कल्पवृक्षस्वरूपकम् ॥

अर्थात् 'समस्त पुराणों और उप-पुराणों तथा वेदों के भ्रम का भंजन करने वाला, हरि-भक्ति का उत्पादक, समस्त तात्त्विक ज्ञान की वृद्धि करने वाला, कामियों को कामना की पूर्ति करने वाला और मोक्षाभिलाषियों को मोक्ष दिलाने वाला, वैष्णव जनो को भावत् भक्ति का मार्गदर्शक यह 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' है। इस प्रकार इसे एक कल्पवृक्ष ही समझना चाहिए।' आगे चल कर फिर कहा है—

सारभूत पुराणेषु केवल वेदसम्मितम् ।
ततो गणेशखडेच तज्जगम परिहोतितम् ।

मान्यता अत्रश्य ही विचारणीय है । पञ्च भूतों से निर्मित यह पृथ्वी और इसी प्रकार के अन्य पिंडों की तथा उनमें निवास करने वाले मनुष्यों, देव-देवियों तथा अन्य प्राणियों की संख्या अनन्त है, इस तथ्य को उसमें बलपूर्वक प्रतिपादित किया गया है । उसका कथन है—

“विश्व समस्त है और उन अमर्य विश्वों में से प्रत्येक विश्व में इसी प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि होते हैं । पानाल से ब्रह्मलोक के अन्त तक एक ब्रह्माण्ड बताया गया है । उसके ऊपर वैकुण्ठलोक है जो इस ब्रह्माण्ड से बाहर है । उसके भी ऊपर गोलोक है जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन का है । यह गोलोक धाम नित्य-सत्य स्वरूप वाला है । जिस प्रकार भगवान् कृष्ण का स्वरूप नित्य है वैसे ही उनके ‘गोलोक’ का होना है । यह पृथ्वी तन का मण्डल सात द्वीपों में सीमित है । इनमें सात महामागर भी हैं जिनमें उनवास उपद्वीप अवस्थित हैं । सहस्रों पर्वत और वन भी हैं । ऊपर के भाग में ब्रह्मलोक से युक्त सात स्वर्लोक होते हैं और नीचे के भाग में पानाल भी सात हैं । इस प्रकार यह पूरा ब्रह्माण्ड है जिसमें ऊपर और नीचे चौदह भुवन होते हैं ।”

“ये समस्त लोक कृत्रिम हैं और धरा के अन्तर्गत ही हैं । इस धरा के का नाग होने पर वे सब भी नष्ट हो जाते हैं । जल के बुदबुदों के समान ही समस्त विश्वों के समुदाय अनित्य हैं । केवल ‘गोलोक’ और ‘वैकुण्ठ’ नित्य हैं—सत्य है और निरन्तर अकृतिम हैं । इनके लोमकूपों में से प्रत्येक में एक ब्रह्माण्ड स्थित है । ऐसे ये कितने ब्रह्माण्ड हैं इनकी गिनती स्वयं भगवान् भी नहीं कर सकते, अन्य कोई तो इसे जान ही क्या सकता है ? प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव पृथक्-पृथक् दृष्टा करते हैं । देव गण की संख्या तीन करोड़ है और प्रत्येक

ब्रह्माण्ड में इतने ही देव रहते हैं । दिशाओं के स्वामी, दिक्पाल, नक्षत्र और गह आदि भी प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहते हैं ।”

यद्यपि 'ब्रह्मवैवर्त' का यह वर्णन पौराणिक भाषा में है, पर लोको और ब्रह्माण्डों के घनत्व होने के सम्बन्ध में उसने जो कुछ विचार प्रकट किया है वही आज का विज्ञान कह रहा है । वर्तमान समय में जो करोड़ों रुपया लगा कर महा विशाल दूरबीनें बनाई गई हैं उनके द्वारा भवलोकन करने से विदित होता है कि आकाश में विश्व-ब्रह्माण्डों की कोई सरस ही नहीं है । पचास वर्ष पहले बनी दूरबीनों द्वारा ही जिनने तारागण (सूर्य) आकाश में दिखाई पड़ते थे उनकी संख्या शरबो मानी गई थी । और अब जितनी अधिक शक्तिशाली दूरबीन बनती है उनमें और भी नये ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ने जाते हैं । ये कितने बड़े क्षेत्र में फैले हैं इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती । बिजली और प्रकाश की गति एक सैकड़ में होने दो लाख मील मानी गई है । अगर कोई घन्टा इसी गति में चलना चाय तो करोड़ वर्ष में वह, जितने विश्व (सौर लोक) दिखाई पड़ रहे हैं उनके सौ बें भाग तक भी नहीं पहुँच सकता । इस दृष्टि में पुराणकार का कथन सत्य है कि समस्त लोकों और ब्रह्माण्डों की गणना कोई नहीं कर सकता यथार्थ ही है । एक ऐसे युग में जब कि इन साधारण चन्द्रमा को, जो केवल दो लाख मील की दूरी पर है, सूर्य से ऊपर मानते थे, विश्व-ब्रह्माण्ड के विस्तार का इतना अनुमान कर लेना भी कम महत्वपूर्ण नहीं था ।

राधा-रहस्य—

यद्यपि अन्य पुराणों में तथा प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में राधा के सम्बन्ध में किमी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलना, पर 'ब्रह्मवैवर्त' में वही सर्वत्र व्याप्त है और उनका महत्व समस्त देव-देवियों से अधिक माना

गया है। यद्यपि इनमें उनके साकार रूप का वर्णन किया है और उनके रास-विनाम में श्रृङ्गार-रस की पराकृष्टा कर दी है। फिर भी जब हम गाथा चरित्र का विवेचन करते हैं, तो वह परमात्मा की निराहार शक्ति ही प्रतीत होती है। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'राधिकाख्यान' में कहा गया है—

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रास मण्डले ।
 शतशृ गैक्रदेशे च मालती मल्लिका वने ॥
 रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पति ।
 स्वेच्छामयश्च भगवान् वभूव रमणोत्सुकः ॥
 रमण कर्तुं मच्छ्वा च तद्वभूव सुरेश्वरी ।
 इच्छाया च भवेत् सवत्स्य स्वेच्छामयस्य च ॥
 एतस्मिन्तन्यरे दुर्ग द्विधारूपो वभूव सः ।
 दक्षिणांगश्च श्रीकृष्ण वामार्द्धांगश्च राधिका ॥

अर्थात् प्राचीन समय में उस वृन्दावन में जो गोलोक के रास मंडल में स्थित है, गतश्रृङ्ग स्थान पर, जहाँ मालती और मल्लिका की लताओं का वन है, एक रत्न सिंहासन पर जगत स्वामी श्रीकृष्णजी विराजमान थे। उन अत्रपर पर उनकी रमण की भावना उत्पन्न हुई। भगवान् अपनी इच्छा से परिपूर्ण हैं, इस लिये जैसे ही इच्छा हुई वैसे ही सुरेश्वरी उपस्थित हो गई। उस स्वेच्छामय भगवान् की इच्छा मात्र से सब कुछ हो जाता है, उसमें किंचित् विलम्ब नहीं हुआ करता। इस लिए रमण-इच्छा होते ही वे दो रूपों में बँट गये। दाहिना भाग श्रीकृष्ण रूप हो गया और बायाँ भाग राधिका के रूप में हो गया।

यह वर्णन अलंकारिक रूप से 'अर्धनारीश्वर' सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। जैसा हम अन्य पुराणों में भी लिख चुके हैं, भू-

मण्डल पर एक युग ऐसा भी था जब इस पर निवास करने वाले प्राणियों में नर-मादा का भेद न था। उसके कारण जीव जगत की प्रगति रुकी हुई थी। तब उनमें क्रमशः परिवर्तन होने लगा और ब्रह्मा जी की 'मैथुनी सृष्टि' प्रकट हो गई। यह सिद्धान्त इतना स्वाभाविक है कि केवल हमारे पुराणों में इसका उल्लेख नहीं किया गया है, बरन अन्य धर्मों के ग्रन्थों में भी यह पाया जाता है। ईसाइयों की वाइबिल' में कहा गया है कि जब भगवान् ने सप्ताह में 'आदम' (आदिमानव) को मण्डला देखा तो उसकी बायीं पसली निकाल कर उसे एक स्त्री के रूप में निर्मित कर दिया। वही 'आदम' की पत्नी 'हवा' हुई। वर्तमान समय में विक्रम विज्ञान का अनुशीलन करने वाले वैज्ञानिक भी यही मानते हैं कि नर-मादा की रचना मृष्टि के आदिज्ञान की नहीं है बल्कि बीन क' किसी युग में यह विभाजन क्रमशः हुआ है। एक ग्रन्थ मत के 'पुनाण' में भी कहा गया है कि 'मैथुनी सृष्टि' से पूर्व सप्ताहमें जो प्राणी थे वे 'जुगलिय' थे, अर्थात् नर-मादा एक साथ पैदा होते थे।

इस प्रकार राधा-वृष्ण ही विश्व सञ्चालक सत्ता के दो रूप हैं। वर्तमान जगत में भी हम देखते हैं कि नर और मादा का संयोग हुए बिना सृष्टि क्रम आगे नहीं बढ़ता, उसी के आकार पर मानव के मन ने विश्व नियन्त्रा शक्ति को भी उसी प्रकार के दो विभागों में विभाजित कर दिया है। इसके पश्चात् भक्तिमार्गीय विद्वानों ने अनेक प्रकार से उसकी व्याख्या करके उसे दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप दे दिया। इंगी अध्याय में राधा की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

रा शब्दोच्चारणाद्भवती याति मुक्तिं सुदुर्लभाम् ।

धा शब्दोच्चारणात् दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ॥

रा इत्यादानवचनो धाव निर्वाण वाचकः ।

सतोऽवाप्नोति मुक्तिञ्च सा च राधा प्रकीर्तिता ॥

अर्थात् 'राधा' शब्द में 'रा' का उच्चारण करने से भक्त दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है और 'धा' के उच्चारण से भगवत् पद की तरफ दौड़ कर जाता है । 'रा' का अक्षर आदान वाचक है और 'धा' निर्वाण वाचक कहा गया है । इसलिये जिससे मनुष्य मुक्ति-पद को प्राप्त होता है उसी को 'राधा' कहा गया है ।”

राधा की 'अर्ध नारीश्वर' वाली उत्पत्ति को जान कर और उसके नाम के दोनों अक्षरों के आशय को समझ कर उसमें दोष या दुर्भावना का कोई कारण नहीं कहा जा सकता । चाहे दार्शनिक और योग मार्ग के अनुयायी इन बातों को महत्व देने को प्रभुत न हों, पर भक्ति-मार्ग वालों में इस प्रकार का भाव बहुत अधिक कल्याणकारी माना गया है । वर्तमान समय में जिस प्रकार सामान्य जनता राधा-कृष्ण की रास-लीलाओं को देख कर उनको केवल मुरली बजाने और नाचने वाला समझ बैठी है, वह बात उपरोक्त विवेचन में कहीं दिखाई नहीं पड़ती । इस रूप में 'राधा' की साधना एक उच्च आध्यात्मिक मार्ग सिद्ध हो सकती है और हमारे देश देश में एकाध सम्प्रदाय इसी भाव से उपासना करके अध्यात्म-क्षेत्र में प्रगति कर भी चुका है ।

गणेश-जन्म का अद्भुत वृत्तान्त—

यद्यपि शिवजी को पुराणों में महान जितेन्द्रिय बतलाया गया है, जिन्होंने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया, अर्थात् उस पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली, फिर भी सब देवताओं ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये हर तरह से जोर लगा कर उनका विवाह करा ही दिया । इससे उनके दो पुत्र भी हुए पर उन दोनों के ही जन्म में बड़े विघ्न आये । प्रथम पुत्र स्कन्द कुमार तो जन्मते ही माँ-बाप से अलग हो गये और उनका पालन-पोषण अज्ञात रूप से हुआ । दूसरे गणेशजी का भी जन्म

लेने के कुछ देर ही पश्चात् मस्तक कट गया और उनको हाथीका मस्तक जोड़ा गया, जिससे वे गज वदन और लम्बोदर बन गये । ये कथाएँ तो थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में सभी पुराणों में पाई जाती हैं, पर 'ब्रह्मवैवर्त' के रचयिता ने इन अप्रिय घटनाओं के कारणों पर जो प्रकाश डाला है उसमें उसकी अपूर्व सूक्ष्म ब्रह्म का पता लगता है । दक्षिण शास्त्रों में यह भी कह दिया गया है कि सभी देवता भनादि हैं, तो भी गणेशजी की उत्पत्ति और जीवनी एक विशेष विचित्रता प्रकट रखती है, और उसका रहस्य 'ब्रह्मवैवर्त' के मिथ्या भ्रम-यत्र कदाचित् ही मिल सके ।

✓ गणेश-जन्म की कथा के सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक पर यह श्रद्धा की जाती है कि भगवान् ने हाथी का ही मस्तक काट कर क्यों लगाया ? क्या वे किसी मनुष्य का ही मस्तक नहीं लगा सकते थे ? इसका समाधान करते हुए 'ब्रह्मवैवर्त' में कहा गया है कि जिस हाथी का मस्तक लगाया गया था, उसके मस्तक पर कुछ समय पूर्व इन्द्र और रम्भा न वह फूल रख दिया था, जिसकी दुर्वासा ऋषि विशेष रूप से विष्णु भगवान् के यहाँ से ले ये थे । उसी पुराण के फल से हाथी न यह सम्मान प्राप्त किया ।

दूसरी कथा गणेशजी के एक दन्त होने की है । इस सम्बन्ध में कहा गया है कि जब परशुराम जी बड़े बड़े राजाओं पर विजय प्राप्त करके शिवजी और पार्वती के दर्शनार्थ पहुँचे तो गणेशजी ने उनको भीतर जाने से रोका, क्योंकि भीतर शिव-पार्वती एकान्त में विराजमान थे । परु परशुरामजी बार बार ध्याग्रह करते रहे और जब गणेश ने उनको मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने उन पर परशु से धाकमाण किया जिससे गणेशजी का एक दात टूट गया ।

ऐसी कथाएँ प्रायः मनोरञ्जन वा साधन ही होती हैं, फिर भी

मान्यता अवश्य ही विचारणीय है । पञ्च भूतों से निर्मित यह पृथ्वी और इसी प्रकार के अन्य पिण्डों की तथा उनमें निवास करने वाले मनुष्यों, देव-देवियों तथा अन्य प्राणियों की संख्या अनन्त है, इस तथ्य को उसमें बलपूर्वक प्रतिपादित किया गया है । उसका कथन है—

“विश्व असंख्य है और उन असंख्य विश्वों में से प्रत्येक विश्व में इसी प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि होते हैं । पाताल से ब्रह्मलोक के अन्त तक एक ब्रह्माण्ड बताया गया है । उसके ऊपर वैकुण्ठलोक है जो इस ब्रह्माण्ड से बाहर है । उसके भी ऊपर गोलोक है जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन का है । यह गोलोक धाम नित्य-सत्य स्वरूप वाला है । जिस प्रकार भगवान् कृष्ण का स्वरूप नित्य है वैसे ही उनके ‘गोलोक’ का होता है । यह पृथ्वी तन का मण्डल सात द्वीपों में सीमित है । इसमें सात महासागर भी हैं जिनमें उनचास उपद्वीप अवस्थित हैं । सहस्रों पर्वत और वन भी हैं । ऊपर के भाग में ब्रह्मलोक से युक्त सात स्वर्लोक होते हैं और नीचे के भाग में पाताल भी सात हैं । इस प्रकार यह पूरा ब्रह्माण्ड है जिसमें ऊपर और नीचे चौदह भुवन होते हैं ।”

“ये समस्त लोक कृत्रिम हैं और धरा के अन्तर्गत ही हैं । इस धरा के का नाश होने पर वे सब भी नष्ट हो जाते हैं । जल के बुदबुदों के समान ही समस्त विश्वों के समुदाय अनित्य हैं । केवल ‘गोलोक’ और ‘वैकुण्ठ’ नित्य हैं—सत्य है और निरन्तर अकृतिम हैं । इनके लोमकूपों में से प्रत्येक में एक ब्रह्माण्ड स्थित है । ऐसे ये कितने ब्रह्माण्ड हैं इनकी गिनती स्वयं भगवान् भी नहीं कर सकते, अन्य कोई तो इसे जान ही क्या सकता है ? प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव पृथक्-पृथक् हुआ करते हैं । देव गण की संख्या तीन करोड़ है और प्रत्येक

ब्रह्माण्ड में इतने ही देव रहते हैं। दिशाघो के स्वामी, दिग्पाल, नक्षत्र और ग्रह आदि भी प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहते हैं।”

यद्यपि ‘ब्रह्मवैवर्त’ का यह वर्णन पौराणिक भाषा में है, पर लोको और ब्रह्माण्डों के घनत्व होने के सम्बन्ध में उसने जो कुछ विचार प्रकट किया है वही आज का विज्ञान कह रहा है। वर्तमान समय में जो करोड़ों हथिया लगा कर महा विशाल दूरबीनों बनाई गई हैं उनके द्वारा अवलोकन करने से विदित होता है कि आकाश में विश्व-ब्रह्माण्डों की कोई सख्या ही नहीं है। पचास वर्ष पहले बनी दूरबीनों द्वारा ही जितने तारागण (सूर्य) आकाश में दिखाई पड़ते थे उनकी सख्या अरबों मानी गई थी। और अब जितनी अधिक शक्तिशाली दूरबीन बननी हैं उनमें और भी नये ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ने जाते हैं। ये कितने बड़े क्षेत्र में फैले हैं इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। बिजली और प्रकाश की गति एक सैकण्ड में पौने दो लाख मील मानी गई है। अगर कोई ग्रन्थ इसी गति से चलना जाय तो करोड़ वर्ष में वह, जितने विश्व (सौर लोक) दिखाई पड़ रहे हैं उनके सौ वे भाग तक भी नहीं पहुँच सकता। इस दृष्टि से पुराणकार का कथन सत्य है कि समस्त लोकों और ब्रह्माण्डों की गणना कोई नहीं कर सकता यथार्थ ही है। एक ऐसे युग में जब कि इन साधारण चन्द्रमा को, जो केवल दो लाख मील की दूरी पर है, सूर्य से ऊपर मानते थे, विश्व-ब्रह्माण्ड के विस्तार का इतना अनुमान कर लेना भी कम महत्वपूर्ण नहीं था।

राधा-रहस्य—

यद्यपि अन्य पुराणों में तथा प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में राधा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता, पर ‘ब्रह्मवैवर्त’ में वही सर्वप्रथम ग्रास है और उनका महत्व समस्त देव-देवियों से अधिक माना

गया है। यद्यपि इनमें उनके साकार रूप का वर्णन किया है और उनके रास-विज्ञान में श्रुङ्गार-रस की पराकृष्टा कर दी है। फिर भी जब हम राधा चरित्र का विवेचन करते हैं, तो वह परमात्मा की निराकार शक्ति ही प्रतीत होती है। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'राधिकाख्यान' में कहा गया है—

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रास मण्डले ।
 शतश्रु गैऋदेशे च मालती मल्लिका वने ॥
 रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पति ।
 स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव रमणोत्सुकः ॥
 रमण कर्तुं निच्छा च तद्बभूव सुरेश्वरी ।
 इच्छाया च भवेत् सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥
 एतस्मिन्तन्यरे दुर्गं द्विधाराूपो बभूव सः ।
 दक्षिणांगश्च श्रीकृष्ण वामार्द्धांगश्च राधिका ॥

अर्थात् प्राचीन समय में उन वृन्दावन में जो गोलोक के रास मंडल में स्थित है, शतश्रु म्दन पर, जहाँ मालती और मल्लिका की लताओं का वन है, एक रत्न सिंहासन पर जगत् स्वामी श्रीकृष्णजी विराजमान थे। उन अचनर पर उनकी रमण की भावना उत्पन्न हुई। भगवान् अपनी इच्छा से पत्निका हैं, इस लिये जैसे ही इच्छा हुई वैसे ही सुरेश्वरी उपस्थित हो गईं। उस स्वेच्छामय भगवान् की इच्छा मात्र से सब कुछ हो जाता है। हमें विचित्र विस्मय नहीं हुआ करता। इस लिये रत्न-इच्छा होने ही हो जाने में बँट गये। दाहिना भाग श्री कृष्ण का हो गया और बाँया भाग राधिका के रूप में हो गया।'

यह वर्णन अत्यन्त ही 'अर्धनारीश्वर' सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। जैसा हम अन्य दुराणों में भी लिख चुके हैं, भु-

मण्डल पर एक युग ऐसा भी था जब इस पर निवास करने वाले प्राणियों में नर-मादा का भेद न था । उसके कारण जीव जगत की प्रगति रुकी हुई थी । तब उनमें क्रमशः परिवर्तन होने लगा और ब्रह्मा जी की 'मैचुरी सृष्टि' प्रकट हो गई । यह सिद्धान्त इतना स्वाभाविक है कि केवल हमारे पुराणों में इसका उल्लेख नहीं किया गया है, वरन् अन्य धर्मों के ग्रन्थों में भी यह पाया जाता है । ईसाइयों की बाइबिल में कहा गया है कि जब भगवान ने समार में 'आदम' (आदि मानव) को प्रकृति देखा तो उसकी बायीं पसली निकाल कर उसे एक स्त्री के रूप में निर्मित कर दिया । वही 'आदम' की पत्नी 'हवा' हुई । वर्तमान समय में विकास विज्ञान का अनुशीलन करने वाले वैज्ञानिक भी यही मानते हैं कि नर मादा की रचना सृष्टि के आदिकाल की नहीं है वरन् बीन क किमी युग में यह विभाजन क्रमशः हुआ है । एक अन्य मत के 'पुराण' में भी कहा गया है कि 'मैचुरी सृष्टि' से पूर्व ससारमें जो प्राणी थे वे 'जुगलिय' थे, अर्थात् नर-मादा एक साथ पैदा होते थे ।

इस प्रकार राधा-कृष्ण ही विश्व सञ्चालक सत्ता के दो रूप हैं । वर्तमान जगत् में भी हम देखते हैं कि नर और मादा का संयोग हुए बिना सृष्टि क्रम आगे नहीं बढ़ता, उसी के आधार पर मानव के मन में विश्व नियन्त्रा शक्ति को भी उसी प्रकार के दो विभागों में विभाजित कर दिया है । इसके पश्चात् भक्तिमार्गीय विद्वानों ने अनेक प्रकार से उसकी व्याख्या करके उसे दार्शनिक और प्राध्यात्मिक रूप दे दिया । उसी प्रणय में राधा की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

रा गच्छोच्चारणाद्भवती याति मुक्तिं मुदुर्लभाम् ।

धा शब्दाच्चारणात् दुर्गे धात्तयेव हरे. पदम् ॥

रा इत्यादानवचनो धात्तु निर्वाणो धात्तुः ।

ततोऽप्राप्नोति मुक्तिञ्च सा च राधा प्रकीर्तिता ॥

अर्थात् 'राधा' शब्द में 'रा' का उच्चारण करने से भक्त दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है और 'धा' के उच्चारण से भगवत् पद की तरफ दौड़ कर जाता है। 'रा' का अक्षर आदान वाचक है और 'धा' निर्वाण वाचक कहा गया है। इसलिये जिससे मनुष्य मुक्ति-पद को प्राप्त होता है उसी को 'राधा' कहा गया है।"

राधा की 'अर्ध नारीश्वर' वाली सत्पति को जान कर और उसके नाम के दोनों अक्षरों के आशय को समझ कर उसमें दोष या दुर्भावना का कोई कारण नहीं कहा जा सकता। चाहे दार्शनिक और योग मार्ग के अनुयायी इन बातों को महत्व देने को प्रस्तुत न हों, पर भक्ति-मार्ग वालों में इस प्रकार का भाव बहुत अधिक कल्याणकारी माना गया है। वर्तमान समय में जिस प्रकार सामान्य जनता राधा-कृष्ण की रास-लीलाओं को देख कर उनको केवल मुरली बजाने और नाचने वाला समझ बैठे हैं, वह बात उपरोक्त विवेचन में कहीं दिखाई नहीं पड़ती। इस रूप में 'राधा' की साधना एक उच्च आध्यात्मिक मार्ग सिद्ध हो सकती है और हमारे देश देश में एकाध सम्प्रदाय इसी भाव से उपासना करके अध्यात्म-क्षेत्र में प्रगति कर भी चुका है।

गणेश-जन्म का अद्भुत वृत्तान्त—

यद्यपि शिवजी को पुराणों में महान जितेन्द्रिय बतलाया गया है, जिन्होंने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया, अर्थात् उस पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली, फिर भी सब देवताओं ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये हर तरह से जोर लगा कर उनका विवाह करा ही दिया। इससे उनके दो पुत्र भी हुए पर उन दोनों के ही जन्म में बड़े विघ्न आये। प्रथम पुत्र स्कन्द कुमार तो जन्मते ही मां-बाप से अलग हो गये और उनका पालन-पोषण अज्ञात रूप से हुआ। दूसरे गणेशजी का भी जन्म

लेने के कुछ देर ही पश्चात् मस्तक बट गया और उसको हाथीका मस्तक जोड़ा गया, जिससे वे गज वदन और लम्बोदर बन गये । ये कथाएँ तो थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में सभी पुराणों में पाई जाती हैं, पर 'ब्रह्मवैवर्त' के रचयिता ने इन अप्रिय घटनाओं के कारणों पर जो प्रकाश डाला है उससे उसकी अपूर्व सूक्ष्म वृत्त का पता लगता है । यद्यपि शास्त्रों में यह भी बहू दिया गया है कि सभी देवता घनादि हैं, तो भी गणेशजी की उत्पत्ति और जोवनी एक विशेष विचित्रता अवश्य रखनी है, और उसका रहस्य 'ब्रह्मवैवर्त' के सिवाय अन्यत्र कदाचित् ही मिल सके ।

✓ गणेश-जन्म की कथा के सम्बन्ध में ग्रामतीर पर यह कथा की जाती है कि भगवान ने हाथी का ही मस्तक काट कर बंदो लगाया ? क्या वे किमी मनुष्य का ही मस्तक नहीं लगा सकते थे ? । इसका समाधान करते हुए 'ब्रह्मवैवर्त' में कहा गया है कि जिस हाथी का मस्तक लगाया गया था, उसके मस्तक पर कुछ समय पूर्व इन्द्र और रम्भा ने बहू फूल रख दिया था, जिसको दुर्वासा ऋषि विशेष रूप से विष्णु भगवान के यहाँ से लाये थे । उसी पुण्य के फल से हाथी ने यह सम्मान प्राप्त किया ।

दूसरी कथा गणेशजी के एक दन्त होने की है । इस सम्बन्ध में कहा गया है कि जब परशुराम जी बड़े-बड़े राजाओं पर विजय प्राप्त करके शिवजी और पार्वती के दर्शनार्थ पहुँचे तो गणेशजी ने उनकी भीतर जाने से रोका, क्योंकि भीतर शिव-पार्वती एकान्त में विराजमान थे । पर परशुरामजी बार बार 'धायहू करते रहे और जब गणेश ने उनको मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने उन पर परशु से आक्रमण किया जिससे गणेशजी का एक दात टूट गया ।

ऐसी कथाएँ प्रायः मनोरंजन का साधन ही होती हैं, फिर भी

पाठक उनसे सत्कर्मों के करने और पारस्परिक कलह में बचने की शिक्षा ले सकते हैं। गणेशजी की कथा जगह-जगह भिन्न प्रकार से कही गई है, पर 'ब्रह्मवैवर्त' की कथा सबसे अधिक पृथक है यह कहना ही पड़ेगा।

शृङ्गार-रस की अतिप्रधिकृता—

पर एक निरपेक्ष पाठक को 'ब्रह्मवैवर्त' की पढ़ने समय जो दान सबसे अधिक खटकती है, वह यही है कि लेखक ने अधिकांश कथाओं में घोर हास कर 'राधा-कृष्ण' के वर्णन में शृङ्गार-रस के वर्णन को इतना अधिक बढ़ा दिया है कि उनके औचित्य की सीमा से बाहर कहा जा सकता है। इन वर्णनों ने यह प्रतीत होता है कि हम पुराण की चाहे जितने लिखा हो कवि की दृष्टि से वह अवश्य ही शृङ्गार-रस का बहुत बड़ा प्रेमी था। इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र भी किया गया है पर 'ब्रह्मवैवर्त' में यह वर्णन जैसे खुले गवदों में किया गया है, उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। हमने ऐसे अनेक अर्थों को पढ़ने ही निकाल दिया है, फिर भी जो कुछ बचा है उसी में पाठकों को हमारे कथन की सच्चाई विदिन हो जायगी। पुराणकार ने शरद् पूर्णिमा को गोपियों के राम का वर्णन आरम्भ करते हुए राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन इन गवदों में किया है—

कटाक्ष कामवाणोच्च विद्धः क्रीडारनोन्मुखः ।
 मूच्छ्या प्राप्य न पयान तस्थौ न्यागु मनो हरिः ॥
 पयान मुग्धी तस्य क्रीडाकमलमुज्ज्वलम् ।
 द्वितीय पीन वस्त्राञ्च गिन्धिपिच्छं गरीरत ॥
 क्षणैर्न चेतनां प्राप्य यथीराधान्तिक मुद्रा ।
 कृत्वा वक्षसि तां प्राप्या समातिप्यचुचुम्ब सः ॥

श्रीकृष्ण स्पर्श मात्रेण सप्राप्य चेतना सती ।

प्राणाधिक प्राणनाथ समालिष्य चुचुम्बह ॥

मनोजहार राधायां कृष्णस्तस्थ च मा मुने ।

जगाम राधया सार्धं रतिको रतिमन्दिरम् ॥

रत्नप्रदीप सयुवत रत्नदपण सयुतम् ।

चारु चम्पक शय्याभिश्चन्दनाकनाभी राजितम् ॥

कपूर्वाश्विस्तताम्बूलैर्भोगद्रव्यै समन्वितम् ।

उवास राधयासार्धं कृष्णान्तत्र मुदान्वित ॥

अर्थात् 'राधा के सुन्दर स्वरूप को देख कर और उमर वरनाथ रूपी कामदेव के वरणों से विद्व होकर श्रीकृष्ण क्रीड़ा कर रहे थे उस मुख होत हुए एक क्षण के लिए बेसुध हो गये । पर वे भूतल पर गिरे नहीं, एक जड़ वस्तु के समान जहाँ क तहाँ अचल हो गये । उम भवसर पर उनकी मुरली और हाथ का वमन अवश्य हाथ से छूट कर भूमि पर गिर गया ऊपर ओढ़ा हुआ पीताम्बर तथा मोर-मुकुट भी टिसक कर गिर पड़े । पर दूमेरे ही क्षण उनकी चेतना तीट आई और उन्होंने राधिका के पास जाकर उसे हृदय से लिपटा लिया और बड़े प्रेम में चुम्बन किया । श्रीकृष्ण का स्पर्श पाते ही राधा भी चैन-य हो गई और उमने भी प्राणा स प्यार कृष्ण को गाढ आनिज्जन करके चुम्बन किया । उस समय कृष्ण ने राधा के और राधा ने कृष्ण के मन का हरण कर लिया था । रमिकाशिरोमाख श्रीकृष्ण फिर राधा के साथ रति मन्दिर में चल गये । वह रति मन्दिर रत्नों के दीवका से शाभित था और उसमें रत्ना के ही दपण लगे थे । वहाँ चम्पा के सुन्दर पुष्पों की शय्या लगी थी जो चन्दन से अचित थी । वह मन्दिर कपूर्व युवन ताम्बूल (पान के बीड़ों) आदि अन्नक भाग द्रव्यों से समन्वित था । वहाँ श्रीकृष्ण राधा के साथ अत्यन्त रूप युक्त हा विराजमान हुए ।'

श्रीकृष्ण और गोपियों के रास का वर्णन, 'विष्णु-पुराण' 'भागवत' तथा अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है। भागवत की 'रास पंचाध्यायी' तो एक बहुत प्रसिद्ध साहित्यिक रचना मानी गई है। पर इन सब में रास का वर्णन करते हुए और उष अवसर पर शृङ्गार रास की आवश्यकता को अनुभव करते हुए भी शालीनता की पूरी तरह रक्षा की गई है। विष्णु पुराण' में रास आरम्भ होने का वर्णन करते हुए लिखा है—

'तव श्रीकृष्ण ने किसी से प्रिय अलाप, किसी पर भ्रूभङ्गी से दृष्टि और किसी के कर ग्रहणपूर्वक उन्हें प्रगन्न करने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् उस उदारचेता ने उन प्रसन्न चित्त वाली गोपियों के साथ रास-विहार किया। उस समय कोई भी गोपी कृष्ण के के स्पर्श से पृथक् नहीं होना चाहती थी, इसलिये एक ही स्थान पर उनके स्थिर रहने से रास-मण्डल नहीं बन पाया। तब भगवान् श्रीहरि ने एक-एक गोपी का हाथ अपने हाथ में लेकर रास-मण्डल बनाया। उस समय श्रीकृष्ण ने चन्द्रमा, कौमुदी और कुमुदवन विषयक गीत गाये और गोपियाँ केवल श्रीकृष्ण के नाम का गान करने लगीं। फिर—

परिवृत्ति श्रमेणां च लह्वनयलापिनीम् ।

ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधु निघातिनः ॥

काचित्प्रबिलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्बतम् ।

गोपी गीतस्तुतिव्याजन्निपुराणा मधुसूदनम् ॥

'तभी एक गोपी नाचते-नाचते थक गई तो उसने कंकण की झनकार करते हुए अपनी बाहुलता श्रीकृष्ण के कण्ठ में डाल दी। एक अन्य चतुर गोपी गीत की प्रशंसा करने के मिस से अपनी बाहु फैला कर श्रीकृष्ण से लिपट गई और चुम्बन करने लगी।'

ता वार्यमाणा पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।

कृष्ण गोपांगना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥

“वे रतिप्रियाः गोपियाँ पति, पिता, भ्राता आदि के रोकने पर भी चली आई थीं और रति में श्रीकृष्ण के साथ रास-विहार करती थीं ।”

‘विष्णु पुराण’ में इससे अधिक चर्चा रासलीला की नहीं की गई है । जब इनकी अधिक गोपियाँ एक साथ रात्रिकालीन रास-नृत्य में भाग लेने आती थीं तो सम्भोग जैसी बात की चर्चा व्यर्थ ही होती है और पाठक का ध्यान प्रेम-प्रदर्शन तक ही जाता है ।

‘भागवत’ के वर्णन में स्पष्ट कह दिया गया है कि “वे गोपियाँ श्रीकृष्ण के पास ‘जार-बुद्धि’ से आई थीं, तो भी उन्होंने झालिगन तो परमात्मा—भगवान का ही किया था । उस समय उन्होंने अपनी मानसिक भावना द्वारा दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया था ।” आरम्भ में भगवान ने उनकी परीक्षा लेने के लिए समझाया भी कि वे इस समय अपने पतियों, घरों को छोड़ कर यहाँ कैसे चनी आई ? यह तो लोक-प्रथा के विरुद्ध कार्य है । इसलिए उनको तुरन्त वापस चले जाना चाहिए । पर जब इन बातों को सुन कर गोपियाँ व्याकुल हो गईं और रोने-रुनपने लगीं तो भगवान ने उन्हें प्रमत्त करने के निमित्त राम नृत्य प्रारम्भ किया—

“गोपियों का जीवन भगवान का प्रेम ही है । वे श्रीकृष्ण से सटकर नाचते नाचते ऊँचे स्वर से मधुर गान कर रही थीं । भगवान का स्पर्श रह रहा भी मानन्दपान हो रही थीं । उनके राग-रागिनियों के पूर्ण गान से यह जगन अब भी गूँज रहा है । एक गोपी नृत्य करते-करते थक गईं तो उसने जगन में ही खड़े श्याम सुन्दर के कंधे को अपने हाथ में कम कर पकड़ लिया । भगवान ने दूसरा हाथ अन्य गोपी के कंधे पर रखा हुआ था । एक गोपी नृत्य कर रही थी । नाचने के कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उसकी छटा से उसके कपोल और भी चमक रहे थे । उसने कपोलों को भगवान के गालों से सटा

दिया । श्रीकृष्णने अपने मुखका चवाया पान उसके मुखमें दे दिया । कोई गोपी नृपुर और करघनी के घुँघरुओं को झनकारती हुई नाच और गा रही थी । जब वह बहुत थक गई तो उसने वगल ही में खड़े मोहन प्यारे के शीतल हाथ अपने दोनों स्तनों पर रख लिए ।”

‘भागवत’ के रास-वर्णन का यही नमूना है । इसमें सन्देह नहीं कि यह पूर्ण शृंगार-रसयुक्त है, तो भी इसको यथा सम्भव अश्लीलता से दूर रखा गया है और कोई अनुचित शब्द प्रयोग में नहीं लाया गया । इस बात पर विवाद करना कि ऐसा कार्य उचित था या अनुचित बिल्कुल व्यर्थ है । ऐसे काव्य-ग्रन्थों के वर्णन सदैव कवि की कल्पना प्रतिभा, और रुचि के अनुसार लिखे जाते हैं, और उनके आधार पर कभी ऐसा निश्चय नहीं किया जा सकता कि ऐसा ही हुआ होगा । इस तो यहाँ केवल विभिन्न ग्रन्थों की वर्णन शैली की आलोचना कर रहे हैं, और यह बतलाना चाहते हैं कि ऐसे शृङ्गारमय वर्णनों में प्रेम युक्त हाव-भाव और व्यवहार का चित्रण करते हुए मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए । ऐसा करने से विद्वान उसे आपत्तिजनक बतलाते हैं और सर्व साधारण के पठन-पाठन के अयोग्य मानते हैं । इसीलिए भागवतकार इस वर्णन को करते हुए बीच-बीच में यह संकेत भी करते जाते हैं कि “यह भगवान की लीला है, इसमें दूषित भावनाओं का संशय रखना अनुचित है ।” इसको स्पष्ट करनेके लिए अन्तमें श्रीशुक-देवजी से कहलाया गया है—

एव शशाङ्कांशुविराजिमा निशाः स सत्यकामोऽनुरतावलागणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वा शरत्काव्य कथा रसाश्रयः ॥
विक्रीडितं ब्रजबधूभिरिदं च विष्णोः,
श्रद्धान्वितोऽनुश्रुगुयादथवगंवेद यः ।
भक्ति परां भगवयि प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगभाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

"निस्सन्देह गरद पूणिमा की उस अत्यन्त सुन्दर रात्रि में, त्रिसमें काव्यो में वलिण सभी रम सामग्रियां उपस्थित थीं, भगवान ने अपनी प्रेमी गोपियों के माथ यमुना पुलिन पर त्रिहार किया । पर यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान सत्य-संकल्प हैं । यह सब उनके चिन्मय संकल्प की चिन्मयी लीला है । और इस लीला में उन्होंने काम भाव को सर्वथा अपने अधीन—अपने आप में कैद करके रखा ।"

"जो घोर पुरुष व्रज-युवतियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण के चिन्मय रास विलास क श्रद्धा के साथ बार-बार श्रागु और वर्णन करता है, उसे भगवान के चरणों में परा भक्त की प्राप्ति होती है और बहुत ही शीघ्र अपने हृदय रोग—काम निकार से छुटकारा पा जाता है । उनका काम भाव मदा के लिए नष्ट हो जाता है ।"

भागवतकार ने श्रीकृष्ण की रास-लीला को मूल स्वरूप और उसके प्रभाव के विषय में जो कहा है वह एक विद्यार श्रेणी के साधकों के लिए मध्य हो सकता है । जो सच्चे हृदय से भक्त-मार्ग के पथिक बन चुके हैं और आरम्भ से ही सवम-नियम का पालन करने से जिनके अन्दर में सच्ची सात्विकता का उदय हो चुका है, वे अपने इष्टदेव का आश्रय लेकर ऐसी स्थिति में भी मन को पवित्र और सतत रख सकते हैं, पर यह मार्ग अल्प सहायक लोगों के लिए ही सम्भव है । बहुत-बुरक लोगों के लिए जो सामाजिक जीवन वर्जित करते हैं, यह मार्ग उत्थान के वशाप पान के माध्यम ही बन सकता है । इन मार्ग को ऐन ही माना जा सकता है जैसे किसी व्यक्ति को पीडा के लिए अपने सम्पुत्र धन और रूप का बहुत बड़ा प्रयोग रखना । यद्यपि सवार में ऐसे भी व्यक्ति पाये जाते हैं जो लाखों रुपये और धनुरम सौ रुप के प्रयोग को दुहरा कर स.य मार्ग पर दृढ रहते हैं पर उनकी अर्पणा दूसरी प्रकार के व्यक्तियों की सहाय बहुत अधिक है, जो अपने कहीं छोटे प्रयोग पर भी नित्य किरणते रहते हैं । चरित्र और नीति की उच्चता की जानते

हुए भी अतीति और चरित्र-हीनता के मार्ग पर चलने लग जाते हैं। इसलिए धार्मिक कथाओं और धर्म ग्रन्थों के वर्णन में संयम, नियम, सच्चरित्रता श्रेष्ठ नीति का ही वर्णन कल्याणकारी है।

उदाहरण के लिए हम गोस्वामी तुलसीदास की रामायण को ले सकते हैं। भक्ति की दृष्टि से वह इस युग की महान रचना है और साहित्य की दृष्टि से भी एक स्थायी निधि है। सब रसों का वर्णन उसमें पाया जाता है। जैसे धर्म की दृष्टि से, वैसे ही कवित्व की दृष्टि से वह जगत प्रसिद्ध है, पर उसमें एक भी वर्णन ऐसा नहीं जो पाठक पर विपरीत प्रभाव डाल सके। इस दृष्टि से 'ब्रह्मवैवर्त' में रास-क्रीड़ा के शृङ्गार विषयक वर्णन को जिस सीमा तक बढ़ा दिया गया है, उसे यदि न भी किया जाता तो ग्रन्थ की कोई हानि नहीं थी। यद्यपि इन सब लेखकों ने बीच-बीच में भगवान के आत्मस्वरूप होने और सर्वदा अनासक्त रहने की चर्चा करदी है, पर फिर भी सामान्य पाठकों पर ऐसी रचनाओं का प्रभाव अवांछनीय होने की ही आशंका रहती है। इस तथ्य को ध्यान में रख कर हमने इस प्रकार के वर्णनों को पृथक् कर दिया है, फिर भी कथा के बीच में कहीं ऐसी दो-चार बातें दिखाई पड़ें तो पाठकों को 'भागवतकार' के विवेचन को ध्यान में रख कर उससे भगवत्-भक्ति की प्रेरणा ही ग्रहण करनी चाहिए।

ब्रह्म-निरूपण—

यद्यपि 'ब्रह्मवैवर्त' के रचयिता ने राधा-कृष्ण और उनके निवास स्थान—गोलोक की महत्ता बढ़ाने में अतिशयोक्ति और अशुद्धियों से बहुत अधिक काम लिया है और उन्हीं को विश्व-ब्रह्माण्ड की सर्वोपरि आदिशक्ति बतलाया है, पर जहाँ 'ब्रह्म-निरूपण' के दार्शनिक विवेचन की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ वेदान्त सिद्धान्त को ही स्वीकार करना पड़ा है। जब नारद ने प्रश्न किया कि 'क्या ब्रह्म आकार वाला है अथवा

निराकार है ? उस ब्रह्म का विशेषण क्या है अथवा उसकी अविशेषता क्या है ?" तो उत्तर में यही कहा गया है—'परमात्मा का स्वरूप सनातन परमब्रह्म है, जो कि सबके देहों में स्थित रहता है और कर्मों का साक्षी रूप है। पाँच प्राण स्वयं विष्णु है, मन प्रजापति है, समस्त जान में (ब्रह्मा) हैं और शक्ति 'मूल प्रकृति' है। हम सब उसी परमात्मा के अधीन रहते हैं। उसके स्थित होने पर ही हम सब सस्थित होते हैं। उसके 'परम' में नले जान पर हम सब भी समाप्त हो जाया करते हैं, जैसे किसी राजा के साथ उसके अनुगामी भी चले जाया करते हैं। यह जीवात्मा उस परमात्म का ही प्रतिबिम्ब होता है और कर्मों के भोगने वाला हुआ करता है। वह ब्रह्म एक ही है। जब विश्व का ध्वंस हो जाता है तो हम सब उसी प्रलीन (समाविष्ट) हो जाते हैं और यह चराचर जगत भी उसमें प्रलीन हो जाता है। वह ब्रह्म केवल ज्योति स्वरूप है।'

जैसा हम कह चुके हैं राजा और कृष्ण के तत्व और लीलाओं को विस्तार पूर्वक बनलाने वाला प्रमुख पुराण यही है। यह काफी बड़ा है इसलिए अन्य पुराणों की तरह हमने इसमें से पुनरावृत्तियों और अधिक अतिशयोक्तिपूर्ण वचनों को छोड़ दिया है। अब इसमें पाठकों को अधिकतर ऐसी कथाएँ ही मिलेंगी। जिनमें कुछ नवीनता है अथवा जो ईश्वर-भक्ति की शिक्षा देती हैं। पर अलङ्कारयुक्त शृङ्गार रस की रचना करना इसके लेखक की विशेषता है। इसलिये रसिक प्रकृति के पाठकों और काव्य प्रेमियों को यह अधिक रुचिकर प्रतीत होगा। जैसे सभी पाठकों को इसमें अनक नवीन बातें मिलेंगी और वे इसके द्वारा पौराणिक कथाओं की विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

विषय-सूची

भूमिका

१-२४

* ब्रह्म-खण्ड *

१. अनुक्रमणिका वर्णनम्	२५
२. परब्रह्म निरूपणम्	३७
३. सृष्टि निरूपणम्—१	४२
४. सृष्टि निरूपणम्—२	५७
५. सृष्टि प्रकार वर्णनम्	६२
६. सृष्टि प्रकरणम्—१	७२
७. सृष्टि प्रकरणम्—२	७५
८. ब्रह्मपुत्र कृत सृष्टि प्रकरणम्	७६
९. ब्रह्मपुत्र व्युत्पत्ति कथनम्	८३
१०. शिवोक्ताह्निकाचार वर्णनम्	८८
११. ब्रह्म निरूपणम्	१०६

* प्रकृति खण्ड *

१२. प्रकृति चरित सूत्रम्	११६
१३. देवदेव्युत्पत्ति	१४४
१४. विश्वनिर्णय वर्णनम्	१५८
१५. सरस्वती पूजा विधानं मन्त्रश्च	१६८
१६. याज्ञवल्क्योक्त वाणो स्तवः	१७४
१७. पृथिव्युपाख्यानम्	१८०
१८. गंगोपाख्यानम्	१६०
१९. तुलस्युपाख्यानम्	२०१

२०. वेदवत्याश्चरित्रम्	२०६
२१. धर्मध्वजपत्न्यां माधव्या तुलस्या जन्म	२१६
२२. तुलस्य सह शखचूडस्य मेलन कथोपकथनञ्च	२२६
२३. शिवेन सह शखचूडस्य युद्धार्थं पुष्पदन्त प्रेरणाम्	२४०
२४. शिवेन सह युद्धार्थं गह्वचूडस्य कथोपकथनम्	२४६
२५. शिव-शखचूड युद्धम्	२५४
२६. तुलसी वृक्षस्य तत्पत्राणां च माहत्म्यम्	२५६
२७. सावित्रीपुपाख्यानम्	२६१
२८. कर्मविपाके सावित्री प्रश्नः	२६८
२९. कर्मविपाके कर्मनिरूप स्थान गमनम्	२७३
३०. यम-सावित्री सवाद वर्णनम्	२७७
३१. श्रीकृष्णगुण कीर्तनम्	२८०
३२. लक्ष्म्युपाख्यानम्	२८०
३३. इन्द्र प्रति दुर्वासस वाप	२८६
३४. महालक्ष्म्युपाख्याने विष्णुभक्तस्य शुभकथनम्	३०६
३५. स्वर्गोपाख्यानम्	३१२
३६. स्वर्गोपाख्यानम्	३२०
३७. पृथ्वी उत्पत्ति वर्णनम्	३२३
३८. सुरभी उपाख्यानम्	३३३
३९. राधिकाख्यानम्	३३८
४०. हरगौरी सम्वादे राधोपाख्यानम्	३४६
४१. दुर्गोपाख्यानम्	३५६
४२. राज्ञः सुरथस्थ वैश्य समाधेश्च विवरणम्	३६३
४३. सुरथ समाधि मेघस सवादे प्रकृति वैश्य सवाद	३७१
४४. श्रीकृष्ण कृत दुर्गा स्तोत्रम्	३७८

* गणपति खण्ड *

४५. गणेश-जन्म त्रिपयक प्रश्न	३८५
४६. क्रीडाविरतेन शिवेन देव दर्शनम्	३९२
४७. पार्वतीम्प्रति हरिब्रतकरणाय शिवस्योपदेशः	३९७
४८. स्तव प्रीतेन कृपणेन पार्वत्यै वर प्रदानं च	४०४
४९. हरीतिरीहते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम्	४१९
५०. गणेश दर्शनार्थं शनैश्चरागमनम्	५२६
५१. जनिना बालक दर्शनम्	४३२
५२. विघ्नेश विघ्न कथनम्	४४२
५३. गजमुख योजन हेतु कथनम्	४४६
५४. गणेशस्य एक दन्तत्वे विवरणम्	४६२
५५. ससैन्यस्य राज्ञो मुनितपोवने पुनर्गमनम्	४७०
५६. परशुरामेण राजसमीपे दूनप्रेषणम्	४८०
५७. गणेश्वर समीपे रामस्य शिविशिवादर्शन प्रार्थनम्	४८७

ब्रह्मवैवर्त पुराणम् ।

ब्रह्मखण्ड

१-अनुक्रमणिका वर्णनम्

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषा सुगञ्ज सर्वे मनवो मुनीन्द्रा ।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देवा प्रणमामि त विभुम् ॥१॥

स्थूलात् स्थूलतमा तनु दधत बिराज विश्वानि
लोमविवरेषु महान्तमाद्यम् ।

मृष्ट्योन्मुख स्वकलयापि ससर्जं सूक्ष्मा नित्या
समेत्य हृदि यस्तमज भजामि ॥२॥

ध्यायन्ते ध्याननिष्ठा सुरनरमनवो योगिनो योगरूढा,
सन्त स्वप्नेऽपि सन्त कतिकतिजनिभिर्यं न पश्यन्ति तत्पवा ॥

ध्याये स्वेच्छामय त त्रिगरापरमहो निर्विकार निरीह,
भक्तध्यानैकहेतोर्निरुपमरुचिरश्यामरूप दधानम् ॥३॥

वन्दे कृष्ण गुणातीत पर ब्रह्माच्युत यत ।

आविर्भव प्रकृतिप्रह्लाविष्णुशिवद्वय ॥४॥

अमृतपरमपूर्वं भारतीकामधेनु श्रुतिगणद्वैतवत्सो व्यापदेवो दुरोह ॥

अतिरुचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्तमेतत् पिवत
पिवत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम् ॥५॥

ओं नमो भगवते वासुदेवाय ।

इस अध्याय में ब्रह्माण्ड का वर्णन है । इस के आरम्भ में मङ्गला-
चरण किया जाता है और फिर अनुक्रमणिका को बताया गया है । जिस
सर्वव्यापक विभु को ब्रह्मा-गणेश-शिव-सुरेश-शेष और समस्त देवगण-मनु
मण्डल तथा मुनीन्द्र वर्ग-सरस्वती-श्री और गिरिजा आदि देवता नमन किया
करते हैं उसको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥ स्थूल से भी स्थूलतम शरीर को
धारण करने वाले-विराट् स्वरूप-जिसके लोम विवरों में समस्त विश्व
रहा करते हैं-महान्-आदि रूप और जो सृजन करने की ओर उन्मुख होता
हुआ जो अपनी कला से ही हृदय में नित्य सूक्ष्म को एकचित्त करके सृजन
करने वाला है या सृजन किया था उस अज को मैं भजता हूँ ॥२॥ योगा-
न्यास से समाधिस्थ होने वाले योगी लोग जो सुर-नर और मनुगण हैं वे
ध्यान में एकनिष्ठ होकर जिसका ध्यान किया करते हैं । ऐसे होते हुये भी
स्वप्न में भी रहने वाले उसको कितने ही जन्मों में भी तप करके नहीं देख
पाते हैं उस स्वेच्छामय-त्रिगुण से परे रहने वाले-विकाररहित एवं निरीह
तथा केवल भक्तों के ध्यान करने के हेतु से ही उपमा रहित परम सुन्दर
श्याम स्वरूप के धारण करने वाले का मैं ध्यान करता हूँ ॥३॥ गुणों से
अतीत अर्थात् पर-परब्रह्म-अच्युत कृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ जिससे प्रकृ-
ति-ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि समस्त प्रकट हुए थे ॥४॥ श्री मान् व्यास
देव ने श्रुति गण को वत्स बनाकर भारती रूपिणी काम धेनु से इस अपूर्व
परम अमृत का बोहन किया था । वह यह अत्यन्त सुन्दर-ब्रह्मवैवर्त पुराण
है । हे मुग्धो ! आप सब लोग इस अक्षय्य मिष्ट दुग्ध का बार-बार पान
करो और खूब करो ॥५॥ भगवान् श्री वासुदेव के लिये नमस्कार है ।

ओं नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

श्रौं भारते नित्या नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः ।
 नैमित्तिकी कृत्वा क्रियामूपुः कुशासने ॥१॥
 एतस्मिन्नन्तरे सौतिमागच्छन्तं यद्वच्छया ।
 प्रणतं सुविनीत तं विलोक्य ददुरासनम् ॥२॥
 तसम्पूज्यातिथिभक्त्याशौनकोमुनिपुङ्गवः ।
 पप्रच्छकुशलं शान्तं शान्तः पौराणिक मुदा ॥३॥
 वर्त्मायासविनिमुक्तं वसन्त सुस्थिरासने ।
 सस्मितं सर्वतत्त्वज्ञं पुराणानां पुराणवित् ॥४॥
 परं कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसुन्दरम् ।
 मङ्गलं मङ्गलाहञ्च सवदा मङ्गलालयम् ॥५॥
 सर्वमङ्गलवीजश्च सर्वदा मङ्गलप्रदम् ।
 सर्वमङ्गलविघ्नश्च सर्वसम्पत्कर वरम् ॥६॥
 हरिभक्तिप्रद शश्वत् सुखद भोक्षद भवेत् ।
 तत्त्वज्ञानप्रद दारपुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥७॥
 पप्रच्छ सुविनीतश्च विनीतो मुनिससदि ।
 यथाकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते ॥८॥

भगवान् श्री नारायण और नरी मे उत्तम नर को नमस्कार करके तथा
 भगवती सरस्वती देवी की वन्दना करके जय शब्द का उच्चारण करना
 चाहिए । भारत मे नैमिष नामक अरण्य मे शौनक आदि ब्रह्मर्षी महत्त
 ऋषिगण अपनी नित्य और नैमित्तिक क्रिया का सम्पादन करके कुशा के
 आसनो पर स्थित हुए थे ॥१॥ इसी अन्तर यद्वच्छया आते हुए सौति को
 प्रणत एव सुविनीत देख कर समस्त ऋषियो ने उनको आसन समर्पित किया
 था ॥२॥ मुनिगण मे परम श्रेष्ठ शौनक जी ने भक्ति भाव से उन अतिथि
 स्वरूप सौति को भली भाँति पूजा करके शान्त भाव वाले शौनक जी ने परम
 शान्त पौराणिक सौति मे प्रसन्नता के साथ कुशल पूछा था ॥३॥ मार्ग के
 आवास से विनिमुक्त होने वाले तथा सुस्थिर आसन पर बस करके हुए

मन्द स्मित से समन्वित-रामस्त तत्वों के ज्ञाता स्त जी से पुराणों के पुराने विद्वान शीनक जी ने कुशल प्रश्न किया था । उनके अनन्तर फिर उन मुनियों की सभा में जिस प्रकार से तारकों के मध्य में द्विजराज विराजमान रहता है उमी भाँति विराजते हुए अत्यन्त विनीत शीनक जी ने सुविनीत सीति से ऐसे पुराण के विषय में पूछा था जो श्री कृष्ण की कथा में युक्त हो - श्रुति मुन्दर-परम पुराण-मङ्गल और मङ्गल करने के योग्य हो- सदा मङ्गल का आलय हो- समस्त मङ्गलों का बीज-शश्वत सुख प्रदान करने वाला और मोक्ष देने वाला हो-तत्वों के ज्ञान का प्रदान करने वाला तथा रथी, पुत्र और पीछों के वर्धन करने वाला हो । ऐसा जो भी कोई पुराण हो उसके विषय में प्रश्न किया था ॥४-८॥

प्रस्थान भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम् ।

विमरगाःकंपुण्यदिनवत्स ! त्वद्दर्शनेन च ॥६॥

वयमेव कवी भीता विशिष्टज्ञानवजिताः ।

मुमुक्षुवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्त्वभिहागतः ॥१०॥

भवान् साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित् ।

गर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिकृपानिधिः ॥११॥

श्री कृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती ।

तत् कथ्यतां महाभाग ! पुराण ज्ञानवद्धंनम् ॥१२॥

गरीयसी या मोक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी ।

संसारसन्निवद्धानां निगड्छेदकृन्तनी ॥१३॥

भवदावाग्निदग्धानांपीयूषवृष्टिर्वपिणी ।

सुखदानन्ददा सीते ! शश्वच्चेतसिजीविनाम् ॥१४॥

शीनक ने कहा—इस समय आपका प्रस्थान कहाँ के लिये हुआ है याँद अब कहाँ से आए आ रहे हैं । आपका मङ्गल हो । हे वत्स ! आपके आज-दर्शन से क्या ही हम सबका पुण्य दिन है । हम सब इस कलियुग में बहुत ही

डरे हुए हो रहे हैं क्योंकि हम विशिष्ट ज्ञान से रहित हैं। भुक्ति पाने की इच्छा वाले हैं और इस सत्तार में मग्न हो रह हैं। उसी हेतु के लिये आपका आगमन यहाँ हो गया है। आप परम साधु महान भाग्य वाले और पुराणों में पुराण के परम देता है आप तो समस्त पुराणों में अत्यन्त निष्णात विद्वान् हैं और अत्यन्त वृषा के सागर हैं। जिससे श्री कृष्ण भगवान् में निरन्तर रहने वाली निश्चल भक्ति उत्पन्न होवे हे महाभाग। वही ज्ञान का वर्धन कराने वाला पुराण वर्णन कीजिए ॥ ६-१२ ॥ जो मोक्ष से भी बड़ी कर्मों के मूल का निवृत्तन करने वाली और सत्तार में सन्निबद्धों के निगडों का छेदन और वृत्तन करने वाली हो ॥१३॥ सत्तार रूपी दावानल से दग्ध प्राणियों के लिये पीयूष की गृष्टि करने वाली हो हे सीते। जो जीवों के चित्त में शश्वत् सुख देने वाली तथा आनन्द प्रदान करने वाली कथा हो उते कहिए ॥१४॥

यत्रादौ सर्ववीजश्चपरब्रह्मनिरूपणम् ।
 तस्य सृष्ट्योन्मुखस्यापिसृष्टेरुत्कीर्त्तन परम् ॥१५॥
 साकारवानिराकारपरमात्मस्वरूपकम् ।
 किमाकारञ्च तद्ब्रह्म तद्वचान किञ्च भावनम् ॥१६॥
 ध्यायन्ते वैष्णवा किम्वा किम्वा सन्तश्च योगिनः ।
 मत प्रधान वेपा वा गूढ वेदे निरूपितम् ॥१७॥
 प्रकृतेश्च य आकारो यत्र वत्स । निरूपित ।
 गुणाना लक्षणा यत्र महदादेश्च निर्णय ॥१८॥
 गोलोकवर्णन यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम् ।
 वर्णन शिवलोकस्य यत्रान्यत् स्वर्गवर्णनम् ॥१९॥
 अशानाञ्चकलानाञ्चयत्रसीते । निरूपणम् ।
 के प्राकृता काप्रकृति. कथात्मा प्रकृतो.पर ॥२०॥
 निगूढ जन्मयेपावादेवानादेवयोपिताम् ।
 समुत्पत्ति समुद्राणा शैलाना सरितामपि ॥२१॥

जिसमें आदि में सब के बीज स्वरूप परब्रह्म का निरूपण हो-सृष्टि के द्वारा उन्मुख भी उसकी सृष्टि की उत्पत्ति का जिसमें परम कीर्तन किया गया है ॥१५॥ परमात्मा का स्वरूप साकार है अथवा निराकार है और उस ब्रह्म का क्या आकार है— उस ब्रह्म का ध्यान किस तरह का होता है और उसकी भावना किस प्रकार की हुआ करती है ॥१६॥ वैष्णव लोग किस तरह का ध्यान किया करते हैं और सन्त योगी जन किस रीति से उसका ध्यान करते हैं । किनका मत इनमें प्रधान होता हैअथवा कौन सा गूढ मत है जो वेदों में निरूपित किया गया हो ॥१७॥ हे वत्स ! जहाँ पर कृति का जो आकार निरूपित किया गया हो और गुणों का लक्षण तथा जिसमें यह महदादि निर्णय किया गया है ॥१८॥ जिसमें गोलोक का वर्णन और वैकुण्ठ लोक का वर्णन किया गया है तथा शिव लोक का वर्णन और अन्य स्वर्ग का वर्णन किया गया है ॥१९॥ हे सौते ! जिसमें अंशों का और कलाओं का निरूपण हो-कौन प्राकृत है-कौन प्रकृति है और प्रकृति से पर आत्मा कौन है यह जिसमें बताया गया हो-जिसमें देवों का तथा देवाङ्गनाओं का निगूढ जन्म हो-समुद्रों-शीलों और नदियों की जिसमें उत्पत्ति का वर्णन हो उसका वर्णन कीजिए ॥२०-२१॥

के वांशाः प्रकृतेश्चपि कलाः का वा कलाकलाः ।

तासाञ्च चरितंध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम् ॥२२॥

दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणाञ्च वर्णनम् ।

यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं सुधोपमम् । २३॥

जीवकर्मविपाकश्च नरकाणाञ्च वर्णनम् ।

कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षणम् ॥२४॥

येषाञ्च जीविनां यत् यत् स्थानं यत्र शुभाशुभम् ।

जीविनां कर्मणो यस्मात् यासु यासु च योनिषु ॥२५॥

जीविनां कर्मणो यस्मात् यो यो रोगो भवेदिह ।

मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषाञ्च तन्निरूपय ॥२६॥

मनसातुलमीकालीगङ्गापृथ्वीवसुन्धरा ।
 आसां यत्र शुभाख्यानमन्यासामपि यत्र वै ॥२७॥
 शालग्रामशिलानाञ्च दानानाञ्चनिरूपणम् ।
 अपूर्वं यत्र वा सौते ! धर्माधर्मनिरूपणम् ॥२८॥

प्रकृति के अंश कौन हैं तथा कला कौन हैं और कला कला कौन है-
 उनका समग्र चरित्र तथा ध्यान एव पूजा और शुभ स्तोत्र आदि जिसमें हों
 ॥२२॥ दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी और सावित्री का वर्णन जिसमें हो और अत्यन्त
 अपूर्व एव अमृत के समान राधिका का आख्यान जिसमें हो ॥२३॥ जीवों के
 कर्मों के विपाक का वर्णन तथा नरकों का वर्णन-कर्मों का खण्डन जिस-जिसमें
 उनसे विमोक्षण का वर्णन किया गया हो ॥२४॥ जिन जीवों का जो जो स्थान
 जहाँ शुभ और अशुभ हो-जीवों के कर्मों का जिससे जिन योनियों में जन्म होता
 है तथा जीवों के कर्म का जिनसे जो जो रोग यहाँ होता है तथा जिससे कर्मों
 से मोक्ष अर्थात् छुटकारा होता है उनका सब निरूपण कीजिए ॥२५-२६॥ मन-
 सा, तुलसी, काली, गंगा, पृथ्वी, वसुन्धरा इनका जिसमें तथा अन्यो का भी शुभ
 आख्यान हो शालग्राम शिलाओं का और दानों का निरूपण तथा धर्म और
 अधर्म अपूर्व निरूपण जिसमें हो हे सोते ! उसे कथन कीजिए ॥२७-२८॥

गणेश्वरस्य चरितं यत्र तज्जन्म कर्म च ।
 कवचस्तोत्रमन्त्राणां गूढानां यत्र वर्णनम् ॥२९॥
 यदपूर्वमुपाख्यानमश्रुत परमाद्भुतम् ।
 कृत्वा मनसि तत् सर्वं साम्प्रत वक्तुमर्हसि ॥३०॥
 यत्र जन्मभ्रमो विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
 परिपूर्णतमस्यापि कृत्वा परमात्मनः ॥३१॥
 जन्म कस्यगृहेलब्धंपुण्येषु पुण्यवतो मुने ।
 सुतं प्रसूता का धन्या मान्यापुण्यवतीसती ॥३२॥

आविर्भूय च तद्गोहेक गतः केन हेतुना ।

गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनरागतः ॥३३॥

भारावतरण केन प्रार्थितो गोश्रकार सः ।

विधाय किं वा सेतुञ्च गालोकं गतवान् पुनः ॥३४॥

इतीदमन्यदाख्यानं पुराणं श्रुतिदुर्लभम् ।

दुर्विज्ञेयं मुनीनाञ्च मनोनिर्मलकारणम् ॥३५॥

जिसमें गणों के ईश्वर का जन्म और चरित्र एवं कर्म हो तथा वचन, स्तोत्र और मन्त्रों का जो कि अत्यन्त गूढ़ है जिसमें वर्णन किया गया हो ॥२६॥ जो कोई अति अपूर्व और परम अद्भुत पहिले न सुना हुआ उपाख्यान हो वह सब मनमें करके इस समय आप कहने के योग्य होते हैं ॥३०॥ जिसमें परिपूर्णतम परमात्मा कृष्ण का जन्म भ्रम विश्व में और पुण्य क्षेत्र भारत में होता है ॥३१॥ हे मुनि ! किस पुण्यवान के परम पुण्य घर में जन्म प्राप्त किया था और वह कौन सा मानने के योग्य पुण्य वाली सती परम धन्य थी जिसने उसे सुत के स्वरूप समुत्पन्न किया था ॥३२॥ उसके घर में प्रकट होकर किस कारण से कहाँ पर गये थे और वहाँ जाकर क्या किया था अथवा क्यों एवं कैसे फिर आ गये थे ? ॥३३॥ किसके द्वारा उससे इस पृथ्वी के भार के अवतरण की प्रार्थना की गई थी और क्या सेतु करके फिर वह गोलोक को चले गये थे ॥३४॥ यह इस प्रकार का तथा अन्य श्रुतिदुर्लभ आख्यान और पुराण जो कि मुनियों को दुर्विज्ञेय हो और मन के निर्मल करने का कारण स्वरूप हो वर्णन करिये ॥३५॥

सर्व कुशलमस्माकं त्वत्पादपद्मदर्शनात् ।

सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायणाश्रमम् ॥

दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कर्तुमिहागतः ।

दृष्टुञ्च नैमिषारथ्यं पुण्यदञ्चापि भारते ॥३६॥

देव विप्र गुरुं दृष्ट्वा न नमेद् यस्तु सन्नमात् ।
 स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिव्याकरो ॥३७॥
 हरिर्ब्राह्मणरूपेण शब्दं भ्रमति भारते ।
 सुकृती प्रणमेत् पुण्यात् ब्राह्मण हरिस्त्पि ए म ॥३८॥
 भगवन् ! यत्त्वया पृष्टं ज्ञातं सर्वमभीप्सितम् ।
 सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥३९॥
 पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम् ।
 हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्त्वज्ञानविवर्द्धनम् ॥४०॥
 कामिनां कामदञ्चेद मुमुक्षूणाञ्च मोक्षदम् ।
 भक्तिप्रदं वैष्णवानां करुणवृक्षस्वरूपकम् ॥४१॥
 ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम् ।
 ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वक्ष्यावा यत् परात्परम् ॥४२॥

सोति ने कहा —आपके चरण कमल के दर्शन से हमारा
 सब प्रकार का कुशल है । मे इस समय सिद्ध क्षेत्र से आया हूँ और
 नारायणाश्रम को जा रहा हूँ । आप समस्त विप्रों के एक
 विशाल समुदाय को यहाँ एकत्रित देख कर सबको नमस्कार करने क लिये
 ही यहाँ पर आ गया हूँ । और भारत मे परम पुण्य का प्रदान करने वाला
 इस नैमिषारण्य के दर्शन करने को मैं यहाँ आ गया हूँ ॥३६॥ देवता-विप्र
 और गुरु को देखकर जो कोई सम्भ्रम से नमन नहीं किया करता है वह
 काल सूत्र नामक नरक में जब तक चन्द्र और सूर्य स्थित रहते हैं जाकर पडा
 रहा करता है ॥३७॥ इस भारत मे ब्राह्मण के स्वरूप से भगवान हरि
 निरन्तर भ्रमण किया करते हैं । जो सुकृत करने वाला होता है वही हरि के
 स्वरूप वाले ब्राह्मण को प्रणाम किया करता है ॥३८॥ हे भगवन् ! आपने
 जो कुछ भी पूछा है वह सम्पूर्ण आपका अभीप्सित (इच्छित) मैंने समझ

लिया है। पुराणों में जो सारभूत वह उत्तम ब्रह्मवैवर्त पुराण है ॥३६॥ यह ब्रह्मवैवर्त पुराण अन्य पुराण तथा उप-पुराण और वेदों के भ्रम का भञ्जन करने वाला-हरि की भक्ति को प्रदान करने वाला और समग्र तत्त्वों के ज्ञान का बढ़ाने वाला है ॥४०॥ यह ब्रह्मवैवर्त पुराण कामियों के कामों का प्रदान करने वाला और जो मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले हैं उनको मोक्ष देने वाला होता है। वैष्णव जनों को भगवद्भक्ति देने वाला कल्प वृक्ष के स्वरूप के समान है ॥४१॥ ब्रह्म सण्ड में सबका बीज जो परब्रह्म का निरूपण है और जो पर से भी पर है उसको सन्त-योगीगण वैष्णव ध्यान में लाया करते हैं ॥४२॥

वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिन्नाश्च शौनक ।
 स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः क्रमात् ॥४३॥
 सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः ।
 वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः ॥४४॥
 यत्रोद्भवश्च देवानां देवानां सर्वजीविनाम् ।
 ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम् ॥४५॥
 जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम् ।
 तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम् ॥४६॥
 प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम् ।
 कीर्त्तेरुत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः ॥४७॥
 सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत् स्थानं शुभाशुभम् ।
 वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणं ततः ॥४८॥

हे शौनक ! वैष्णव-योगी और सन्त भिन्न नहीं हैं। अपने ज्ञान के परिपाक से क्रम से जीवी हुआ करते हैं ॥४३॥ सन्तपुरुषों के सङ्ग करने से सन्त होते हैं और योगियों के सङ्ग करने से योगी होते हैं। भक्तों के सङ्ग से वैष्णव होते हैं और इस प्रकार से क्रम से ये पर सहयोगी हुआ करते

हैं । ॥४४॥ जिसमें देवों का और सर्वजीवियों देवियों का उद्भव है वह इसके भागे प्रकृति खण्ड में देवियों का शुभ चरित दिया हुआ है ॥४५॥ जीवों के कर्मों का विपाक और शलग्राम का निरूपण तथा उनके कवच, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा का मली भाँति निरूपण है ॥४६॥ वहीं पर प्रकृति का लक्षण और कलासों का निरूपण है । उनकी कीर्ति का पूर्णतया कीर्तन और प्रभाव भी निरूपित किया गया है ॥४७॥ पुण्य धारों का और दुष्कृत (पाप) करने वालों का जो-जो शुभ और अशुभ स्थान है उसका तथा नरकों का एव रोगों का वर्णन है और फिर उनसे कैसे छुटकारा होता है इसका भी निरूपण वहाँ पर होता है ॥४८॥

ततो गणशख डे च तज्जन्म परिकीर्तितम् ।
 अतीवापूर्वचरित श्रुतिवेदसुदुर्लभम् ॥४९॥
 गणेशभृगुसवादसर्वतत्त्वनिरूपणम् ।
 निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥५०॥
 श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च कीर्तितञ्च ततः परम् ।
 भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च ॥५१॥
 भुवो भारावतरण क्रीडाकीतुकमङ्गलम् ।
 सतां सेतुविधानञ्च जन्मखण्डे निरूपितम् ॥५२॥
 इदं ते कथितं विप्र ! पुराणप्रवर वरम् ।
 चतु खण्डपरिमितं सर्वधर्मनिरूपितम् ॥५३॥
 सर्वपापीप्सिततम सर्वाशापूर्णकारणम् ।
 ब्रह्मवैवर्तक नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥५४॥
 सारभूत पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम् ।
 विवृतं ब्रह्मकात्स्न्यञ्च कृष्णेन यत्र शौनक ! ॥५५॥
 ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ।
 इदं पुराणसूत्रञ्च पुरा दत्तञ्च ब्रह्मणे ॥५६॥

इस प्रकृति खण्ड के पश्चात् गणेश खण्ड है उसमें उसका जन्म बताया गया है । यह बहुत ही अपूर्व चरित्र है जोकि श्रुति (वेद) में भी सुदुर्लभ है

॥४६॥ गणेश और भृगु का सम्वाद है जिसमें सम्पूर्ण नस्वों का निरूपण किया गया है। अत्यन्त गूढ़ कवच-रतोन्न-मन्त्र और तन्त्रों का निरूपण किया गया है ॥५०॥ इस गणेश खण्ड के पश्चात् श्रीकृष्ण जन्म खण्ड है और उसका बहुत अच्छी तरह कीर्त्तन किया गया है। इस परम पुण्य क्षेत्र भारत में श्रीकृष्ण का जन्म और उनके कर्म कलापों का वर्णन है ॥५१॥ इस जन्म खण्ड में भूमण्डल के भार का अवतरण जोकि क्रीडा के कौतुक स्वरूप परम मञ्जल है। रात्सुरूपों के सेतु का विधान इस में निरूपित किया गया है ॥५२॥ हे विप्र ! मैंने आपको यह चार खण्डों के परिमाण वाला-समस्त धर्मों के निरूपण करने वाला पुराणों में सबसे श्रेष्ठ और अत्यन्त उत्तम ब्रह्मवैवर्त पुराण बता दिया है ॥५३॥ यह ब्रह्मवैवर्त सभी को श्रंभीष्ट पुराण है क्योंकि यह समस्त प्रकार की आशाओं के परिपूर्ण कर देने का कारणस्वरूप होता है और सम्पूर्ण उच्छिष्टों के फलों का प्रदान करने वाला है ॥५४॥ यह पुराणों में सारस्वरूप है और केवल वेदों में सम्मिलित होता है। हे शौनक ! जिसमें कृष्ण के द्वारा ब्रह्म की पूर्णता को विवृत किया गया है ॥५५॥ इसीलिये इस पुराण को पुरावेत्ता विद्वान लोग ब्रह्मवैवर्त नाम से कहा करते हैं। और यह पुराण सूत्र पहिले ब्रह्मा के लिये दिया गया था ॥५६॥

निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना ।

महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा ॥५७॥

धर्मैरा दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च ।

नारायणार्तिभंगवान् प्रददौ नारदाय च ॥५८॥

नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे ।

व्यासः पुराणसूत्रं तत् सव्यस्य विपुलं महत् ॥५९॥

मह्यं ददौ सिद्धक्षेत्रे पुण्यदे सुमनोहरम् ।

मयेदं कथितं ब्रह्मन् ! तत् समग्रं निशामय ॥६०॥

अष्टादशसहस्रन्तु व्यासेनेदं पुराणकम् ।

पुराणकात्स्न्यं श्रवणे यत् फल लभते नरः ।

तत् फल लभते नूनमध्यायश्रवणेन च ॥६१॥

ग्रामघ (रोग-दोष) से रहित गोलोक मे परमात्मा श्रीकृष्ण ने तथा महातीर्थ पुष्करा राज मे ब्रह्मा ने धर्म के लिये दिया था ॥५७॥ फिर इसे धर्म न प्रीति के साथ पुत्र के लिये भीर नारायण के लिये दिया था । भगवान् नारायण ऋषि ने नारद देवर्षि के लिये दिया था ॥५८॥ देवर्षि नारद ने व्यास को दिया जा कि भागीरथी के तट पर प्रदान किया गया था । इसके अनन्तर महर्षि प्रवर व्यास ने बडा महान बनाकर प्रस्तुत किया था ॥५९॥ सुमतीहर इपको पुष्य प्रदान करने वाले मिद्ध क्षेत्र मे व्यास देव ने मुझे प्रदान किया था । हे ब्रह्मान् ! मैंने समग्र इमको कहा है उसे श्रवण करो ॥६०॥ व्यासदेव के द्वारा यह प्रठारह सहस्र पद्यो वाला पुराण निर्मित किया गया है । पूर्ण पगाणो के श्रवण करने से जो फल होता है निश्चय ही वही फल इमने एक अध्याय के श्रवण से मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥६१॥

२-परब्रह्मनिरूपणम्

किमपूर्वं श्रुतं मीने । परमाद्भुतमीप्सितम् ।

नर्वं कथय सव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् ॥१॥

वन्देगुरो पादपद्मव्यासभ्यामिततेजसः ।

हरिदेवान् द्विजान् नत्वा धर्मान् वक्ष्ये मनातनान् ॥ २॥

यत् श्रुतं व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् ।

अज्ञानान्धतमो ध्वंसि ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम् ॥३॥

ज्योति समूह प्रलये पुरासीत् केवल द्विज ! ।

सूर्यकोटिप्रभ नित्यममत्यविश्वकारणम् ॥४॥

ऋच्छामयस्य च विभोस्तज्जोतिरुज्ज्वल महत् ।

ज्योतिरम्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम् ॥१॥

तेषामृपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज ।

त्रिकोटियोजनायामविस्तीर्णं मण्डलाकृति ॥६॥

तेजःस्वरूपं सुमहद्व्रतनभूमिमयं परम् ।

अदृश्यं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गम्यञ्च वैष्णवैः ॥७॥

इस अध्याय में परब्रह्म का निरूपण किया जाता है । शोक जी ने कहा— हे सौते ! आज कितना अपूर्व और परम अद्भुत श्रवण किया है जोकि मन का इच्छित था । अब आप इस समस्त को भली भाँति विस्तृत करके अत्युत्तम ब्रह्म खण्ड को कहिए । सौते ने कहा—मैं सर्व प्रथम अमित तेज वाले गुरुदेव का वास जी के चरण कमल की वन्दना करता हूँ । फिर हरि-देवमण और ब्राह्मणों को नमस्कार करके सनातन धर्मों का कथन कहूँगा ॥१-७॥ मैंने श्री व्यासदेव के मुख से जो यह अत्युत्तम ब्रह्म खण्ड सुना है जोकि अज्ञान के अन्धकार का ध्वंस करने वाला और ज्ञान के पथ का प्रदर्शन करने वाला है ॥३॥ हे द्विज ! पहिले प्रलय के होने पर यहाँ केवल एक ज्योति का समूह था जो कि एक करोड़ सूर्य की प्रभा के समान प्रभा से युक्त-नित्य और इस असंख्य विश्वों का कारण स्वरूप था ॥४॥ उस स्वेच्छामय विभु की बहों ज्योति अत्यन्त उज्ज्वल और महान थी । उसके अभ्यन्तर में मनोहर तीन लोकों की ज्योति विद्यमान थी ॥५॥ हे द्विज ! उन सबके ऊपर ईश्वर के समान नित्य गोलोक घाम है जो तीन करोड़ योजन वाले आयाम से बहुत विस्तीर्ण (फैला हुआ-लम्बा चौड़ा) मण्डल के आकार वाला है ॥६॥ यह गोलोक घाम तेज के स्वरूप वाला-बड़े २ रत्नों से परिपूर्ण भूमि वाला-योगियों को भी दिखाई न देने वाला और स्वप्न में वैष्णवों के द्वारा जानने के योग्य और देखने योग्य है ॥७॥

योगेन धृतमीशेन चान्तरीक्षस्थितं वरम् ।

आधिब्याधिज रामृत्युशोकभीतिविवर्जितम् ॥८॥

सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम् ।

लये कृष्णयुत सृष्टौ पापगोपीभिरावृतम् ॥६॥
 नदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनाम् ।
 वैकुण्ठ शिवलोकञ्च तत्सम सुमनोहरम् ॥१०॥
 कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठ मण्डलाकृति ।
 लये शून्यञ्च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥११॥
 चतुर्भुजं. पार्षदंश्च जरामृ व्यादिर्बर्जितम् ।
 सव्येचशिवलोकञ्च कोटियोजनविस्तृतम् ॥१२॥
 लये शून्यञ्च सृष्टौ च सपार्षदशिवाङ्कितम् ।
 गोलोकाम्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोहरम् ॥१३॥
 परमल्लादक शश्वत् परमानन् कारणम् ।
 ध्यायन्ते योगिनः शाश्वद् योगेन ज्ञानचक्षुषा ॥१४॥

ईश के द्वारा योग से धारण किया हुआ और अन्तरिक्ष में स्थित श्रेष्ठ
 तथा मानसिक व्यथा, शारीरिक रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक और भय से रहित
 है ॥६॥ अञ्छी जाति के रहने से निर्मित किये हुए असह्य मन्दिरों से चहुँ
 और शोभा वाला है । लय के समय में कृष्ण से युक्त और सृष्टि के होने पर
 पाप गोपियों से आवृत रहता है ॥६॥ उसके नीचे के भाग में दक्षिण तथा
 वाम भाग में पचास करोड़ योजन दूरी पर वैकुण्ठ लोक और शिव लोक हैं जो
 कि उस गोलोक धाम के समान ही बहुत सुन्दर हैं ॥१०॥ वैकुण्ठ लोक एक
 कराड योजन के विस्तार से युक्त है और यह भी मण्डल के अकार वाला
 होता है । यह वैकुण्ठ लय के समय में शून्य रहता है और सृष्टि के समय में
 लक्ष्मी नारायण से युक्त रहता है ॥११॥ इस वैकुण्ठ में जो लक्ष्मी नारायण
 के पार्षद होते हैं वे धार भुजाओं वाले होने हैं और वे जरा तथा मृत्यु आदि
 सबस रहित रहा करते हैं । वाम भाग में शिव लोक है जिसका विस्तार भी
 एक करोड़ योजन का होता है ॥१२॥ लय के अवसर में यह शिव लोक भी
 शून्य स्वरूप वाला रहता है और सृष्टि के समय में पार्षदों से समन्वित शिव से
 युक्त रहा करता है । गोलोक के भीतर अत्यन्त मनोहर ज्योति होती है ॥१३॥

यह गोलोक धाम परम ब्राह्माद के करने वाला और निरन्तर परम आनन्द के करने का कारण है । योगी जन सर्वदा योग से तथा जान के नेत्रों से इसका ध्यान किया करते हैं ॥१४॥

तदेवानन्दजनक निगकारं परात्परम् ।
 तज्ज्यांनिरन्तरे रूपमनीवसुमनोहरम् ॥१५॥
 नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम् ।
 शारदीयपार्वणेन्दुशोभातिलोचनाननम् ॥१६॥
 काटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोरमम् ।
 द्विभुजं मुरलीहस्तं मम्मिमत पीतवाससम् ॥१७॥
 मद्रत्नभूषणैर्धन भूषितं भक्तवत्सलम् ।
 चन्द्रनोक्षितमर्वाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥१८॥
 श्रीवत्सवक्षःशंभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ।
 सद्रत्नमाररचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥१९॥
 रत्नसिंहासनस्थञ्च वनमालाविभूषितम् ।
 तमेव परम ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥२०॥
 स्वच्छामयं सर्वबीजं सर्वाधारं परात्परम् ।
 किशोरवयसं शश्वद्गोपवेशविधायकम् ॥२१॥

वही आनन्द को उत्पन्न करने वाले-बिना आकार वाले-पर से भी पर है । अन्तर में उसकी ज्योति का रूप अत्यन्त मनोहर है ॥१५॥ उसका नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण होता है और लाल कमल के तुल्य नेत्र है तथा शरदकाल की पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र की शोभा से भी अधिक शोभा वाले लोचनों से युक्त मुख है ॥१६॥ करोड़ों कामदेव के सद्गुण लावण्य से युक्त हैं-लीला के धाम और मनोहर हैं । दो भुजाओं से युक्त-हाथ में वंशी धारण करने वाले मन्द मुस्कान से अन्वित और पीले रङ्ग का वस्त्र अर्थात् पीताम्बर धारण करने वाले है ॥१७॥ रुच्छी जाति के उत्तम रत्नों के निर्मित भूषणों के समूह से विभूषित है और अपने भक्तों

पर प्यार करने वाले हैं। चन्दन से सब अङ्ग उनके उक्षित है जो चन्दन कस्तूरी और कुङ्कुम से अन्वित होता है ॥१८॥ वक्ष स्थल में श्री वत्स से सम्भ्राजित कौस्तुभ से शोभायुक्त हैं। उसी परम ब्रह्म सनातन भगवान् को जो स्वच्छामय हैं सबका बीज स्वरूप हैं-सबका आधार है। और पर से भी पर हैं तथा किशोर अवस्था वाले हैं और सदा गोप के वेप के करने वाले हैं ॥२०-२१॥

कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।

निरीह निर्विकारञ्च परिपूर्णतम् विभुम् ॥२२॥

रासमण्डलमध्यस्थ शान्त रासेश्वर वरम् ।

मङ्गल्य मङ्गलाहंज्य मङ्गल मङ्गलप्रदम् ॥२३॥

परमानन्दबीजञ्च सत्यमक्षरमव्ययम् ।

सर्वसिद्धीश्वर सर्वसिद्धिरूपञ्चमिद्धिदम् ॥२४॥

प्रकृते परमीशान निर्माण नित्यविग्रहम् ।

आद्य पुरुषमव्यक्त पुरुहूत पुरुष्टुतम् ॥२५॥

सत्य स्वतन्त्रमेकञ्च परमात्मस्वरूपकम् ।

ध्यायन्ने वैष्णव्या शान्ता शान्त तत् परमायणम् ॥२६॥

एव रूप पर विभ्रद्भवानेक एव सः ।

दिग्भिद्वच नभसा सार्द्धं शून्य विश्व ददर्श ह ॥२७॥

करोडा पूर्ण चन्द्र की शोभा से युक्त उनका स्वरूप है। सर्वदा अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये कातर रहा करते हैं। निरीह अर्थात् समस्त चेष्टाओं से रहित एवं बिना विकार वाले हैं। परिपूर्णतम एव विभु अर्थात् सर्व व्यापक है ॥२२॥ रास रचने के मण्डल में मध्य में स्थित है-शान्त स्वरूप से युक्त-रास के त्रिधिपति वर हैं स्वयं मंगल करने वाले-मंगलो के योग्य-मंगल-मय स्वरूप वाले और मंगलो के प्रदान करने वाले हैं ॥२३॥ परम ध्यानन्द के बीज स्वरूप है सत्य रूप है-क्षण से रहित और अव्यय हैं। समस्त सिद्धियों के स्वामी हैं समस्त सिद्धियों के स्वरूप और सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं।

॥२४॥ प्रकृति से पर-सर्वके स्वामी-निर्गुण-नित्य विग्रह बाने-घात पुरुष-अव्यक्त पुरुष और पुरुषुत हैं ॥२५॥ वे सत्य - स्वतन्त्र और एक हैं तथा परमात्मा के स्वरूप बाने हैं । उस शांति स्वरूप परमायन का शांति वैष्णव ध्यान किया है ॥२६॥ उस प्रकार ने पर रूप को धारण करने बाने वह भगवान एक ही हैं उन्होंने दिवाघ्नो और आकाश के साथ शून्य विश्व को देखा था ॥२७॥

३-सृष्टिनिरूपणम् (?)

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं गोलोकञ्च भयङ्करम् ।
 निर्जन्तु निर्जलघोरं निर्वातं तमनावृतम् ॥१॥
 वृक्षशीलसमुद्रादिविहीन विकृताकृतम् ।
 निर्मूर्त्तिकञ्च निर्धातु निर्जस्यं निम्नृणं द्विज ॥२॥
 आलोच्य मनसा सर्वमेक एवाप्तहायवान् ।
 स्वेच्छया लण्डुपारेभे मृष्टि स्वेच्छामयः प्रभुः ॥३॥
 आविर्बभूवुः सर्वादी पुंसो दक्षिणपार्श्वतः ।
 भवकारणरूपाश्च मूर्त्तिमन्तस्त्रयो गुणाः ॥४॥
 तनो महानहङ्कारः पञ्चनन्मात्र एव च ।
 रूपरमगन्धस्पर्शशब्दाञ्चैवोत्तमङ्गनाः ॥५॥
 आविर्बभूव तत्पञ्चात् स्वयं नारायणः प्रभुः ।
 श्यामो युवा पीतवाना वनमालीञ्चतुर्भुजः ॥६॥
 शङ्खचक्रगदापद्मधर स्मेरमुखाम्बुजः ।
 रत्नभूषणभूषाढ्यः शार्ङ्गी कौस्तुभभूषणः ॥७॥

इस अध्याय में सृष्टि का निरूपण किया जाता है । सीति ने कहा—
 इस विश्व को शून्यता से पूर्ण तथा गोलोक को भयंकर देख कर जो कि जंतुओं

से रहित-निर्जल-घोर-वायु रहित घोर अधिकार से आवृत था ॥१॥ हे द्विज । यह वृक्ष-शीली और समुद्र आदि से विहीन था-विवृत आकृति से युक्त-मूर्तियों से रहित निर्घातु शस्यो से वजित-बिना तृणो वाला था ॥२॥ उस समय मे स्वेच्छामय प्रभु ने इस सबको मनसे आलोचित करके एक ही के बिना किसी की सहायता प्राप्त किये हुए अपनी ही इच्छा से इस सृष्टि का सृजन करना आरम्भ कर दिया था ॥३॥ सबके आदि में परम पुरुष के दक्षिण पार्श्व से संसार के कारण स्वरूप मूर्तिमान तीन गुण प्रकट हुए थे ॥४॥ इसके पश्चात् उन से यह सत्त्व और महत्त्व से अहकार और अहकार से पच तमात्रा प्रकट हुए थे जो रूप-रस-गंध स्पर्श-और शब्द इन सज्ञाओं वाले थे प्रकट हुए ॥५॥ इसके अनन्तर स्वयं नारायण प्रभु अविर्भूत हुए थे जो श्यामवर्ण वाले-प्रवा अवस्था से युक्त-नीताम्बरधारी वनमात्रा पङ्क्ति हुए और चर भुजाग्रो वाले थे ॥६॥ प्रभु का स्वरूप उस समय मे शक-चक्र-गदा और पदम का धारण करने वाला मन्द मुस्कान से युक्त मुख कमल बाना रत्नो-के भण्डो से विभूषित-शाङ्ग धनुष को धारण किये हुए और कौस्तुभ के भूषण वाला था ॥७॥

श्रीव सव ता श्रीवास श्रीनिधि श्रीविभावन
 शारदेन्दुप्रभायुष्टमुखे द्रुसुमनोहर ॥८॥
 कामदेवप्रभायुष्टरूपलावण्यसुन्दर ।
 श्रीकृष्णपुरत स्थित्वा तुष्टाव त पुटाञ्जलिः ॥९॥
 वर वरेण्य वरद वरार्ह वरकारणम् ।
 कारण कारणानाञ्च कर्म तत्कर्मकारणम् ॥१०॥
 तपस्ततफलद शश्वत्तपस्विनाञ्च तापसम् ।
 वन्दे नवघनश्याम स्वात्माराम मनोहरम् ॥११॥
 निष्काम कामरूपञ्च कामघ्न कामकारणम् ।
 सर्वं सर्वेश्वर सर्वबीजरूपमनुत्तमम् ॥१२॥
 वेदरूप वैश्वीज वेदोक्तफलद फलम् ।

वेदज्ञं तद्विधानञ्च सर्ववेदविदां वरम् ॥१३॥

इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवाच तदाज्ञया ।

रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः ॥१४॥

वक्षःस्थल में श्री वत्स का चिन्ह धारण किए हुए श्री का वास-श्री के निवि और श्री को विभावित करने वाले तथा शरत्काल के चन्द्र की प्रभा से युक्त मुख चन्द्र से अत्यन्त मनोहर थे ॥८॥ काम देव की प्रभा से युक्त रूप और लावण्य से परम सुन्दर वह अंजलि बाँधकर श्री कृष्ण के आगे स्थित होकर उनकी स्तुति करने लगे थे । १६। नारायण ने कहा—परम श्रेष्ठ-वरण करने के योग्य-वर होने की योग्यता वाले-वर के कारण-कारणों के भी कारण और उस कर्म के स्वरूप जो कर्मों का कारण होता है ऐसे आप है ॥१०॥ उसके फल के प्रदान करने तप है और निरन्तर तपस्वियों के भी तापस हैं-परम मनोहर स्वात्मा राम अर्थात् अपने ही आत्मा में रमण करने वाले नूतन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले आपको मैं वन्दना करता हूँ ॥११॥ आप स्वयं कामनाओं से रहित हैं और काम रूप वाले हैं । आप काम के नाशक हैं और काम के कारण स्वरूप भी हैं । आप ही सब हैं-सब के ईश्वर हैं और अति उत्तम सब के वीज रूप हैं ॥१२॥ आप वेद स्वरूप हैं वेदों के वीज है और वेदों में कहे हुए फल के प्रदान करने वाले तथा स्वयं फल रूप हैं । आप वेदों के तत्व के ज्ञाता हैं-वेदों के पूर्ण विधान हैं और समस्त वेदों के विद्वानों में परम श्रेष्ठ हैं ॥१३॥ भक्ति भाव से युक्त उस नारायण ने इस प्रकार से स्तवन किया था और फिर उनकी आज्ञा से परमात्मा के आगे रत्नों के रम्य सिंहासन पर बैठ गये थे ॥१४॥

नारायणकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ।

त्रिसन्ध्यञ्च पठेन्नित्यं पापं तस्य नविद्यते ॥१५॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं भाग्यार्थी लभते प्रियाम् ।

अष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं अष्टधनोलभेत् ॥१६॥

कारागारेविपद्ग्रस्तःस्तोत्रेणमुच्यतेध्रुवम् ।

रोगात् प्रमुच्यतेरोगीवर्षं श्रुत्वातु संयतः ॥१७॥

आविर्भवत् तत्पश्चादात्मनो वामपार्श्वतः ।

शुद्धस्फटिकसङ्काशः पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः ॥१८॥

तत्पञ्चाञ्चनवर्णाभिजटाभारधरो वर ।

ईषद्धास्यप्रसन्नाम्यखिन्नेत्रश्चन्द्रशेखरः ॥१९॥

त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः पर ।

सर्वसिद्धेश्वरः सिद्धो योगिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥२०॥

मृत्युमृत्युरीश्वरश्च मृत्युमृत्युञ्जयः शिवः ।

ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः परः ॥२१॥

पूर्णाचन्द्रप्रभायुष्टसुखदृश्यो मनोहरः ।

वैष्णवानाञ्च प्रवरः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥२२॥

श्री कृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव त पुटाञ्जलि ।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्ग साश्वुनेत्रोऽतिगद्गदः ॥२३॥

इस नारायण के द्वारा किये गये स्तोत्र को जो कोई पुरुष समाहित होकर श्रवण करता है और तीनो सन्ध्याओं में जो नित्य इसका पाठ किया करता है उसको कोई भी पाप नहीं रहा करता है ॥१५॥ जो पुत्र की इच्छा रखने वाला है उसे पुत्र प्राप्त होता है और जो भार्या के चाहने वाला पुरुष है उसे भार्या की प्राप्ति हो जाती है । जिसका राज्य भ्रष्ट हो गया हो उसे राज्य का लाभ होता है और भ्रष्ट धन वाला पुरुष धन का लाभ किया करता है ॥१६॥ जो कोई कारागार में विपत्ति से ग्रस्त होकर निग्रहीत हो वह इस स्तोत्र के पाठ द्वारा निश्चय ही मुक्त हो जाता है । रोगी पुरुष रोग से छुटकारा पाता है जो एक वर्ष तक संयत होकर इसका श्रवण करता रहता है ॥१७॥ यह ब्रह्मवैवर्त में नारायण कृत श्री कृष्ण स्तोत्र समाप्त होता है । सीति ने कहा—इसके अनन्तर अपने वाम पार्श्व से शुद्ध स्फटिक के सदृश पाँच मुखों वाला दिगम्बर अर्थात् विलकुल नग्न का आविर्भाव हुआ था ॥१८॥ तब हुए

सुवर्ण के तुल्य जटाओं के भार को धारण करने वाला-परम श्रेष्ठ-बड़े से हास्य से युक्त प्रसन्न मुख वाले-तीन नेत्रों को धारण करने वाले और मस्तक में चन्द्र को धारण किये हुए इनका स्वरूप था ॥१९॥ त्रिशूल और पट्टिश को धारण करने वाले-हाथ में जप करने की माला लिये हुए-समस्त सिद्ध गण के स्वामी-परम सिद्ध और योगियों के गुरु क भी गुरु थे ॥२०॥ ये मृत्यु के भं। मृत्यु-ईश्वर-मृत्यु और मृत्यु क जंतने वाले शिव थे । ज्ञान के आनन्द वाले-महान-जानी और महान ज्ञान क प्रदान करने वाले पर थे ॥२१॥ पूरा चन्द्र की प्रभा से अपुष्टमुख से देखने क योग्य और मन को हरण करने वाले थे । यह शिव वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ शिरोमणि थे और अपने ब्रह्म तेज से पुञ्जलित ही रहे थे ॥२२॥ यह भी श्री कृष्ण के आगे स्थित होकर पुटाञ्जलि ही गये थे और पुलकों से अङ्कित समस्त देह वाले आँखा से अश्रुपात करते हुए अत्यन्त गद्गद होकर उनकी स्तुति करते थे ॥२३॥

- जयस्वरूप जयेदं जयशं जयकारणम् ।
 प्रवरं जयदानाञ्च वन्दे तनपराजितम् ॥२४॥
 विश्वं विश्वेश्वरेशञ्च विश्वेशं विश्वकारणम् ।
 विश्वाघाञ्च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम् ॥२५॥
 विश्वरक्षाकारणञ्च विश्वघ्नं विश्वजं परम् ।
 फलबीज फलाधारं फलञ्च तत्फलप्रदम् ॥२६॥
 तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम् ।
 इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे ।
 नारायणञ्च संभाष्य स उवाच तदाज्ञया ॥२७॥
 इति शम्भुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत् ।
 सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयश्च पदे पदे ॥२८॥
 सन्ततं वर्द्धते मित्रं धनमैश्वर्यमेव च ।
 शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च ॥२९॥

श्री महादेव ने कहा—जय के स्वरूप वाले-जय को प्रदान करने वाले जय के स्वामी और जय के कारण जय देने वाली म अति श्रेष्ठ उस अपराजित को मैं व दना करता हूँ ॥२४॥ विद्वय रूप विद्वय के ईश के भी ईश्वर-विद्वय के स्वामी विश्व के कारण विश्व के आधार-विद्वयस्त और विद्वय के कारण के भा कारण आप है ॥२५॥ इस विद्वय की रक्षा के कारण-विद्वय वा हनन करने वाले विश्व से जन्मा-पर-फल के बीज फल के आधार फल स्वरूप और उसके फल को प्रदान करने वाले आप है ॥२६॥ महादेव जी ने कहा आप तेज के स्वरूप है तेज के देने वाले हैं और सम्पूर्ण तेजस्वियों में पर हैं । इस प्रकार से श्रीकृष्ण की स्तुति करके श्रेष्ठ रत्नों के सिंहासन पर उनको नमस्कार करके नारायण से कह कर वह उनकी आज्ञा से निवसित हो गये थे ॥२७॥ इस शम्भु के द्वारा किय गये स्तोत्र का जो मनुष्य सयत् होकर पढता है उसको समस्त सिद्धियों और पद-पद में विजय होता है ॥२८॥ उस पाठ करने वाले को सदा मित्रो और धन की तथा ऐश्वर्य की वृद्धि होती है । शत्रुओं की सेना का क्षय होता है तथा दुःख और पाप भी क्षय को प्राप्त हो जाते हैं । यह शम्भुकृत श्री कृष्ण स्तोत्र है ॥२९॥

आविर्भव तत्पश्चात् कृष्णस्य नाभिपङ्कजात् ।

महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वर ॥३०॥

शुक्लवासा शुक्लदन्त शुक्लकेशश्चतुर्मुख ।

योगीश शिल्पिनामीश सर्वेषा जनको गुरु ॥३१॥

तपसां फलदाता च प्रदातासर्वसम्पदाम् ।

स्रष्टा विधाता कर्त्ताचिहर्त्ताचिसर्वकर्मणाम् ॥३२॥

धाता चतुर्णां वेदाना ज्ञाता वेदप्रसू पति ।

शान्त सरस्वतीकान्त सुशीलश्चकृपानिधि ॥३३॥

श्रीकृष्णपुरत स्थित्वा तुण्डाव त पुटाञ्जलि ।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिन आत्मकन्धर ॥३४॥

सोति ने कहा—इस के अनन्तर श्री कृष्ण की नाभि के कमल से महान तपस्वी कर्मदल को वारण करने वाले वृद्ध एवं वर का अविर्भाव हुआ था ॥३०॥ इनके वसन शुक्ल वर्ण के थे और ये शुक्ल दाँतों वाले-शुक्ल केशों वाले-चार मुखों से युक्त योगी-यित्थियों के ईश और सबको जन्म देने वाले गुरु थे ॥३१॥ यह तपों के फल के देने वाले और समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाले थे । सम्पूर्ण कर्मों का स्मरण करने वाले-विधाता-कर्त्ता और हर्त्ता थे ॥३२॥ यह चारों वेदा के वाता-वेदों के ज्ञाता-वेदों को प्रसूत करने वाले-पति-परम गान्त-मरस्वती के गान्त मुशीन और कृपा के निधि थे ॥३३॥ पुलकों से अङ्कित समस्त श्रद्धों वाले और भक्ति से नम्र प्रात्म कन्वरा वाले ब्रह्मा ने पुटाञ्जलि होते हुए श्री कृष्ण के आगे स्थिर होकर उनकी स्तुति की थी ॥३४॥

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम् ।
 अव्यक्तमव्ययव्यक्तं गोपवेषविधायिनम् ॥३५॥
 किशोरवयसंगान्तं गोपीकान्तं मनोहरम् ।
 नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥३६॥
 वृन्दावनवनाम्यर्णं रासमण्डलसंस्थितम् ।
 रासेश्वरं रासवासं रासोद्धाससमुत्सुकम् ॥३७॥
 इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे ।
 नारायणेशो संभाष्य स उवास तदाजया ॥३८॥
 इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातस्तथाय यः पठेत् ।
 पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥३९॥
 भक्तिर्भवति गोविन्दे पुत्रपौत्रविवर्द्धनी ।
 अकीर्त्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्त्तिर्वर्द्धते चिरम् ॥४०॥

ब्रह्मा जी ने कहा—गुणों से अतीत-एक अक्षर गोविन्द कृष्ण को मैं

प्रणाम करता हूँ । जो 'अव्यक्त-अन्यय-व्यक्त' और गोप वेप के विधायक हैं ॥३५॥ किशोर वय वाले-परम धान्त-गोपीकान्त और मन को हरण करने वाले हैं । ब्रह्मा ने कहा आप नवीन मेघ के सदृश श्याम वर्ण वाले हैं, करोड़ों कामदेवों के समान अति सुन्दर हैं ॥३६॥ वृन्दावन के निकट वन में गसमण्डल में सस्थित हैं, रास के अवीश तथा रास में वास करने वाले और रास के उल्लास में ममुत्सुक हैं ॥३७॥ इस प्रकार से श्री कृष्ण का स्तवन करके उनको प्रणाम किया था और नारायणेश ऐसा सम्भाषण करके उनकी आज्ञा पाकर वर रत्नों के सिंहासन पर निवास किया था ॥३८॥ यह ब्रह्मा जी के द्वारा स्तोत्र है इसको जो प्रातः काज में उठकर पढ़ता है उसके पाप सब नष्ट हो जाते हैं और जो बुरा स्वप्न होता है वह अच्छा स्वप्न हो जाया करता है ॥३९॥ इस स्तोत्र के पाठ करने वाले पुरुष की भी गोविन्द में भक्ति हो जाती है जो पुत्र और पौत्रों के वर्धन करने वाली होती है । अकीर्ति का नाश हो जाता है और सत्कीर्ति धिरकाल तक बढ़ा करती है ॥४०॥ यह ब्रह्मा का किया हुआ कृष्ण स्तोत्र है ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् वक्षसः परमात्मानः ।

सस्मितः पुरुषः कश्चित् शुक्लवर्णोजटाधरः ॥४१॥

सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकारणम् ।

समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविवर्जितः ॥४२॥

धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत् ।

स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मकलोद्भवः ॥४३॥

श्रीकृष्णापुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद् भुवि ।

तुष्ट्याव परमात्मान सर्वेशं सर्वकामदम् ॥४४॥

कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमौश्वरम् ।

गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम् ॥४५॥

गोपेश्वरञ्च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम् ।

गवामीशञ्च गोष्ठस्थंगोवत्सपुच्छधारिणम् ॥४६॥

गोगोपगोर्षामथ्यस्थं प्रवानं पुरुषोत्तमम् ।
 वन्दे नवघनदयामं रासवासं मरोद्हरम् ॥४७॥ ✓
 इत्युच्चार्य्य ममुत्तिष्ठन् रत्नमिहानने वरे ।
 ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान् नमभाष्य म उवासह ॥४८॥
 चतुर्विंशति नामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च ।
 यः पठेन् प्रातस्तथाय म मुन्नी सर्वतो जयी ॥४९॥
 व्रत्युकाले हरेर्नाम तस्य साध्यं भवेद् ध्रुवम् ।
 न यात्यन्ते हरेःस्थानंहरिदास्यंभवेद्भ्रुवम् ॥५०॥
 नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मं तद्वातिर्भवेत् ।
 चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत् करगतं भवेत् ॥५१॥
 तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भयेन च ।
 नयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोरगाः ॥५२॥

गीति ने कहा—इसके अनन्तर परमात्मा के वक्षःस्थल में कोई एक
 स्मित से युक्त युक्त वर्ण वाला जटाओं को धारण करने वाला पुरुष प्रकट हुआ
 था ॥४१॥ वह सर्व का साक्षी मक्का जाता-मक्का सर्व कारण था । सर्वत्र सम-
 दया से युक्त और हिंसा तथा कोप ने रहित था ॥४२॥ धर्म और ज्ञान से युक्त-
 धर्म रूप-धर्मिष्ठ-धर्म को देने वाला था । वह ही धर्मियों का धर्म और परमात्मा
 की कला से उद्भूत होने वाला था ॥४३॥ वह श्री कृष्ण के आगे स्थित होकर
 दण्ड की भाँति साष्टाङ्ग प्रणाम भूमि में करके सर्वेश समस्त कामनाओं के देने
 वाले परमात्मा की स्तुति करने लगा ॥४४॥ मैं कृष्ण-विष्णु-वासुदेव-परमात्मा-
 ईश्वर-गोविन्द-परमानन्द-एक-अक्षर और अच्युत की वन्दना करता हूँ ॥४५॥
 गोर्षों के ईश्वर-गोपियों के ईश-गोप-गायों के रक्षक-विभु-गौर्षों के ईश-गोप में
 संस्थित और गोवत्स पुच्छ के धारण करने वाले की वन्दना करता हूँ ॥४६॥
 गो-गोपी और गोर्षों के मध्य में स्थित-प्रधान-पुरुषों में उत्तम-नव घन के समान

श्यामवर्णं वाले-रास में वास करने वाले-मन के हरण करने वाले को प्रणाम करता हूँ ॥४७॥ यह कहकर ब्रह्मा-विष्णु और महेश से सम्भाषण करके समुत्थित होता हुआ वह वर रत्नों के सिंहासन पर निवासित हो गया था ॥४८॥ घम के मुख से निकले हुए इन चौबीस नामों का जो प्रातः काल में उठकर पाठ करता है वह सब प्रकार से जय वाला सुखी होता है ॥४९॥ उसको मृत्यु के समय में हरि का नाम निश्चय ही साध्य हो जाता है । वह अन्त में हरि के स्थान को जाता है और निश्चित रूप से हरि का दास होता है ॥५०॥ धर्म उसको नित्य ही धर्म करने को प्रेरित किया करता है और उसकी कमी भी अधर्म में रति नहीं होती है । धर्मोप काम मोक्ष इस चतुर्वंग का फल सर्वदा उसके हस्तगत होता है ॥५१॥ उसका दर्शन करके समस्त पाप भय से दूर भाग जाया करत है । उरग (सर्व वैतथ्य (गरुड) को देखने की भाँति दुःख भी उसके भयभीत होकर भाग जाते हैं ॥५२॥ यह धर्म कृत स्तोत्र है ।

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपाश्वरं ।

मूर्त्तिमूर्त्तिमती साक्षात् द्वितीयकमलालया ॥५३॥

आविर्बभूव तत्पश्चात् मुखत परमात्मन ।

एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी ॥५४॥

कोटिपूर्णा-दुशोभाद्या शरत्पङ्कजलोचना ।

र्वाह्यशुद्धाशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥५५॥

सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणाञ्चसुन्दरी ।

श्रेष्ठाश्रुतोना शास्त्राणाविदुषा जननीपरा ॥५६॥

वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता ।

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ॥५७॥

गोविन्दपुरत स्थित्वा जगौ प्रथमतः शुभम् ।

तन्नामगुणकीर्त्तिञ्च वीणया सा ननत्त च ॥५८॥

कृतानि यानि कर्माणि जन्मे जन्मे युगे युगे ।

तानिसर्वाणि हरिणा तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ॥१६॥

सौमि ने कहा-इसके अनन्तर उस घर्म के वामपाद्वर्ष से एक कन्या का अविर्भाव हुआ था । यह मूर्तिमती साक्षात् दूत्तरी कमलालया (लक्ष्मी) की ही मूर्ति थी ॥१६॥ इसके पश्चात् परमात्मा के मुख से एक युक्ल वर्ण वाली फरों में बीणा और पूस्तक को धारण करने वाली देवी प्रकट हुई थी ॥१७॥ यह देवी करोड़ों पूर्ण चन्द्रों की शोभा से युक्त थी और शरत्काल के विकसित कमलों के समान नेत्रों वाली थी । वह्नि के समान युद्ध वस्त्रों के परिवान करने वाली तथा रत्नों के भूषणों से विभूषित थी ॥१८॥ वह स्मित से युक्त सुन्दर दांतों वाली-श्याम वर्ण और सुन्दरियों में भी अति सुन्दरी थी श्रुतियों में परम श्रेष्ठ और शास्त्रों के विद्वानों की परा जननी थी ॥१९॥ वह वाणी की अविष्ठातृ देवी थी और कवियों की इष्टदेवता थी । वह युद्ध सत्त्व स्वरूप से युक्त शान्त स्वरूप वाली सरस्वती देवी थी ॥२०॥ वह गोविन्द के आगे स्थित होकर उसने प्रथम ही शुभ गायन किया था जिसमें उनके नाम और गुणों की कीर्ति विद्यमान थी इसक पश्चात् उसने नृत्य किया था ॥२१॥ युग-युग में और जन्म-जन्म में जो भी होने कर्म किये थे उन सब के विषय में हाथ जोड़कर सरस्वती ने स्तवन किया था ॥२२॥

रासमण्डलनध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् ।

रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥२०॥

रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम् ।

रासाधिष्ठातृदेवञ्च वन्दे रासविनोदिनम् ॥२१॥

रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम् ।

रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तमनोहरम् ॥२२॥

प्रणम्य तं तानीत्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती ।

उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने वरे ॥६३॥

इति वाणीकृत स्तोत्र प्रातरुत्थाय य पठेत् ।

बुद्धिमान् धनवान् सोऽपि विद्यावान् पुत्रवान् सदा ॥६४॥

सरस्वती ने कहा—मैं रासमण्डल के मध्य में स्थित रास के उल्लास में अति उत्सुकता रखने वाले—रत्न जटित सिंहासन पर स्थित और रत्नों के निर्मित भूषणों से सविभूषित की बन्दना करती हूँ ॥६०॥ रास के ईश्वर-रास के करने वाले-वर और रामेश्वरी के स्वामी-रास के अधिष्ठातृ देव तथा रास से विनोद करने वाले को मैं प्रणाम करती हूँ ॥६१॥ रास लीला में होने वाले आयास से थके हुए-रास में रास का विहार करने वाले-रास लीला में अत्युत्सुक गोपियों के कान्त-शान्त और मनोहर अर्थात् सुन्दर एव मन का हरण करने वाले को प्रणाम वरके हृष्ट मुख वाली सती में उनको कहकर सकामा वह श्रेष्ठ रत्नों के सिंहासन पर बैठ गई थी ॥६२ ६३॥ यह सरस्वती देवी के द्वार पर दिरचित स्तोत्र है। इसका जो प्रातः काल में उठकर पाठ करता है वह बुद्धिमान-धनवान-विद्यावान और मदा पुत्रवान हाता है ॥६४॥ यह सरस्वती देवी कृत स्तोत्र यहा समाप्त हुआ है।

आविर्भव मनस कृष्णस्य परमात्मन ।

एका देवी गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूषिता ॥६५॥

पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना ।

सर्वेश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा ॥

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥६६॥

सा हरे पुरत स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम् ।

तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥६७॥

सत्यस्वरूप सत्येश सत्यबीज सनातनम् ।

सत्याधार च सत्यज्ञ सत्यमूल नमाम्यहम् ॥६८॥

इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा मा चोवाप्त सुखासने ।
 तप्तकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशो दश ॥६६॥
 अविर्भव तत्पश्चात् बुद्धेश्च परमात्मनः ।
 सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥७०॥

मौलि ने कहा-इसके उपरान्त फिर परमात्मा श्री कृष्ण के मनसे गोरे वर्ण वाली रत्नों के अलङ्कारों से भूषित एक देवी का अविर्भाव हुआ था ॥६५॥ वह देवी पीत वर्ण के वस्त्र का परिधान करने वाली-मन्दमुग्धान से नमन्वित नवीन यौवन से युक्त-समस्त ऐश्वर्यों की अग्निदेवी और वह सम्पूर्ण सम्पत्तियों के फलों का प्रदान करने वाली थी । वह स्वर्ग में तो स्वर्ग लक्ष्मी और राजाओं में राजलक्ष्मी थी ॥६६॥ वह देवी हरि के सामने स्थित हो गई और प्रगुण होती हुई भक्ति भाव नम्र आत्म कन्वरावाली होकर नाट्यी ने परमात्मा ईश्वर का स्तवन किया था ॥६७॥ महालक्ष्मी ने कहा-मैं आप को नमस्कार करती हूँ जोकि आप सत्य के स्वरूप-सत्य के ईश-सत्य के बीज-सनातन-सत्य के आचार रूप-सत्य के ज्ञाना और सत्य के मूल हैं ॥६८॥ इतना कहकर उसने श्री हरि को नमस्कार किया था फिर तप्त सुवर्ण की आभा के सत्य आभा वाली दशों दिशाओं को अपनी आभा से प्रकाशित करती हुई वह मुखासन पर स्थित हो गई थी ॥६९॥ इसके पश्चात् परमात्मा की बुद्धि से सब की अधिष्ठातृ देवी ईश्वरी मूल प्रकृति का अविर्भाव हुआ था ॥७०॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा ।
 ईषट्ठास्यप्रमत्तान्या शरत्पङ्कजलोचना ॥७१॥
 रक्तवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता ।
 निद्रातृप्णा क्षुत्पिपासा दया श्रद्धाक्षमादिकाः ॥७२॥
 तासाञ्च सर्वशक्तीनामीशाधिष्ठातृदेवता ।
 भयङ्करी शतभुजा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥७३॥

आत्मन शक्तिरूपा सा जगतां जननीपरा ।
 त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गञ्च धनु मङ्गशराणि च ॥७४॥
 शङ्खचक्रगदापद्ममक्षमाला कमण्डलुम् ।
 वज्रमङ्कुशपाशञ्च भृशुण्डीदण्डतोमरम् ॥७५॥
 |नारायणास्त्र ब्रह्मास्त्र रौद्र पाशुपत तथा ।
 |पार्जन्य वारुणवाह्य गान्धर्वं विभ्रतो सती ।
 कृष्णस्य पुरत स्थित्वा तुष्टाव त मुदान्विता ॥७६॥

तपे हुए सोने की कांति के तुल्य आभा वाली और करोड़ों सूर्यों के
 भा से युक्त-अल्प हास्य से प्रसन्न मुख वाली तथा शरत्काल के विकसित
 कमलों के सम सुन्दर नेत्रों वाली वह थी ॥७४॥ रक्त वस्त्रों के परिधान वाली-
 रत्नों के आभरणों से समलङ्कृत तथा निद्रा, कृष्ण, क्षुत्, विषासा, दया, श्रद्धा और
 क्षमा आदि उन सब की भ्रमस्त शक्तियाँ की वह इच्छिष्टात् देवता थी-भय
 करने वाली-सौ भूज और वाली-दुर्गति के नाश करने वाली वह दुर्गा देवी थी
 ॥७५॥ आत्मा की शक्ति रूपा वह जगतों की पट जननी थी और वह
 त्रिशूल-शक्ति-शार्ङ्ग-धनु मङ्ग-शर-शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म अक्षम ला-कमण्डल-वज्र-
 मङ्कुश-पाश-भृशुण्डी-दण्ड-तोमा-नारायणास्त्र-ब्रह्मास्त्र-रौद्र-पाशुपत-पार्जन्य-
 वारुण-वाह्य और गान्धर्व अस्त्रों को धारण करती हुई सती श्री कृष्ण के
 आगे स्थित होकर आनन्द से युक्त हो उनकी स्थिति करने लगी थी
 ॥७४-७६॥

अहं प्रकृतिरीशानी सर्वेशा सर्वं विणी ।
 सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥७७॥
 त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रता त्वमेवजगापतिः ।
 गतिश्चपाता स्रष्टा च संहर्ता च पुनर्विधिः ॥७८॥
 परमानन्दरूपं त्वा वन्दे चानन्दपूर्वकम् ।

चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत् ॥७६॥

तस्यप्रभावमतुलवर्णितुं कः क्षमोविभो ! ।

भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः ॥८०॥

चराचरांश्च विश्वेषु देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ।

मद्विधाः कति वादेवी.स्रष्टुं शक्तश्चलोलया ॥८१॥

परिपूर्णांतमं स्वीड्यं वन्द चानन्दपूर्वकम् ।

महान् विराट् यत्कलांशो विश्वासख्याश्रयो विभो ! ॥

वन्दे चानन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम् ॥८२॥

प्रकृति ने कहा-मैं ईशानी प्रकृति हूँ जोकि सबकी स्वामिनी और सर्व रूपिणी हूँ । समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली हूँ और मेरे द्वारा ही यह समस्त जगत शक्ति वाला है ॥७७॥ मैं आप के द्वारा सृजन की गई हूँ अतएव स्वतन्त्र नहीं हूँ । आप ही जगत्‌ों के पति हैं । आप ही सबकी गति हैं-पान। अर्थात् पालन करने वाले हैं-सृजन करने वाले-संहार करने वाले और फिर विधि हैं ॥७८॥ आप परम आनन्द के स्वरूप हैं, मैं आनन्द के साथ आपकी वन्दना करती हूँ । आपके चक्षु के निमेष काल में ब्रह्मा का पतन होता है ॥७९॥ हे विभो ! उन आपके अतुल प्रभाव को कौन वर्णन करने के लिये समर्थ हो सकता है ? जो अपने एक भ्रूभङ्ग मात्र से ही विष्णुओं की कोटि का सृजन कर देता है ॥८०॥ आप समस्त विश्वों में ब्रह्मा से आदि देवों को और अन्य चर और अचरों का सृजन किया करते हैं । अथवा मुझ जैसी कितनी ही देवियों को लीला से ही सृजन करने लिये आप समर्थ है ॥८१॥ हे विभो ! भली भाँति स्तुति करने के योग्य परिपूर्णांतम आपकी मैं आनन्द के साथ वन्दना करती हूँ । जिसकी कला का अंश विश्व-संख्या का आश्रय महान विराट् है उस परमात्मा ईश्वर की मैं आनन्दपूर्वक वन्दना करती हूँ ॥८२॥

१ यञ्च स्तोतुमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

वेदाः अहञ्च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम् ॥८३॥

वेदाश्च विदुषा श्रेष्ठाः स्तोतु शक्ता न लक्षत ।
 निर्लक्ष्य क क्षमं स्तोतु त निरीह नमाम्यहम् ॥८५॥
 इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे ।
 उवास नत्वा श्रीकृष्ण तुष्टुवुस्तासुरेश्वरा ॥८५॥
 इति दुर्गाकृत स्तोत्र कृष्णस्य परमात्मन ।
 य पठेदच्छनाकाले स जयी सर्वतं सुखी ॥८६॥
 दुर्गा तस्य गृह त्यक्त्वा नैव याति कदाचन ।
 भवाब्धौ यथासा भाति यात्यन्ते श्रीहरे पुरम् ॥८७॥

जिस आपका स्तवन करने के लिये ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि देव गण-समस्त वेद-सरस्वती देवी और मैं असमर्थ हैं, उन प्रकृति से पर आपकी वन्दना करता हूँ ॥८३॥ समस्त वेद और विद्वानो मे श्रेष्ठ लक्ष्य से स्तुति करने मे समर्थ नहीं होते हैं फिर बिना लक्ष्य के योग्य उस निरीह की स्तुति करने मे कौन समर्थ है । मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥८४॥ इस प्रकार से कहकर वह दुर्गा श्री कृष्ण की प्रणाम करके वर रत्नो के सिंहासन पर स्थित हो गई थी और सुरेश्वर उसकी स्तुति करते थे ॥८५॥ परमात्मा श्री विष्णु का यह दुर्गा के द्वारा किया हुआ स्तोत्र है । जो इस स्तोत्र को अर्चना के समय पढता है वह जय वाला और सब प्रकार से सुखी होता है ॥८६॥ दुर्गा देवी उसके प्रह का त्याग करके कभी भी नहीं जाया करती है । वह इस स्तोत्र का पाठ करने वाला इस भद्र सागर मे यज्ञ से शोभित हाता है और अन्त समय मे श्री हरि के पुर मे जाता है ॥८७॥

४-सृष्टिनिरूपणम् (२)

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य रसनाग्रतः ।
 शुद्धस्फटिकसङ्काशा देवी चैका मनोहरा ॥१॥

शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालङ्कारभूषिता ।

विभ्रती जपमालाञ्च सा सावित्री प्रकीर्तिता ॥२॥

सा तुष्टाव पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम् ।

पुटाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥३॥

नमामि सर्वंबीजं त्वां ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।

परात्परतरं श्यामं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥४॥

इत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने दरे ।

उवास श्रीहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्रसूः ॥५॥

आविर्भव तत्पश्चात् कृष्णस्य परमात्मनः ।

मानसाच्च पुमानैकस्तप्तकाञ्चनसन्निभः ॥६॥

मनामथ्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम् ।

तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीषिणः । ७॥

इस अध्याय में सृष्टि का निरूपण किया जाता है। सौमि ने कहा-इसके अनन्तर श्री कृष्ण की रसना के अग्र भाग से शुद्ध स्फटिक मणि के समान दीप्ति वाली एक अत्यन्त मनोहर देवी का आविर्भाव हुआ था ॥१॥ वह देवी शुक्ल वर्ण के वस्त्रों का परिवान करने वाली और समस्त प्रकार के अलङ्कारों से विभूषित थी। जप करने की माला को हाथ में धारण करती हुई वह-सावित्री इस नाम से प्रकीर्तिन हुई थी ॥२॥ वह आग से स्थित होकर अञ्जलि पुर करके भक्ति भाव से भुके हुए कन्धरा वाली साध्वी थी और इस प्रकार से उसने सनातन परब्रह्म की स्तुति की थी ॥३॥ सावित्री ने कहा-मैं ब्रह्म ज्योति सनातन आपको नमस्कार करती हूँ। आप पर से भी पर हूँ, श्याम वर्ण वाले-निरञ्जन एवं निर्विकार हूँ ॥४॥ इतना कहकर स्मित से युक्त वह देवी जो श्रुति को प्रसूत करने वाली है, श्री हरि को पुनः नमस्कार कर श्रेष्ठ रत्न जटित सिंहासन पर स्थित हो गई थी, ॥५॥ इसके पश्चात् परमात्मा श्री कृष्ण के मानस से तप्त सुवर्ण के समान एक पुरुषप्रकट हुआ था ॥६॥ वह सब कामियों

के मनकी पञ्च वाण से मयन करता था । इसी लिये महा मनीषी मण्डल ने उसका नाम ही मन्मथ रख दिया था ॥७॥

तस्य पु सोवामपाश्वत् कामस्य कामिनी वरा ।

वभूवातीवलनिता सर्वेषा मोहकारिणी ॥८॥

रतिर्वभूव सर्वेषा दां दृष्ट्वा सम्मिता सतीम् ।

रतीति तेन तन्नाम श्रुवदन्ति मनीषिणः ॥९॥

हरिं स्तुत्वा तथा साद्वैस उवासहरे पुर ।

रत्नमिहामने रम्ये पञ्चवाणो धनुद्धर ॥१०॥

मारण स्तम्भनञ्चैव जृम्भण शोषणन्तथा ।

उन्मादन पञ्चवाणान् पञ्चवाणो विभक्ति सः ॥११॥

वाणाश्रिक्षेप सर्वाश्च कामो वाणपरीक्षया ।

मद्य सर्वे सकामान्न वभुवुगीश्वरच्छया ॥१२॥

रतिदृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेत पातो वभूव ह ।

नत्र तस्मी मद्वागीमी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया ॥१३॥

उस पुत्र के काम पादर्व से जिसका नाम काम था एक परम श्रेष्ठ प्रत्यन्त ललित और सबक मन को मोहित करने वाली कामिनी रति सम्पुन्न हुई थी । सभी ने उसे मन्द भुम्भन से युक्त मनी को देगा था । इसलिये मनीषी लोग उसका नाम रति एसा कहा करते हैं क्यों कि उसे देखकर रतीक्षि की इच्छा समुत्पन्न हो जाती है ॥८-९॥ उसी रति के साथ पञ्चवाण धनुर्धारी का काम देव हरि की स्तुति करके रम्य रत्नों के मिहासन पर हरि के साथ ही वास करने वाला हो गया था ॥१०॥ वहपद्य वाण काम मारण-स्तम्भन-जृम्भण शोषण और उन्मादन नाम वाले पाँच वाणों की धारण करने वाला था । जैसे हा वाणों के ये नाम हैं जृम्भण वैसा ही इनका काम प्रभावती होता है ॥११॥ उस काम देव ने अपने वाणों की परीक्षा करने के लिये समस्त वाणों का धारण किया था अर्थात् छात्र दिया था । तुरन्त ही वाणों के लगते ही सब लोग ईश्वर की इच्छा से काम वासना से सम्बन्धित हो गये थे ॥१२॥ उस

समय उस परम सुन्दरी रति को देख कर ब्रह्मा के चीरों का पात हो गया था ।
वहाँ पर महा योगी जो स्थित थे उन्होंने उसको मन्त्र से आच्छादित कर
दिया था ॥१३॥

वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ।
काटितालप्रमाराश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥
कृष्णस्तद्वर्द्धनं दृष्ट्वा ससर्जपिः स्वलीलया ।
निःश्वासवायुना सार्द्धं मुखविन्दुं समुद्गिरत् ॥१५॥
विन्दुवीथं प्लावयामास मुखविन्दुजलं द्विज ।
तस्य किञ्चिज्जलकणं वह्निं सान्तञ्चकार ह ॥१६॥
ततः प्रभृति तेनाग्निस्तोयान्निर्वाणतां ब्रजेत् ।
आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता ॥१७॥
उत्तस्पातज्जलादेकः पुमान्मन्दरणाःस्मृतः ।
जन्नाधिष्ठातृदेवोऽनीसर्वेषां यादसाम्पतिः ॥१ ॥
आविर्भवूव कन्यंका तद्वह्नेर्वामपार्श्वतः ।
सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१९॥
जलेयस्य वामपार्श्वीत् कन्या चंका बभूव सा ।
वरुणानीति विख्याता वरुणस्य पिया सती ॥२०॥
बभूव पवनः श्रीमान् विभोर्निःश्वामवायुना ।
स प्रगाणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः ॥२१॥

उस समय को दग्ध करके सुरेश्वर जलता हुआ अग्नि समुत्थित हो
गया था । उस मन्दर कोटि तान के समान उसका प्रभाव था और
अग्नी मिखा (ली) के सहित समुज्ज्वलित हो रहा था ॥ १४॥
भगवान् श्री कृष्ण ने उस अग्नि देव के इस प्रकार के वड़ाव को देखकर अपनी
लीला से जलों की सृष्टि की थी और अपनी निःश्वास की वायु के साथ मुख
विन्दु का समुद्गिरण कर रहे थे ॥१५॥ हे द्विज ! उस मुख के विन्दु जल ने

विश्वों के समुदाय को प्लावित कर दिया था और उसने यात्रे से जल कण ने उस बड़ी हुई बह्नि को एक दम शान्त कर दिया था ॥१६॥ तभी से लेकर इसी कारण से यह अग्नि तल से निर्वाणता को प्राप्त हो जाती है । उससे फिर एक पुरण प्रकट हुआ था जोकि उसका अधि देवता था ॥१७॥ उस जल से भी एक पुरण उठकर लडा हुआ था जो चरण इस नाम से कहा गया था । यह जलो का अधिष्ठात् देव था और यह सप्त जलाशयो तथा सागरो का स्वामी था ॥१८॥ उस अग्नि के वाम पार्श्व से एक कन्या प्रकट हुई थी । उसका नाम स्वाहा था जिसको मनीषी गण उसकी पत्नी कहते हैं ॥१९॥ जलेन के वामि भाग से भी एक कन्या समुत्पन्न हुई थी । यह वरुणानी इस नाम से विख्यात हुई थी और वरुण देव की सती प्रिय पत्नी थी ॥२०॥ व्यापक भगवान के नि द्वास वायु से श्रोमान पवन देव ने जन्म धारण किया था । उती की कला से नि द्वास का उद्भव होता है जोकि तभी को प्रमाण रूप से ज्ञात है ॥२१॥

तस्यवायोर्वाग्निर्वात् कन्यार्चकावभूव ह ।

वायो पत्नीसाचदेवीवायवीपरिकीर्त्तिता ॥२२॥

वृष्णस्य कामवाणेन रेतःपातो वभूव ह ।

जले तद्रेचन चक्रे लज्जया सुरससदि ॥२३॥

सहस्रवत्सरान्ते तडिडम्बरुप वभूव ह ।

ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वोघाधार एव सः ॥२४॥

यस्य कलोमदिवरेविदवकाम्यव्यवस्थिति ।

स्थूलात् स्थूलतम सोऽपिमहान्नान्यस्तत परः ॥२५॥

स एव षोडशाशोऽपिकृष्णस्मपरमात्मनः ।

महाधिष्णुः स विज्ञेय सर्वाधारः सनात्तन ॥२६॥

महार्णवे शयानः स पद्मपत्र जले ।

वभूवतुस्तौ द्वौ दैतयो तस्य कर्णमलोद्भवौ ॥२७॥

ती जलाच्चसमुत्थायब्रह्माणुहन्तुमुद्यती ।

नारायणश्च भगवान् जघने तो जघान ह म ॥२८॥

वभूव मेदिनी कृत्स्ना क।र्त्स्न्येन भेदसा तयोः ।

तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुन्धरा ॥२९॥

उम वायु देव के वाम पादवं से एक कन्या थी वसुन्धरा हुई थी । वह देवी वायु देव की पत्नी थी जोकि वायवी उम नाम से कहां गई है ॥२२॥ श्री कृष्ण को काम के कारण से गेह (वीर्य) का पात हो गया था । देवों की उस सौंदर्य में लज्जा के कारण उसका रेचन जल में कर दिया था ॥२३॥ एक सहस्र वर्षों के समाप्त होने पर उस श्रीकृष्ण के वीर्य ने जल में शिशु का स्वरूप प्राप्त किया था । उसने एक महान विराट की उत्पत्ति हुई थी, वह ही इस विश्वों के समुदाय का आधार हुआ था ॥२४॥ जिस विराट के एक लोम के विवर में एक ही विश्व की व्यवस्थित होती है, वह भी स्थूल से अधिक स्थूलतम है और अन्य उससे भी पर है ॥२५॥ वह ही सोलहवां अंश परमात्मा कृष्ण का है जो सबका आधा २ और सनातन महाविष्णु जानने के योग्य होता है ॥२६॥ जिस प्रकार से जल में पद्म पत्र होता है वैसे ही वह महाराज में शयन करने वाला रहता था । उसके कान के मल से जन्म ग्रहण करने वाले दो दैत्य हुए थे ॥२७॥ वे दोनों जल से उठकर ब्रह्मा का हनन करने को उद्यत हो गये थे । भगवान् नारायण ने उन दोनों को जघन में हनन किया था ॥२८॥ उन दोनों के भेद से सम्पूर्णतया यह कृत्स्न मेदिनी हुई थी । वहां पर ही विश्व थे और वह देवी वसुन्धरा थी ॥२९॥

५-सृष्टिप्रकारवर्णनम्

भोभोपरोप्यो गोलोके किं नित्याः किं नु कल्पिताः ।

मम सन्देहभेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

सर्वादिसृष्टौ ताः क्लृप्ताः प्रलये प्रलये स्थिताः ।

ये लाकर

सर्वादिसृष्टिकथनयन्मयाकथितद्विज ॥२॥

सर्वादिसृष्टौक्लृप्तौच नारायणमहेश्वरौ ।

प्रलयेप्रलयेव्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिश्चक्षा ॥ ३ ॥

सर्वादोब्रह्मकल्पस्यचरितकथित द्विज ।

वाराहपादमकल्पो द्वौ कथयिष्यामिश्रोष्यसि ॥४॥

ब्राह्मवाराहपादमाश्चकल्पाश्चत्रिविधा मुने ।

यथायुगानिचत्वारिक्रमेण कथितानि च ॥५॥

सत्यत्रैताद्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्गुम् ।

त्रिशतैश्च पृथ्यधिकैर्युगैर्दिव्यं युग स्मृतम् ॥६॥

मन्वन्तरन्तु दिव्याना युगानामेकसप्ततिः ।

चतुर्दशसु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम् ॥७॥

इस अध्याय में सृष्टि के प्रकार का वर्णन किया जाता है। शीनक ने कहा —गोलोक धाम में जो गी —गोप और गोपिया है क्या वे नित्य हैं या कल्पित हैं ? मुझे यह इस विषय में बड़ा सन्देह है सो आप उमका भेदन करने के लिये मेरे समक्ष पूणतया व्याख्या करने के लिये योग्य होते है ॥१॥ सीति ने कहा—सब की भादि सृष्टि मे वे क्लृप्त हैं और प्रलय-प्रलय मे स्थित हैं । हे द्विज ! सर्वादि सृष्टि का कथन मैंने कर दिया है ॥२॥ सर्वादि सृष्टि मे नारायण और महेश्वर क्लृप्त होते हैं वे प्रलय - प्रलय मे कल्प तथा स्थित रहते हैं और वह प्रकृति है ॥३॥ हे द्विज ! सर्वादि मे ब्रह्म कल्प का चरित कहा गया है । अब वाराह कल्प और पाद्य कल्प इन दोनों को मैं कहूँगा, तुम उनका श्रवण करोगे ॥४॥ हे मुने ! ब्राह्म-वाराह और पाद्य ये तीन प्रकार के कल्प होते हैं । यथा युग इन चारों को मैंने क्रम से कहा है ॥५॥ सत्य-त्रैता-द्वापर और कलि ये चार युग होते हैं । तीन सौ साठ युगों से एक दिव्य युग कहा गया है ॥६॥ मन्वन्तर जो होता है वह इकहत्तर दिव्य युगों का होता है । जब चौदह मनु गत हो जाय करते हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥७॥

त्रिशतैश्च पृथ्यधिकैर्दिनेर्वर्षञ्च ब्रह्मणः ।

अष्टोत्तर वर्षशत विघ्नेरायुनिरूपितम् ॥८॥

एतन्निमेषकालस्तु कृष्णस्य परमात्मनः ।

ब्रह्मणश्चायुषा कल्पः कालावद्भिरनिरूपितः ॥१८॥

क्षुद्रकल्पा बहुतरास्ते संवर्त्ताद्वयः स्मृताः ।

सप्तकल्पान्तर्जोवी च मार्कण्डेयश्च तन्मतः ॥१९॥

ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्तितः ।

विधेश्च सप्तदिवसे मुनेरायुनिरूपितम् ॥११॥

ब्राह्मवाराहपाद्मश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः ।

कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय ॥१२॥

ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः ।

मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाजया प्रभोः ॥१३॥

वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात् ।

विष्णोर्वाराहरूपस्य द्वारा चातिप्रयत्नतः ॥१४॥

ऐसे तीन सौ साठ दिनों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है । ऐसे एक सौ आठ वर्षों की ब्रह्मा की आयु निरूपित की गई है ॥१८॥ यह इतना समय अर्थात् ब्रह्मा की पूर्ण आयु परमात्मा श्रीकृष्ण का एक निर्मेष काल होता है । काल के वेत्ताओं ने ब्रह्मा की आयु से कल्प निरूपित किया है ॥१९॥ जो बहुत-सारे क्षुद्र कल्प होते हैं वे संवर्त्त आदि कहे गये हैं । मार्कण्डेय मात कल्पों के अन्त तक जीवन रखने वाले हैं ऐसा उनका मत है ॥१९॥ वह ब्रह्मा के दिन से ही कल्प का परिकीर्तन किया गया है । विधाता के सात दिन में मुनि की आयु निरूपित की गई है ॥११॥ ब्राह्म-वाराह और पाद्म ये तीन कल्प बताये गये हैं । इन तीनों कल्पों में जिस तरह सृष्टि होती है उसे कहता हूँ । उसका तुम सब श्रवण करो ॥१२॥ ब्राह्म कल्प में स्रष्टा ने इस मोहिनी का सृजन करके फिर उसने इस सृष्टि को किया था । प्रभु की आशा से मधु कैटभ के भेद से सृष्टि की गई थी ॥१३॥ वाराह कल्प में यह मोहिनी रसातल में लुप्त हो गई थी, उसका समुद्धार करके लाया गया था । वाराह रूप वाले विष्णु के

द्वारा घट्यन्त प्रयत्न से लुप्त थीर भग्न इस मोहिनी को रसातल से लाकर उद्वार किया था ॥१५॥

पाद्मेविष्णोर्नाभिपद्मेरूपटा सृष्टिविनिर्माणे ।
 त्रिलोकीग्रहालोकान्तानित्यलोकत्रयं विना ॥१५॥
 एतत्तु कालसख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे ।
 किञ्चक्षित्तिरूपेण सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१६॥
 अतःपरन्तु गोलोके गोलोकेशो महान् विभुः ।
 एतान् सृष्ट्वा किञ्चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१७॥
 एतान् सृष्ट्वा जगामासौ सुरम्य रासमण्डलम् ।
 एतं समेतो भगवानतीवकमनीयकम् ॥१८॥
 रम्भाणाकल्पवृक्षाणामध्येऽतीवमनोहरम् ।
 सुविस्तीर्णञ्च सुसमं मुस्निग्धमण्डलाकृतम् ॥१९॥
 चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम् ।
 दधिलाजाशुक्लधान्यदूर्वापिर्णपरिप्लुतम् ॥२०॥
 पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तनवचन्दनपल्लवैः ।
 समुत्तरम्भाम्स्तम्भानां समूहैः परिवेष्टितम् ॥२१॥

पाद्म कल्प में विष्णु की नाभि के पद्म में मृष्टा ने सृष्टि का विशेष रूप से निर्माण किया था । जिसमें ब्रह्म लोक के अन्त तक यह त्रिलोकी थी और तीन या नित्य लोक हैं वे नहीं थे ॥१५॥ यह मैंने सृष्टि के निरूपण में काल की सख्या बनला दी है और कुछ सृष्टि का भी निरूपण कर दिया है, अब और कुछ पुन तुम श्रवण करना चाहते हो ? ॥१६॥ क्षीनक ने कहा—इससे परे गोलोक में गोलोक भगवान महान विभु हैं । इनका सृजन करके फिर क्या किया था—यह मुझे व्याख्या करके बतान के लिये आप योग्य होते हैं ॥१७॥ सीति ने कहा—इन सब की सृष्टि करके यह फिर अ-यन्त रम्य रास मण्डल

में चले गये थे जो रासमण्डल अत्यन्त ही कमनीय है, वहाँ इन सबको साथ लेकर भगवान गये थे ॥१८॥ अत्यन्त रम्य कल्प वृक्षों का समुदाय वहाँ पर है उनके मध्य में अत्यन्त मनोहर और बहुत विस्तार वाला समतल स्वरूप से युक्त एवं गुस्तिगन्ध मण्डलाकार वाला स्थान है ॥१९॥ वह स्थान चन्दन-अगुरु-वस्तूरी और कुङ्कुम से भली भाँति संस्कार किया हुआ है। दधि-लाजा (खील)-शुक्ल धान्य-दूर्वा-पर्णों से परिष्कृत है ॥२०॥ यह सूत्र ग्रन्थ से युक्त और नव चन्दन पल्लवों से तथा संयुक्त कादली के स्तम्भों के समूहों से परिवेष्टित है ॥२१॥

सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः ।

रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधिवासितैः ॥२२॥

श्रृङ्गारार्हभोगवस्तुसमूहपरिवेष्टितैः ।

अतीवललिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम् ॥२३॥

तत्र गत्वा च तैः साद्वै समुवास जगत्पतिः ।

दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मुनिसत्तम ! ॥२४॥

आविर्बभूव कन्यंका कृष्णस्य वामपार्श्वत ।

धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यप्रभोः पदे ॥२५॥

रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेःपुरः ।

तेन राधासमाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥२६॥

प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ।

आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥२७॥

उत्तम रत्नों के सार के द्वारा निर्मित मण्डपों की तीन करोड़ संख्या हैं उनसे तथा जलते हुए से रत्नों के प्रदीपों से पुष्प और धूप की अधिवास से एवं श्रृङ्गार के योग्य भोग की वस्तुओं के समुदाय से युक्त और अतीव ललित आ कल्प तल्पों से वह मण्डल सुशोभित है ॥२२-२३॥ वहाँ पर उनके साथ

जाकर जगत यति ने निशाम किया था । हे मुनि थोड़ा ' वे मन्त्र ब्रह्मा राम को दायकर ग्रन्थ-त विस्मित हुए थे ॥२४॥ उन समय श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व में एक कन्या प्रकट हुई थी । उसने दौडकर पुत्र लाकर प्रभु के चरण में अर्पण दिया था ॥२५॥ रास में सम्भूत हाकर उसने गोलोक में हरि क भाग्य अपने आपको अवश्रित किया था । इसी से वह पुरा वेत्ताओं के द्वारा हे द्विजोत्तम ! राधा-इस नाम से समाख्यात हुई है ॥२६॥ वह परमात्मा कृष्ण की प्राणा की अपिष्ठात्री देवी है ; वह प्राणा से आविर्भूत हुई थी और प्राणा से भी अभिन्न बनी हुई है ॥२७॥

सा च सम्भाष्य गोविन्द रत्नसिंहासने वरे ।
 उवाम सस्मिता भर्तुं पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ॥२८॥
 तस्याश्च लोमकूपेभ्य सद्यो गोपाङ्गनागण ।
 आविर्बभूव रूपेण वेशेर्नैव च तत्सम ॥२९॥
 लक्ष्मणकोटिपरिमित शश्वत्सुस्थिरयौवन ।
 सख्याविद्भिश्चसख्यातोगोलोकगोपिकागरा ॥३०॥
 कृष्णस्य लोमकूपेभ्य सद्यो गोपगणोमुने ।
 आविर्बभूव रूपेण वेशेर्नैव च तत्सम ॥३१॥
 त्रिशत्कोटिपरिमित कमनीयोमनोहर ।
 सख्याविद्भिश्चसख्यातोवल्लव नागण श्रुतौ ॥३२॥
 कृष्णस्य लोमकूपेभ्य सद्यश्चाविर्बभूव ह ।
 नानावर्णी गोगणश्च शश्वत्सुस्थिरयौवन ॥३३॥
 वलीवर्दाः सुरम्यश्च वत्सा नानाविवा शुभा ।
 अतीवललिता श्यामा वह्निश्च कामवेनव ॥३४॥

उम राधा ने गोविन्द से सम्भाषण किया और फिर वह स्मित से युक्त होती हुई अपने स्वामी के मुख वपल का निरीक्षण करती हुई थोड़ा रत्न

सिंहामन पर निवृत हो गई थी ॥२८॥ और फिर उनके रोमों के छिद्रों ने तुरन्त ही गंभियों का समुदाय प्रकट हो गया था । जिन गोपियों का रूप और वेश क्लृप्त तथा के समान ही था ॥२९॥ एक लाख करोड़ परिमाण वाला और निरन्तर सुस्थिर जीवन ने समन्वित गोपिकाओं का समूह गोलोक में था—यह संख्या के ज्ञान रखने वाले विद्वानों के द्वारा गणना बताई गई है । ३०॥ हे मुने ! इसी भाँति श्री कृष्ण के लोभकूपों से तुरन्त ही गोपों का गण आदिर्भुत हुआ था । यह गोपों का समुदाय भी वेश और रूप लावण्य से क्लृप्त श्री कृष्ण के ही तुल्य था ॥३१॥ यह गोपों का गण तीस करोड़ परिमाण वाला था और अत्यन्त कमनीय एवं मनोहर था । श्रुति ने इन दलभों का गण संख्या के देता मनीषियों ने संख्यात किया है ॥३२॥ श्री कृष्ण के रोमों के छिद्रों से इसी समय तुरन्त ही अनेक प्रकार के वर्णों वाली गोओं का गण भी प्रकट हुआ था जोकि शब्दतः सुस्थिर रहने वाले जीवन से युक्त था ॥३३॥ वशी वदं— गुरभियों—वत्स ये सब नाना प्रकार के मुन थे । अत्यन्त सुन्दर ये थीं—कुछ ध्यामा थीं और बहुत सी काम धेनु थी ॥३४॥

तेषामेकं बलीवर्द कोटिसिंहसमं बले ।

शिवाय प्रददौ कृष्णो वाहनाय मनोहरम् ॥३५॥

कृष्णांघ्रिनखरन्ध्रे न्यो हंसपंक्तिर्मनोहरा ।

आविर्बभूव सहना स्त्रीपुंवत्सन्मन्विता ॥३६॥

तेषामेकं राजहंसं महाबलपराक्रमम् ।

वाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने ।

वामकर्णस्य विवरात् कृष्णस्य परमात्मनः ।

गणः श्वेतनुरङ्गानामाविर्भूता मनोहरः ॥३७॥

तेषामेकञ्चश्वेताश्वं धर्माय वाहनाय च ।

ददौ गोपाङ्गनेशश्च संप्रीत्या सुरसंनदि ॥३८॥

दक्षकर्णस्य विवरात् पुंसश्च सुरसंसदि ।

धाविर्भूता सिंहपक्तिर्महाबलपराक्रमा ॥३९॥
 तेषामेक ददौ कृष्ण, प्रकृत्यं परमादरम् ।
 अमृत्यवरमाल्यञ्च वर यदभिवाञ्छितम् ॥४०॥
 आविर्भव कृष्णस्य गुह्यदेशात्तत परम् ।
 पिङ्गलश्च पुमानेक पिङ्गलश्च गणं सह ॥४१॥
 आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यका स्मृता ।
 य पुमान् स कुबेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वर ॥४२॥

उनमें एक बली वर्दं करोड सिंहों के समान बल म था । इस परम मनोहर बली वर्दं को श्रीकृष्ण ने शिव के लिये सवारी करने को दे दिया था ॥३५॥ श्री कृष्ण के चरणों के नखों के रन्ध्रों से परम सुन्दर हंसों की पक्ति प्रकट हुई थी । यह हंसों की पक्ति सहसा स्त्री और पुरुष भेदों से ममत्त्विन थी ॥३६॥ उन हंसों में एक राज हंस था जो महान बल और पराक्रम वाला था उसको ब्रह्मा के वाहन बनाने के लिये ब्रह्मा को श्री कृष्ण ने दे दिया था क्योंकि ब्रह्मा महान तपस्वी थे ॥३७॥ परमात्मा श्री कृष्ण क वाम कर्ण के विवर से श्वेत तुरङ्गी का एक मनोहर गण प्रकट हुआ था ॥३८॥ उनमें से एक श्वेत अश्व को देवा की सभा में गोपाङ्गनाम्नी क ईश श्री कृष्ण ने वाहन बनाने के लिये धर्म को बड़ी प्रीति के साथ दे दिया था ॥३९॥ दबों की सभ में परम पुरुष के दाहिने कान छिद्र से महान बल पराक्रम वाली एक सिंहों की पक्ति प्रकट हुई थी ॥४०॥ उनमें से एक को श्री कृष्ण ने परम आदर से प्रहृष्टि दबों को दे दिया था और अमृत्य वर मृत्य तथा अभिवाञ्छित वर भी दिया था । इसके पश्चात् कृष्ण के गुह्य देश में पिङ्गल गणा क साथ एक पिङ्गल पुरुष प्रकट हुआ था ॥४१॥ चू कि ष गुह्य भाग में प्रकट हुए य इन्हीं कारणों से वे लोग गुह्यक कहे गये हैं और जो पुमान् था वह गुह्यको वा अधीश्वर धनेश कुबेर था ॥४२॥

वभूव कन्यका चेका कुबेरवामपाश्वंत ।

कुबेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणा मनोरमा ॥४३॥

भूतप्रेतपिशाचाश्चकृष्णाण्डब्रह्मराक्षसाः ।
 वेताला विकृतास्तस्याविभूता गृह्यदेशतः ॥४४॥
 षड्भ्रजक्रगदापद्मधारिणो वनमानिनः ।
 पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥४५॥
 किरीटिनः कुण्डलिनो रत्ननूपणभूषिताः ।
 आविभूताः पार्श्वदाश्च कृष्णस्यमुखतो मुने ॥४६॥
 चतुर्भुजान् पार्श्वदाश्च ददौ नारायणाय च ।
 गृह्यकान्गृह्यकेशायभूतादीन्शङ्कराय च ॥४७॥
 द्विभजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा वराः ।
 ध्यायन्तश्चरणाभोजं कृष्णस्यसन्ततं मुदा ॥४८॥
 दास्ये नियुक्ता दासाश्चैवार्धमाश्रय यत्नतः ।
 आविभूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः ॥४९॥

धनेश कुबेर के चाम पार्श्व से एक कन्या हुई थी। यह देवी कुबेर की पत्नी थी जो सुन्दरियों में परम मनोरम थी ॥४३॥ उस कुबेर के गुरु भाग से भूत-प्रेत-पिशाच-कृष्णाण्ड-ब्रह्मराक्षसवेताल विकृत स्वरूप वाले प्रकट हुए थे ॥४४॥ हे मुने ! श्री कृष्ण के मुख से पार्श्व आविभूत हुए थे जो सब शंख-चक्र-गदा धारण करने वाले थे-वन माला पहिने हुए थे-जिनके पीत वस्त्र का परिधान था-वे सभी श्याम वर्ण वाले श्रीर चार भुजाओं से युक्त थे । जिनके मस्तक पर किरीट था श्रीर कानों में कुण्डल धारण किये हुए थे-सभी पार्श्व रत्नों के भूषणों से गलज्जुत थे ॥४५-४६॥ श्री कृष्ण ने चतुर्भुज पार्श्वदों को नारायण के लिये-गृह्यकों को धनेश के लिये श्रीर भूतादि को शङ्कर के लिये दे दिया था ॥४७॥ दो भुजा वाले श्रीर श्याम वर्ण से युक्त तथा करों में जयमाला लिये हुए श्रेष्ठ भवदा आनन्द के साथ श्री कृष्ण के चरण कमलों में ध्यान करने वाले थे ॥४८॥ दास्य भाव में नियुक्त श्रीर दास का मस्तक पूर्ण अर्ध लेकर सत्र कृष्ण परायण वैष्णव प्रकट हुए थे ॥४९॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः ।
 आविर्भूताः पादपद्मात् पादपद्मैकमानसाः ॥५०॥
 आविर्भवुः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्भयकराः ।
 त्रिशूलपट्टिभरास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥५१॥
 दिगम्बरा महाकायाज्वलदग्निशिखोपमाः ।
 ते भैरवामहाभागाः शिवतुल्याश्च तेजसा ॥५२॥
 रुद्रसंहारकालास्याप्रसितक्रोधभीषणाः ।
 महाभैरवसद्वान्नावित्यष्टौ भैरवाः स्मृता ॥५३॥
 आविर्भवुः कृष्णस्य वामनेत्राद्भयङ्कराः ।
 त्रिशूलपट्टिभवाघ्नचर्माम्बरगदावर ॥५४॥
 दिगम्बरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रनेत्र ।
 स ईशानो महाभागो दिक्पालानामपोश्वर ॥५५॥
 हाकिन्यश्चैव योगिन्य क्षेत्रपाला सहस्रज
 आविर्भवुः कृष्णस्य नासिकाविवरोदरात् ॥५६॥
 सुरास्त्रकोटिमस्थाना दिव्यमूर्तिजरावरा ।
 आविर्भवुः सप्तमा पुण्ड्रिण्य-देवता ॥५७॥

श्री कृष्ण के पाद पद्म में धरण कमलों में एकनिष्ठ मन वाले भक्त
 आविर्भूत हुए थे जिनके नेत्र अश्रुओं से पूर्ण थे तथा गद्गद वाली वाले शीर
 पुलकों से समस्त अङ्ग अङ्कित थे ॥५०॥ कृष्ण के दाहिने नेत्र से त्रिशूल
 शीर पट्टि को धारण करने वाले महाभयङ्कर त्रिनेत्र चन्द्र शेखर प्रकट हुए थे
 ॥५१॥ ये सब दिगम्बर (गान्)-महानगरीर याने शीर जन्ती हुई अग्नि की
 शिखा के समान तेजस्वी थे । व सब महा नाग भैरव थे जो तेज से शिव के
 तुल्य थे ॥५२॥ रुद्र-सहस्र-नात्र-अग्नि क्रोध-भीषण-महाभैरव शीर सद्वान्नाव
 ये षाठ भैरव कहेंगे हैं ॥५३॥ श्री कृष्ण के वाम नेत्र से एक भयङ्कर
 पुरुष प्रकट हुआ जो त्रिशूल-पट्टि-का अघ्नचर्म के अम्बर शीरगदा को
 धारण करने वाला था । यह दिगम्बर था, महान् शरीर से युक्त-तीन नेत्रों

बाला श्रीर मस्तक में चन्द्रमा की घण्टा करने वाला था । यह महाभाग ईशान था जो कि दिक्पालों का अधीश्वर है ॥५४-५५॥ छृण्व के नाक के विवर ने डाकिनी-प्रांगिनी श्रीर महर्त्तों केनवान प्रकट हुये थे ॥५६॥ परममुख्य के पीठ के भाग से तीन करोड़ नुर सहसा आविर्भूत हुये थे जो अति श्रेष्ठ श्रीर दिव्यमूर्त्तियों वाले थे ॥५७॥

६-सृष्टिप्रकरणम् । (१)

तदाब्रह्मा तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम् ।
 ससृजे पृथिवीमादौ मधुकंठभमेदसा ॥१॥
 ससृजे पदंतामटी प्रधानान् सुमनोहरान् ।
 क्षुद्रानसंगान् किन्नूरुमः प्रधानान्यां निशामय ॥२॥
 समेरुञ्चैव कैलासं मलायञ्च हिमालयम् ।
 उदयञ्च तथाऽतञ्च सृजेलं गन्धमादनम् ॥३॥
 समुद्रान् ससृजे नप्त तदान् कतिविधा नदी
 वृक्षांश्च ज्ञाननगरं समुद्रास्यां निशामयः ॥४॥
 लवणेश्च नुराजपिर्दधिदुग्धजलार्गवान् ।
 लक्षणोज्ज्वलान् हिमंश्च परात्परात् ॥५॥
 नप्तद्वीपांश्च तद्भूमिमण्डले कमलाकृते ।
 उपद्वीपान्तथा सप्त सीमशैलान्श्च नप्त च ॥६॥
 निबोध विप्र द्वीपास्यांपुरा या विधिना कृता ।
 जन्वुशाककुण्डलक्षकौञ्चन्यग्रोद्वपौकरान् ॥७॥

उक्त अध्याय में सृष्टि के प्रकरण का वर्णन किया जाता है । नीति बोले—उक्त समय में ब्रह्मा ने तप करके सिद्धि जैती भी वह चाहेते थे प्राप्त

करती थी और फिर घाटि में मधु-कैटभ के भेद से पृथिवी का सृजन किया था ॥१॥ ब्रह्मा ने प्रधान घाट पर्वतों का सृजन किया था जोकि अत्यन्त सुन्दर थे । ऐसे छोटे २ तो बहुत से थे जिनकी कोई सख्या नहीं है उन्हें कहीं तक बतलावें । यहाँ तो जो प्रधान पर्वत थे उनके नामों का थबल करो ॥२॥ सुमेरु-कैलास-मलय-हिमालय उदय अस्त-सुवेल और गन्धमादन ये घाट उन प्रधान गिरियों के सुभ नाम हैं ॥३॥ फिर सात समुद्रों की सृष्टि की थी । कितने ही प्रकार के नद और नदियों का सृजन किया था-वृक्ष-ग्राम और नगरों की सृष्टि की थी । अब उन सातों समुद्रों के नामों का थबल करो ॥४॥ तदण समुद्र-इक्षु समुद्र-सुरा सागर-सायं (पूत) समुद्र-दधि सागर-दुग्ध समुद्र और जल समुद्र ये उन सातों के नाम हैं । एव नक्ष योजन का मान है और इनमें पर में भी पर जो हैं वह दुग्धे मान वाला होता चला जाता है ॥५॥ उस भूमि मण्डल में जोकि कमल के समान आवृत्ति वाला है, सात द्वीप सात उपद्वीप और सात सीमा दीवों का सृजन किया था ॥६॥ हे विप्र ! सबसे प्रथम द्वीप के नामों की समझो जो कि विधि के द्वारा निर्मित किय गये हैं । जम्बु शक कुश-प्लक्ष-क्रीश न्यग्रोध और पीण्डार य उन द्वीपों के नाम हैं ॥७॥

मगोरण्डसु शृङ्गेषु ससृजेऽष्टौ पुरी प्रभु ।
 अष्टाना लोकपालाना विहागय मनोहरा ॥८॥
 मूलेऽनन्तस्य नगरी निर्माय जगता पति ।
 ऊर्ध्वे स्वर्गाश्च मर्त्येव तेपागाग्या निशामय ॥९॥
 भूर्लोकञ्च भुवलोक स्वर्लोक मुमनोहरम् ।
 जनलोक तपालोक मन्यलानञ्च धीनक ॥१०॥
 शृङ्गमूर्द्धनि ब्रह्मलोक जरादिपरिव्रजितम् ।
 तद्गूर्ध्वे ध्रुवलाकञ्च सर्वत मुमनोहरम् ॥११॥
 तद्गु सप्तपातालान्निर्ममे जगदीश्वर ।
 स्वर्गातिरिक्तमोगद्यानधोऽय क्रमतो मुने ॥१२॥
 अतल वितलञ्चैव सुतलञ्च तलानाम् ।
 भूतलञ्च पाताल रनातलमस्तन ॥१३॥

सप्तद्वीपैः सप्तस्वर्गैः सप्तपातालसंज्ञकैः ।

एभिलोकैश्च ब्राह्माण्डं ब्रह्माधिकारमेव च ॥१४॥

ये पर्वत के आठ शृङ्ग हैं। उन आठों शिखरों पर प्रभू ने आठ पुण्ड्रियों की रचना की थी। ये पुण्ड्रियां आठों लोकपालों के विहार करने के लिए अत्यन्त मनोहर बनाई थीं ॥८॥

मूल में जगत् के पति ने अनन्त की नगरी का निर्माण करके ऊर्ध्व भाग में सात स्वर्गों का सृजन किया था। अब उन सात स्वर्गों के नामों को अबरण करो ॥९॥ हे शौनक ! सर्व प्रथम भूलोक है फिर बुदलोक-सुमनोहर स्वर्लोक—जनलोक-तपो लोक और फिर अन्त में सद्य लोक है। ये सात स्वर्गों के नाम हैं जोकि ऊर्ध्व भाग में हैं ॥१०॥ शृङ्ग के मूर्धा में ब्रह्म लोक है जो जरा आदि सब से रहित होता है। उसके भी ऊपर-ध्रुव लोक है जो सब से अधिक सुन्दर है ॥११॥ इसके नीचे के भाग में जगत के ईश्वर ने नाद पातालों का निर्माण किया था। हे मुने ! ये क्रम से यथः अधः हैं जोकि स्वर्ग के अतिरिक्त भोगों से मुक्त होते हैं ॥१२॥ अतल-वितल-सुतल-तलातल-महातल-पाताल और उसमें भी नीचे रसातल है ॥१३॥ ये इन सात नीचे के लोकों के नाम हैं। सातद्वीप-नाग स्वर्ग-सात पाताल इन लोकों से एक ब्रह्माण्ड होता है जोकि ब्रह्मा के अधिकार का ही क्षेत्र होता है ॥१४॥

एवञ्चासंख्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च ।

महाविष्णोश्च लोमाञ्चविवरेषु च शौनक ! ॥१५॥

प्रतिविश्वेषु दिक्षपाला ब्रह्मत्रिण्युमहेश्वराः ।

सुरा नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मायया ॥१६॥

ब्रह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः ।

न शङ्करो न धमश्च न च विष्णुञ्चक्रे सुराः ॥१७॥

सहस्रातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथापि सः ।

विश्वाकाशादिशाञ्चैवसर्वतोयद्यपिक्षमः ॥१८॥

कृत्रिमाणि च विश्वानि विश्वस्थानि च यानि च ।

अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्रवन्नश्वराणि च ॥१९॥

वैकुण्ठः शिवलोकश्च तयोः परः ।

नित्यो विद्वन्नहिभूतश्चात्माकाशदिशोयया ॥२०॥

इस प्रकार से असत्य ब्रह्माण्ड है । हे शीतक ! ये सब कृत्रिम ही होते हैं । ये सब महाविष्णु के लोमान्ज विचरों में स्थित रहा करते हैं ॥१५॥ प्रत्येक दिशों में इसी प्रकार से दिकपाल हैं और ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर होते हैं । देवगण और मनुष्य आदि सभी कृष्ण की भाया से होते हैं ॥१६॥ ऐसे बितने ब्रह्माण्ड हैं—इसकी गिनती करने में जगत के स्वामी भी समर्थ नहीं हैं । इस गणना को शङ्कर-जर्म सुर और विष्णु कोई भी न कर सके हैं ॥१७॥ इसकी सख्या करने के कार्य में ईश्वर ही समर्थ होता है किन्तु तोभी उसने कोई संख्या नहीं की है । विद्वन्नकाश और दिशाओं की सत्र प्रकार से वह गणना करने में समर्थ है ॥१८॥ ये समस्त विश्व कृत्रिम हैं और जो इन दिशों में स्थित रहने वाले हैं वे भी सब कृत्रिम ही होते हैं । हे विप्रेन्द्र ! ये सभी अनित्य हैं और स्वप्न की भाँति नाशान् भी होते हैं ॥१९॥ वैकुण्ठ लोक शिव लोक और इन दोनों के ऊपर जो गीतोक धाम है वह नित्य है और दिशों में यन्मूत भी है जैसे यह आत्मा अकाश और दिशों हैं ॥२०॥

७-सृष्टि प्रकरणम् (२)

ब्रह्मा विश्वं विनिर्माय सावित्र्यां वरयोपति ।

चातार वीर्यघानञ्च जात्याया कामुको यया ॥१॥

मा दिव्यं जलवर्षञ्च धृत्वा गर्भं सृष्टुं सृष्टम् ।

मप्रसूता च सुद्रुवे वनृवैदानं मन्त्राणां ॥२॥

विविधान् शास्त्रमद्भ्याश्च तर्कं च करणादिकान् ।

पटत्रिरात्मन्विका दिव्या रागिणी समनीहरा ॥३॥

गन्तव्यान् मन्दरांशुं च नानानालसमन्वितान् ।

सत्यव्रताद्वापराश्च तपिन्श्च कनह ॥४॥

वर्षं मासमृतुञ्चैव तिथिं षण्डक्षणादिकम् ।
 दिनं रात्रिञ्च वारांश्च सन्ध्यामुपसमेव च ॥१॥
 पुष्टिञ्च देवसेनाञ्च मेधाञ्च विजयां जयाम् ।
 पट्टकृत्तिकाञ्च योगांश्च करणांश्च तपोधन ! ॥२॥
 देवसेनां महापृष्ठीं कार्तिकेयप्रियां सतीम् ।
 मातृकासु प्रधाना सा बालानामिष्टदेवता ॥३॥

इस अध्याय में सृष्टि का निरूपण प्रकरण ही वर्णन किया जाना है। सीति ने कहा—ब्रह्मा ने इस विश्व का निर्माण करके परम श्रेष्ठ स्त्री सावित्री में उसने अपने वीर्य का आधान जैसे कोई कामुक किसी कामुकी में किया करता है उसी भाँति किया था ॥१॥ उस देवी ने दिव्य सौ वर्ष तक उम सदुःसह गर्भको धारण करके फिर सुप्रसूता उसने परम मनोहर चार वेदों का प्रसव किया था ॥२॥ उस देवी ने बहुत से शास्त्रों के समूहों को और तकं शास्त्र तथा व्याकरण शास्त्र आदि का और छत्तीस अति दिव्य रागिणियों का जो बहुत ही मनोहर थीं प्रनव किया था ॥३॥ नाना प्रकार के तालों से समन्वित अति सुन्दर छै रागों का और सत्य युग-नेता युग-द्वार पर युग और कलह से प्यार करने वाले कलियुग का प्रसव किया था ॥४॥ उस सावित्री देवी ने इनके अतिरिक्त वर्ष-मास-ऋतु-तिथि-ऋण्ड-क्षण आदि एवं दिन-रात्रि वार-सन्ध्या और प्रातः समय का प्रसव किया था ॥५॥ पुष्टि- देवों की सेना-मेधा-विजया-जया-छै कृत्तिका-योग और हे तपोधन ! करणों का भी प्रसव किया था ॥६॥ देवसेना महापृष्ठी और सती कार्तिकेय की प्रिया का प्रसव किया था जो समस्त मातृकाओं में प्रधान एवं बालों की इष्ट देवता है ॥७॥

ब्राह्मं पादमञ्च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम् ।
 नित्यं नैमित्तिकञ्चैव द्विपरार्द्धञ्च प्राकृतम् ॥८॥
 चतुर्विधञ्च प्रलयं कालञ्च मृत्युकन्यकाम् ।
 सर्वान् व्याधिगणांश्चैवसा प्रसूय स्तनं ददौ ॥९॥
 अथ धातुः पृष्ठदेशादधर्मः समजायत ।

अलक्ष्मीस्तद्वामपादवाद्भवूव तस्य कामिनी ॥१०॥
 भाविदेशाद्विश्वकर्मा वभूव चित्पिना गुरुः ।
 महान्तो वसवोऽऽटो च महाबलपराक्रमाः ॥११॥
 अथ घातुद्वय मनमः श्राविर्भूताः कुमारताः ।
 चत्वारः पञ्चवर्षीया ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥१२॥
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ।
 सनत्कुमारो भगवाच्चतुर्यो ज्ञानिना चर ॥१३॥
 भाविर्भवूव मूलतः कुमारः कनकप्रभः ।
 दिश्वरपथरः श्रीमान् सतीकः सुन्दरो युवा ॥१४॥
 क्षत्रियाणां बीजरूपो नाम्ना स्वायम्भुवो मनुः ।
 या स्त्रीः सा धत्तस्था च ह्यपाद्या कमलाकला ॥१५॥

बाह्य-पाद्य और वाराह ये तीन वर्य बहूँ गये हैं । नित्य और नैमित्तिक द्विपरार्द्ध और प्राहुत ये चार प्रकार के प्रलय को-कालकी और मृत्यु नाम वाली वर्या की एक समस्त प्रकार की व्याधियों के समुदायो वा प्रसव करके उस सावित्री देवी ने इन सब को धपना स्तन पिनाया था ॥८॥१॥ इसके पश्चात् घाता के पृष्ठ भाग से प्रथम की उत्पत्ति हुई थी । उसके वाम पार्श्व से उस प्रथम की कामिनी अलक्ष्मी उत्पन्न हुई थी ॥१०॥ उसके नाभिके भाग से चित्पिनी के गुरु बिन्दव वर्मा की उत्पत्ति हुई थी और महान घात वसुको वा गण जो महान बल और पराक्रम वाला था ॥११॥ इसके उपरान्त घाता के मन से चार कुमारों की उत्पत्ति हुई थी । ये चारों पाँच वर्ष की अवस्था वाले थे और यज्ञतेज से दीप्तमान थे । १२॥ इनके मतक सनन्द तीसरा सनातन और चौथा ज्ञानियो में परम श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमार था ॥१३॥ इसके उपरान्त मुख से क्षुब्ध के समान प्रभा वाला दिव्य रूप को धारण किये हुए कुमार ने धपना जन्म ग्रहण किया था जो परम सुन्दर - युवा और स्त्री के सहित समस्तपन्न हमा था ॥१४॥ यह क्षत्रियों का बीजरूप था और रत्नका नाम स्वायम्भुव मनु था । जो इसकी स्त्री थी वह कमला की कला धात्री रूप यौवन से युक्त पत्न ह्या नाम वाली थी ॥१५॥

लस्यीकश्च मनुमन्यो यात्रजापरिपालकः ।
 स्वयं विधाता पुत्रांश्च तानुवाच प्रहृषितान् ॥१६॥
 नृष्टि कर्तुं महाभागो महाभागवतान् द्विज ! ।
 त्रागुस्ते च नहात्सृष्टव तप्तृ कृष्णपरायणं ॥१७॥
 दुःकाय हेतुना तेन विधाता जगतां पतिः ।
 कापासक्तस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥१८॥
 भाविभूता ललाटाच्च रुद्रा एकादश प्रभो ।
 कान्नाभिनरुदः सहर्ता तेषामेकः प्रकीर्तितः ॥१९॥
 सर्वेषामेव दिग्धानां स एवतामसःसृष्टवः ।
 राजसश्च स्वयं ब्रह्माग्निवो विष्णुश्चसात्विकौ ॥२०॥
 गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुराः प्रकृतः परः ।
 परमाज्ञानिनो नूर्खा वदन्ति तानसं शिवम् ॥२१॥

वह स्वायम्भुव मनु अपनी स्त्री के सहित ही धाता की आज्ञा का प्रति
 पालन करने वाला वहाँ स्थित हो गया था । फिर विधाता ने स्वयं ही उन
 परम प्रसन्न पुत्रों से कहा था ॥१६॥ हे द्विज ! उस महा भाग ब्रह्मा ने अपने
 पुत्र चारों महाभागवतों से सृष्टि की रचना करने के लिये कहा तो वे सब
 हम सृष्टि नहीं करेंगे - ऐसा कहकर कृष्ण में परायण होठे हुए तप करने के
 लिये चले गये थे ॥१७॥ इस कारण से विधाता को बहुत अधिक कोप हुआ
 था । उस जगत्तों के पति को जब कोपासक्ति हुई तो क्रोध में जलते हुए
 विधाता से ब्रह्मतेज प्रकट हुआ था ॥१८॥ उस ब्रह्मतेज से हे प्रभु ! ललाट के
 भाग से एकादश रुद्र प्रकट हुए थे । उन ग्यारह रुद्रों में सहार करने वाला एक
 कालाग्नि रुद्र था ॥१९॥ समस्त दिग्दों में वह ही एक तामस कहा गया है ।
 ब्रह्मा स्वयं राजस था और विष्णु तथा शिव सात्विक था ॥२०॥ गोलोक धाम
 के स्वामी जो श्री कृष्ण थे वह तो निर्गुण और प्रकृति से पर थे । वे लोग
 अत्यन्त अज्ञान वाले महामूर्ख हैं जो शिवको तामस कहा करते हैं ॥२१॥

शुद्धसत्वस्वपञ्च निर्मलं वंष्णवाग्रणीम् ।

शृणुनामानि रुद्राणां वेदोक्तानि च यानि च ॥२२॥

महान् महात्मा मतिमात्रं भीषणश्चभयङ्करः ।
 अतुध्वजश्चोर्ध्वकेशःपिङ्गलाक्षोरुचिःशुचिः ॥२१॥
 पुलस्त्यो दक्षकणाक्षिच पुलहो वामकर्णितः ।
 दक्षनेत्रात्तथाऽग्निश्च वामनेत्रात् क्रतुःस्वयम् ॥२४॥
 भरणिर्नासिकारन्ध्रादङ्गिराश्च मुखाद्गुचिः ।
 भृगुश्च वामपादाक्षिच दक्षो दक्षिणपार्श्वतः ॥२५॥
 छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिक्षस्तथा ।
 वक्षानश्चैव वोहुश्च कण्ठदेशाच्च नारदः ॥२६॥
 मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरतमा गलात् ।
 चक्षिष्ठो रसनादेशात् प्रचेता मधरोष्ठतः ॥२७॥
 ह्रमश्च वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षोर्यतिः स्वयम् ।
 सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकाराज्ञा सुतान्प्रति ॥२८॥

भगवान् सदाशिव शुद्ध एव सात्विक रूप वाले हैं और वैष्णवों के भ्रमणी हैं । अब उन भागों का श्रवण करो जो खदों के नाम वेदों में कहे गये हैं ॥२२॥ महान्-महात्मा - मतिमान्-भीषण-भयङ्कर-अतुध्वज-उर्ध्वकेश-पिङ्गलाक्ष-अरुचि-शुचि ये उनके नाम हैं ॥२३॥ दाहिने कान से पुलस्त्य-वयि वान से पुलह दक्षिण नेत्र से अग्नि-वामनेत्र से स्वयं क्रतु-नासिका के छिद्र से भरणि-मुख से अङ्गिरा, रुचि और भृगु वाम पार्श्व से - दक्षिण पार्श्व से दक्ष - छाया से कर्दम मुनि और नाभि से पञ्चशिक्ष-वक्षःस्थल से वोहु और कण्ठ देश से नारद-स्कन्धदेश से मरीचि तथा गले से अपान्तर्गता-रसनादेश से वाक्षिष्ठ और अधरोष्ठ से प्रचेता-वामकुक्षि से ह्रम - दक्षिण कुक्षिसे स्वयं मति समुत्पन्न हुए थे । उस विधाता ने ममस्त भ्रमने उपगुंक्त सुतों को सृष्टि की रचना करने के लिये आज्ञा दी थी ॥२४-२८॥

८—ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम् ।

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रास्तानादिदेश च सृष्टये ।
 सृष्टिं प्रचक्षते सर्वे विप्रेन्द्र नारद बिना ॥१॥

मरीचेर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः ।
 अत्रेनेत्रमलाञ्चन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह ॥२॥
 प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह ।
 पुलस्त्यमानसः पुत्रो मैत्रावरुण एव च ॥३॥
 मनोश्च शतरूपायां तिस्रः कन्याः प्रजज्ञिरे ।
 आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः ॥४॥
 प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ ।
 उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः ॥५॥
 आकूति रुचये प्रादात् दक्षाय च प्रसूतिकाम् ।
 देवहूति कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम् ॥६॥
 प्रसूत्यां दक्षवीजेन पण्डिकन्याः प्रजज्ञिरे ।
 अष्टौ धर्माय प्रददौ रुद्रायैकादश स्मृताः ॥७॥

इस अध्याय में ब्रह्मा के पुत्रों द्वारा की हुई सृष्टि के प्रकरण का वर्णन किया जाता है। सीति ने कहा—इस के अनन्तर ब्रह्माजी ने अपने समुत्पन्न किये हुये उन पुत्रों को सृष्टि का सृजन करने की आज्ञा दी थी। हे विप्रन्द्र ! केवल एक नारद को छोड़ कर उन सभी ने अपने परम पिता विधि की आज्ञा शिरसा स्वीकृत कर सृजन का कार्य किया था ॥१॥ महर्षि मरीचि के मन से प्रजापति कश्यप की उत्पत्ति हुई थी। अत्रि ऋषि प्रवर के प्रांखों के मल से चन्द्र देव का जन्म हुआ और वह क्षीर सागर से समुत्पन्न हुआ था ॥२॥ प्राचेतस के मन से गौतम ऋषि ने जन्म ग्रहण किया था। मैत्रावरुण ने पुलस्त्य के मन से अपना जन्म प्राप्त किया था ॥३॥ मनु से शतरूपा पत्नी में तीन कन्याओं ने जन्म धारण किया था। आकूति—देवहूति और प्रसूति इन तीनों कन्याओं के शुभ नाम थे। ये तीनों पूर्ण पति व्रताएँ थी ॥४॥ मनु के प्रिय व्रत और उत्तान पाद ये तीनों कन्याओं के अतिरिक्त परम सुन्दर दो पुत्र हुये थे। उत्तान पाद का पुत्र ध्रुव हुआ था जो परम धार्मिक था ॥५॥ मनु ने अपनी कन्या आकूति को रुचि के लिये दान कर दिया था और प्रजापति दक्ष को

प्रसूतिका नाम बाली कन्या का दान दिया था तथा देवृति कन्या को बर्दम
 ऋषि को दे दिया था त्रिपका पुत्र कपिल स्वयं हुआ था ॥६॥ प्रसूति नाम
 धारिणी मनु की कन्या में दश प्रजापति के वीर्य स साठ कन्यायें समुत्पन्न हुई
 थीं । उनमें से आठ को तो धर्म के लिये दे दिया था और ग्यारह कन्याओं को
 दान रूद्र के लिये कर दिया था ॥७॥

शिवायंका सती प्रादात् कश्यपाय त्रयोदश ।
 सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान् ॥८॥
 नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्रनिशामय ।
 शान्तिपुष्टिवृत्तिस्तुष्टिक्षमाथद्वामतिस्मृतिः ॥९॥
 शान्ते पुत्रञ्च मन्तोप पुष्ट पुत्रो महानभूत् ।
 घृतेर्धर्म्यञ्च तुष्टश्च हर्षदपौ सुतो स्मृतौ ॥१०॥
 क्षमापुत्र सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धामिक ।
 मतेर्ज्ञानाभिध पुत्र स्मृतर्जातिस्मरो महान् ॥११॥
 पूर्वपत्न्याञ्च मूर्त्याञ्च नरनारायणवृषी ।
 वभूवुरेते धमिष्ठा धमपुत्राश्च शौनक ॥१२॥
 नामानि रुद्रपत्नीनां सावधान निबोध मे ।
 कला कलावता काण्डा कालिका कलहप्रिया ॥१३॥
 कन्दली भीषणा रात्रा प्रमोचा भूपणा शुकी ।
 एतासां बहव पुत्रा वभूवु शिवपाशंदा ॥१४॥

भगवान् सदा शिव के लिये एक सती नाम वाली कन्या का दान किया
 था तथा कश्यप महर्षि को तरह कन्यायें दान थीं । दक्ष प्रजापति ने सत्ताइस
 कन्यायें चन्द्र देव को दान कर प्रदान कर दी थीं ॥८॥ हे विप्र ! मुझसे अब
 प्राप्त उन धर्मपत्नियों के नामों का थवण करो । शान्ति—पुष्टि—घृति—तुष्टि
 क्षमा—श्रद्धा—मति—मृति ये नाम उनके थे ॥९॥ शान्ति के पुत्र का नाम सन्तोप
 हुआ था । पुष्टि के पुत्र का नाम महान् था । घृति का पुत्र धर्म्यं हुआ था ।
 तुष्टि के पुत्र हर्ष और दपं ये सुत हुए थे ॥१०॥ क्षमा का पुत्र सहिष्णु था
 और श्रद्धा का पुत्र धामिक समुत्पन्न हुआ था । मति के पुत्र का नाम ज्ञान था

श्रीर स्मृति का पुत्र महान् स्मर उत्पन्न हुआ था ॥११॥ पूर्व पत्नी में श्रीर मृति में ऋषि नर नारायण समुत्पन्न हुए थे । हे शौनक ! ये धर्म पुत्र परम धार्मिक थे ॥१२॥ अब रुद्र की पत्नियों के नामों का मुझ से सावधानता के साथ जान लेना चाहिये । कला-कलावती-काष्ठा-वालिका-कलह प्रिया-कन्दली-भीषणा-रास्त्रा-प्रमोचा-भूषणा-शुकी ये रुद्र देव की पत्नियों के शुभ नाम थे । इन धर्मपत्नियों से बहुत से पुत्र समुत्पन्न हुए थे जोकि सहाशिव के पार्षद हुये थे ॥१३-१४॥

सा सती स्वामिनिन्द्रायां तनुं तत्याज यज्ञतः ।

पुनर्भुत्वा शैलपुत्री लेभे च शङ्करं पतिम् ॥१५॥

कश्यपस्य प्रियाणश्च नामानिश्रुणु धार्मिक ।

अदितिर्देवमाता या दैत्यमातादितिस्तथा ॥१६॥

सर्पमाता तथा कद्रुविनता पक्षिसूस्तथा ।

सुरभिश्च गवां माता महिपाणञ्च निश्चितम् ॥१७॥

सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूश्चतुष्पदाम् ।

दनुः प्रसूर्दानवानामन्याश्चेत्येवमादकाः ॥१८॥

इन्द्रश्च द्वाद्वादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने ! ।

कथिताश्चादितेः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ॥१९॥

इन्द्रपुत्री जयन्तश्च ब्रह्मन् शच्यामजायत ।

आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मणः ॥२०॥

शनश्चरयमौ पुत्री कालिन्दी कन्यका तथा ।

उपेन्द्रवीर्यात् पृथ्व्यान्तु मङ्गलःसमजायत ॥२१॥

वह जो सती नाम वाली शिव की पत्नी थी उसने अपने स्वामी शिव की निन्दा होने पर अपने शरीर का त्याग कर दिया था और फिर यज्ञ से हिमाचल शैल के यहाँ पुत्री के रूप में जन्म ग्रहण करके शङ्कर को ही अपना पति वरण किया था ॥१५॥ हे धार्मिक ! अब आप मुझसे महर्षि कश्यप की धर्म पत्नियों के शुभ नामों का श्रवण करो । एक अदिति नाम धारणी कश्यप की पत्नी थी जो देव गण की माता थी और दूसरी दिति

नाम वाली धर्मपत्नी हुई थी जिसने दैत्यों को अपने उदर में उराल कर दैत्य
माता हुई थी ॥१६॥ मर्षों की माता एक तरण्य की पत्नी बद्रू थी और
पश्चिमा को प्रसून करने वाली जितगा थी । गौश्री की माता का नाम सुरभि
था और यही महिषों की भी माता थी । मारमेन यदि जन्मियों की माता
सरमा नाम वाली बक्षप की पत्नी थी और यही सनन्त चतुष्पदों की माता
हुई थी । दानवों को उत्पन्न करने वाली द्यु भार्या थी । इसी प्रकार से
इन्द्र भी बतिया हुई थी । १७-१८॥ इन्द्र और वारह आदित्य तथा उपेन्द्र
आदिसुर हे मुने ' अदिति के पुत्र बहने गये है जोकि महान् वज्र और अनुल
पराक्रम वाले थे ॥१९॥ इन्द्र का पुत्र का नाम जन्मा था । हे ब्रह्मन् ! यह
जपन्त सुरेन्द्र की पत्नी शची ने समुत्पन्न हुआ था । विश्वकर्मा की बन्धा
गयर्णा ने आदित्य (सूर्य) के सनैश्वर और यम के दो पुत्र थे तथा मालिन्दी
नाम वाली एक बन्धा ने जन्म प्रहरा लिया था । उरेन्द्र की पत्नी पृथ्वी ने
उपेन्द्र के शीर्ष से मङ्गल नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२०-२१॥

६-ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनम् ।

कति उत्पन्नरेऽगोनेष्वद्ब्रह्मसृष्टिविशोपुन ।
मरोचिमिश्रंमुनिभि सार्द्धं कण्ठात् वभूवसः ॥१॥
विवेनंनरदनामनश्च कण्ठदेशात् वभूव साः ।
नारदश्चति विद्यातो मुनीन्द्रस्नेन हेतुना ॥२॥
य पुत्रश्चेतमाधातुवभूव मुनिपुङ्गव ।
तेन प्रचेता इति च नामचक्रे पितामहः ॥३॥
वभूव धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपादवंतः ।
सर्वकर्मणि दक्षश्च तेनदक्षः प्रकीर्तितः ॥४॥
वेदेषु कदंमः शब्दश्चायाया वत्तंत स्फुटः ।
वभूव कदंमात् बालःकदंमस्तेनकीर्तित ॥५॥
तेजोभेदे मरोचिश्चवेदेषु वत्त तेऽसृष्टम् ।

जातः सद्योऽतितेजस्वीमरीचिस्तेनकीर्त्तितः ॥६॥

ऋतुसंघञ्च वालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना ।

ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम कतुरित्थभिधीयत ॥७॥

इस अध्याय में ब्रह्मा के पुत्रों की व्युत्पत्ति के कथन का वर्णन किया जाता है । सौत्ति ने कहा—कितने कल्पों के अन्तर व्यतीत होजाने पर पुनः उस स्रष्टा की सृष्टि की विधि में मरीचिमिथ मुनियों के साथ वह कण्ठ से हुआ था ॥१॥ नारद नाम वाले विधि के कण्ठ भाग से वह हुआ था । इसी हेतु से मुनीन्द्र नारद इस नाम से विख्यात हुआ था ॥२॥ जो धाता का पुत्र चित्त से होने वाला मुनियों में परम श्रेष्ठ हुआ था । इसी हेतु के होने से पितामह ने उसका नाम प्रचेता यह रख दिया था ॥३॥ धाता का जो एक पुत्र सहसा दक्षिण पार्श्व से उत्पन्न हुआ था और वह समस्त कर्मों के करने में बहुत कुशल भी हुआ इसी लिय वह दक्ष इस शुभ नाम से कहा गया था ॥४॥ वेदों में कर्दम यह शब्द छाया में स्फुट वर्तमान है । कर्दम से वह बालक हुआ था इसी कारण से वह कर्दम नाम से कहा गया है ॥५॥ वेदों में मरीचि यह शब्द तेज के एक भेद में स्पष्ट तथा वर्तमान रहता है और वह सद्यः श्रत्यन्त तेज वाला उत्पन्न हुआ था, इसी कारण से उसका मरीचि—यह नाम कहा गया है ॥६॥ बालक ने दूसरे जन्म में पहिले बहुत से ऋतुओं का समूह किया था और अब जब वह ब्रह्मा के यहाँ पुत्ररूप में समुत्पन्न हुआ तो उस समय भी उसका ऋतु-यही नाम कहा गया था ॥७॥

प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्चबालकः ।

इरस्तेजस्त्रिवचनोऽप्यङ्गिरास्तेनकीर्त्तितः ॥८॥

अतितेजास्वानि भृगुर्वर्त्तते नाम्नि शौनक ! ।

जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥९॥

बालोऽप्यरुणवर्णश्चजातः सद्योऽतितेजसा ।

प्रज्वलन्नूद्धर्वतपसाचारुणिस्तेनकीर्त्तितः ॥१०॥

हंसा आत्मवशायस्य योगेन योगिनीध्रुवम् ।

बालः परमयोगीन्द्रस्तेनहंसी प्रकीर्त्तितः ॥११॥

रशीभूतश्चशिष्यश्च जान भयो ि वाताक ।
 अतिप्रियश्चप्रातुश्च त्रिशिष्टस्तेन कीर्तित ॥२॥
 नन्तत सम्य यत्नञ्च तप सु वाजकम्य च ।
 प्रकीर्तितो यतिस्तेन मयन सर्वरमंनु ॥३॥
 पुलस्तप सु वेदेषु वर्तते ह स्फुटेषि च ।
 स्फुटस्त्वप समू इच पुनरस्तेन वाताक ॥४॥

घाता (ब्रह्मा) का मृत्य एव शरीर का प्रधान अङ्ग था । उससे बानक
 की उक्ति हुई थी । इत-यह तेज स्त्री का बचन होता है । इसी हेतु म प्रह्लाप
 इस नाम से कहा गया था ॥८॥ ह शौनक । जो अत्यन्त तेज वाला होता है उस
 नाम से मृग-यज्ञ शब्द वर्णमानहुँआ करता था इसी कारण से भृगु यह उमका
 नाम प्रकीर्तित हुआ था । ९॥ अरण्य वर्षा वाला अत्यन्त तेज से युक्त व तक
 तरुन ही समत्पन्न हुआ था और ऊर्ध्व तेज से प्रज्वलित हो रहा था, इसी हेतु
 से धारणी-यह नाम उमका प्रसिद्ध हा गया था ॥१०॥ जिनके योग स योगिनी
 ध्रुव हस अग्निवर्ण थे वह बालक परम योगीन्दु था अत एव हृषी इस शुभ नाम
 से वह प्रकीर्तित हुआ था ॥११॥ वशीभूत और शिष्य बानक तुरन्त उत्पन्न
 हुआ था और वह घाला का अत्यन्त प्रिय था । इसी कारण से उमका शुभ वशिष्ठ
 यह नाम कहा गया था ॥१२॥ जिस बानक का तथा स सतत यत्न था और
 वह समस्त कर्मों का वरत था इसी कारण से वह यति - इस नाम से
 प्रसिद्ध हुआ था ॥१३॥ पुन - यह शब्द वदा म तपमें स्फुटतया वचनगत रहा
 करता है । वह बानक स्पष्ट रूप से ना रा मयूह था अत एव वह पुनह उम
 नाम से बानक प्रसिद्ध हुआ था ॥१४॥

पुलस्तप ममहृद्य यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम
 तप सवन्त पञ्च पुलस्त्यस्तेन वाताक ॥५॥
 त्रिगुणायापवृत्त्या त्रिदिग्गावचप्रवृत्तते ।
 तथाभक्ति समावन्त्यनेनवालाऽर्द्धिदरुच्यत ॥६॥
 जटावर्जनिखाण्डपा पञ्चसक्ति च मन्त्रवे ।
 तपस्ते ागवायस्य तत्र पञ्चशिक्ष स्मृत ॥७॥

अपान्तरतमे देशे तपस्तेपेज्यजन्मनि ।

अपान्तरतमा नाम विगोस्तेन प्रकीर्तितम् ॥१८॥

न्वयं तपः समाप्नोति ब्राह्मणेत् प्रापयेत्परात् ।

ऊढुं समर्थस्नपमि वोढुस्तेन प्रकीर्तितः ॥१९॥

तपसस्तेजसा ब्रान्धो दीप्तिमान् नततं मुने ।

तपःसु गोचर्ताञ्चत्तं रुचिस्तेन प्रकीर्तितः ॥२०॥

कोपकानि वभूवृष्ट्यै लण्डुकेकादश स्मृताः ।

रोदनादेव रुद्राश्च कोपितास्तेन हेतुना ॥२१॥

पूर्व जन्मों में पुत्र नाम तपों का समूह जिस बालक के था । वही तपों के समूह के स्वल्प बाना अब उत्पन्न हुआ था अब एव यह बालक भी पुलस्त्य इन नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१५॥ तीन गुणों वाली प्रकृति में तीन विष्णाव प्रवृत्त होता है । उन दोनों की समान रूप में जिस की भक्ति थी इमी कारण ने यह बालक अग्नि — इस नाम ने कहा गया था ॥१६॥ जिसके मस्तक में अग्नि की शिखा के तुल्य पाँच जटाएँ थीं और जिसका तप में होने वाला तेज था वह पञ्चशिव—इस गुण नाम ने कहा गया है ॥१७॥ जिस ने पूर्व जन्म में अपान्तर तप देश में तपस्या की थी इसी कारण ने शिशु का नाम अपान्तरतमा—यह कीर्तित हो गया था ॥१८॥ जो स्वयं तो अपने सम्पूर्ण तप को समाप्त कर लेता है और दूसरों को वादित एवं प्रापित किया करता है और तपस्या में बहन कर्णों को नमर्थ होता है इमी कारण से वह वोढु—इस नाम से कहा गया है ॥१९॥ तप से और तेज में हे मुने ! बालक दीप्तिमान् था और तपों में जिसका चित्त रुचि रखता है इमीलिये उगका नाम रुचि—यह कहा गया है ॥२०॥ जो अष्टा के कोप करने के समय एकादश पुत्र उत्पन्न हुये थे वे कोपित और रोदन करने वाले थे इमी हेतु से उनका रुद्र—ये नाम पड़ गया था ॥२१॥

रुद्रेष्वेकनमो बालो महेगति मे भ्रमः ।

भवान् पुराणानस्वज सन्देहंछेत्तुमर्हति । २२॥

विष्णुः सन्देहगुणः पाताब्रह्मास्त्रण्टारजोगुणः ।

तमोगुणान्ते रुद्राश्च दुर्निवाराः भद्रकृताः ॥२३॥

कालाग्निरद्र सहर्ता तेष्वेकः दङ्कुराणकः ।
 शुद्धमत्वस्वरूपद्वयं शिवद्वयं शिवद सताम् ॥२४॥
 मध्ये कृष्णस्य च कलास्तावशीविष्णुशङ्करो ।
 समोत्तत्वस्वरूपोद्वीपरिपूर्णतमभ्य च ॥२५॥
 उक्त एद्रोद्भवकाले कथं विस्मरसि द्विज ।
 मायया माहिता सर्वे मुनीनाञ्च मतिभ्रमः ॥२६॥
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ।
 ननत्कुमारो भगवाश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२७॥
 ब्रह्मास्पष्टं पूर्वपुनानुवाच ते न सेहिरे ।
 तेनप्रकीर्णितोधाता एद्राः कोपोद्भवा मुने ॥२८॥

सौनव जी ने कहा है—उन एकादश एद्रों में एक बालक महेश
 या ऐसा मेरा भ्रम था । आप तो पुराणों के तत्त्वा के पूर्ण ज्ञाता विद्वान
 हैं प्रत्येक यह मेरा सन्देह आप छेदन करने के योग्य होते हैं ॥२२॥
 सौति बोले—विष्णु सत्त्वगुण में युक्त हैं और दाता अर्थात् पालन एवं
 रक्षण करने वाले हैं । ब्रह्मा सृजन कर्म के करने वाले हैं और रजोगुण से
 युक्त होते हैं । वे एद्र नमोगुण ग समन्वित होते हैं और वे दुनित्र एवं
 महा भयङ्कर दृष्टा करने हैं ॥२३॥ उनमें में एक शब्द के अर्थ स्वरूप
 से हार कराने वाला कालाग्नि एद्र है । जो जिन है वे तो शुद्ध सत्त्व रूप हैं
 और सदा स-पुरुषा क निय कल्याण क प्रदान करने वाले होते हैं ॥२४॥
 अन्य कृष्ण की कला है व विष्णु और शंकर अर्थ हैं । वे दोनों परिपूर्णतम
 के समान सत्त्वस्वरूप वाले हैं ॥२५॥ हे द्विज ! मैंने तो यह सभी एद्र के
 उद्भव-वर्णन क समय में बना दिया है । उसे अब तुम कैसे वि-मृत कर रहे
 हो ? सभी लोग माया के दाग मोहित हो जाया करते हैं और बड़े २ भूमियों
 की भी मति भ्रम हो जाता है ॥२६॥ सनक—सनन्द और तीसरा सनातन
 एवं चतुर्थ भावन सतत्कुमार ये ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥२७॥ श्री ब्रह्मा जी ने
 अपने इन पहिले जन्म प्रदण वाले पुत्रों को इस जगत् में सृजन करने की आज्ञा

दी थी किन्तु उन चारों पुत्रों ने इसे सहन नहीं किया था अर्थात् सृष्टि की रचना करने की पिता परमेश्वर के आदेश से सहमत नहीं हुये थे । इसका फल यह हुआ कि विधाता को क्रोध हो गया था और हे मुने ! उसी कोप से इन एकादश रुद्रों का उद्भव हुआ था ॥२८॥

सनकश्चसनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ ।

आनन्दितोत्रवालौ द्वौ भक्तिपूर्णात्मौसदा ॥२९॥

सनातनश्चश्रीकृष्णो नित्यः पूर्णात्मःस्वयम् ।

तद्भक्तस्तत्समः सत्यंतेन वालःसनातनः । २९॥

सनत् नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः ।

सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः ॥३०॥

ब्रह्मणो बालकानाञ्च व्युत्पत्तिः कथिता मुने ।

साम्प्रतं नारदाख्यानं श्रूयताञ्च यथाक्रमम् ॥३१॥

सनक और सनन्द ये दोनों शब्द आनन्द के वाचक हैं । ये दोनों बालक सदा भक्ति भाव से पूर्णात्म और आनन्दित रहने वाले थे । सनातन (सर्वज्ञ से चले आने वाला) श्री कृष्ण है जो नित्य और स्वयं पूर्णात्म हैं । उनका भक्त भी उन्हीं के समान है और सत्य स्वरूप है । अतएव इस बालक का नाम भी सनातन हो गया था ॥२९॥ सनत् - इस शब्द का नित्य अर्थ होता है और कुमार यह शब्द शिशु का वाचक होता है । इसी कारण से इस बालक को कमल से उद्भव प्राप्त करने वाले ब्रह्मा सनत्कुमार - इस नाम से कहा करते थे ॥३०॥ हे मुने ! मैंने समस्त ब्रह्मा के बालकों के नामों की व्युत्पत्ति कर दी है और तुमसे कह भी दी है । अब इसके आगे थी नारद का आख्यान क्रम के अनुसार उद्भव करिये ॥३१॥

१० - शिवोक्तताह्निकाचारवर्णनम् ।

हरेस्तोत्रञ्च कवचं मंत्रं पूजाविधिं परम् ।

हरं यथाचे देवविध्यानिञ्च जानमेव च ॥१॥

स्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रं ध्यानं पूजाविधानकम् ।

तत्प्राक्तनीयं ज्ञानञ्च ददौ तस्मै महेश्वरः ॥२॥

सर्वं प्राप्य मुनिश्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः ।

उवाच प्रणतो भक्त्या गुरुं प्रणतवत्सलम् ॥३॥

नारद उवाच

आह्निकं ब्राह्मणानाञ्च वद वेदविदा वर ।

स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यदाः ॥४॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

उत्थाप्य ब्राह्मणे मुहूर्त्तं ब्रह्मरन्ध्रस्थपङ्कजे ।

नूदमे सहस्रपद्मं च निर्मले ग्लानिबञ्जिते ॥५॥

रात्रिवान परित्यज्य गृह तर्पणवचिन्तयेत् ।

व्याह्यामुद्राकारप्रीतसम्भितगण्यवत्मलम् ॥६॥

प्रसन्नवदनं ज्ञानं परितुष्टं शिरन्तरम् ।

साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपं च शिष्याणाञ्चिन्तयेत्सदा ॥७॥

इस अध्याय में शिवके द्वारा कहे द्युये आह्निक आचार का वर्णन किया जाता है । सीति ने कहा—देवपि ने हर हरि के स्तोत्र-कवच-मन्त्र-परमपूजा की विधि—ध्यान और ज्ञान के विषय में वाचन की थी ॥१॥ महेश्वर ने स्तोत्र-कवच-मन्त्र-ध्यान पूजा का विधान और प्राक्तन ज्ञान सब देवपि के लिये दे दिया था ॥२॥ मुनिश्रेष्ठ ने यह सब कृत्य प्राप्त करने पूर्णमनोरथ वाले देवपि होकर प्रणतो पर कृपा करने वाले गुरुदेव की भक्ति भाव से पूर्णतया प्रणत होकर बोले—नारद ने कहा— हे वेदों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ ! अब आप मुझे ब्राह्मणों के आह्निक के विषय में वर्णन कीजिय जिसमें नित्य ही स्वधर्म का पूर्ण परिपालन होना रहे ॥३-५॥ श्री महेश्वर ने कहा— ब्रह्मरन्ध्र में स्थित पद्म के दाहिने-बाएँ महत्प्रपञ्च का निर्मल और ग्लानि से रहित शशमुहूर्त्त में उठकर रात्रि-वात का त्याग करने वहाँ पर ही गुरुदेव का चिन्तन करना चाहिए । श्रीगुरुदेव का स्वरूप ध्यान ऐसा होना चाहिए

कि वे गूढ विषय ध्यास्या करने की मुद्रा में स्थित है—परम प्रसन्न हैं—मन्द मुस्कान से युक्त हैं और अपने शिष्यों पर परमानुग्रह करने वाले हैं ॥५-६॥
ऐसे प्रसन्नमुख वाले-परमवान्त स्वरूप-निरन्तर पूर्णतया परितुष्ट और शिष्य वर्ग के लिये साक्षात् ब्रह्म के स्वरूप वाले गुरुदेव का सदा ध्यान करना चाहिए ॥७॥

ध्यात्वा त्वद्गुरुमादाय हृत्पद्मे निमले सिते ।

सहस्रपत्रेविस्तीर्णो देवमिष्टं विचिन्तयेत् ॥८॥

यस्य देवस्य यद्गुह्यं यद्रूपं तद्विचिन्तयेत् ।

गृहीत्वा तदनुजाञ्चकत्तव्यं समयोचितम् ॥९॥

आदीध्यात्वा गुरुं नत्वासंपूज्य विधिपूर्वकम् ।

पश्चात्तदज्ञामादाय ध्यायेद्विष्टप्रपूजये ॥१०॥

गुरुप्रदर्शितो देवो मन्त्रपूजाविधिर्जपः ।

न देवेन गुच्छेद्विष्टस्तस्मात् देवात् गुरुः परः ॥११॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुः प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः ॥१२॥

गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत् ।

गुरुरेव परं ब्रह्मन्नास्ति पूज्यो गुरोः परः ॥१३॥

अभीष्टदेवरुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः ।

न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः ॥१४॥

श्री गुरुदेव का ध्यान करके अपने ध्येत-निर्मल हृदय रूरी पत्र पर उन्हें स्थित करना चाहिये । फिर परम विस्तीर्ण सहस्र पत्र पर विराजमान अपने इष्ट देव का चिन्तन करना चाहिये ॥८॥ जिस देवता का जैसा भी ध्यान होता है और जो भी उसका रूप देना ही विचिन्तन करना चाहिये । फिर उसकी अनुज्ञा को ग्रहण करके जो भी समयानुसार उचित हो उसे करना चाहिये ॥९॥ तब प्रथम आदि में गुरुदेव का ध्यान करे—उनको प्रणाम करे और विधिपूर्वक गुरु का पूजन करे । फिर उनकी आज्ञा प्राप्त करे और फिर अपने इष्टदेव का गुरु की आज्ञा प्राप्त कर अर्चा करनी चाहिये ॥१०॥

श्री गुरुदेव ने ही देव को प्रदर्शित किया है और मन्त्रब्रह्म की विधि और
 जप भी श्री गुरुदेव ने ही सब बताया है । देवता ने गुरु को नहीं दिखाया है ।
 गुरु ने ही देव को दिखाया है । इसी-रि-ये देव से भी परतर श्री गुरुदेव ही
 होते हैं ॥११॥ गुरुदेव ही ब्रह्म हैं, गुरु ही विष्णु के स्वस्व बाल हैं और
 गुरुदेव ही साक्षात् महेश्वर हैं । ईश की छाया प्रकृति भी गुरुदेव ही हैं—
 गुरु ही चन्द्र-अनल और रवि हैं । गुरुदेव ही वायु-वस्त्र-माता-पिता-मुद्गल
 हैं । श्री गुरुदेव ही परब्रह्म का स्वस्व हैं । अतएव गुरु से पर अन्य कोई भी
 पूजा के योग्य नहीं है । एक ही गुरुदेव में सबका निवास है । अत य परम
 पूज्य होते हैं ॥१२ १३॥ यदि किसी भी अपराध के कारण बन जान पर
 अभीष्ट उपास्य देव रुट भी हो जावे तो उनमें रोप का मान कराने वाल
 तथा उस रोप के परिणाम से रक्षा कराने में मध्य गुरुदेव ही होते हैं । तात्पर्य गु
 का अनुग्रह का पात्र निष्पन्न होकर भी अभीष्ट कभी नहीं जाना है और किन्
 भी अपराध से गुरुदेव रुट हो जावे तो ममता देवता भी मिलकर उन
 अपराध के भक्षण का रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं । १४॥

यस्य तुष्टा गुरु शश्वज्जयन्तस्य पद पद ।
 अन्य रुष्टा गुरुन्तत्यसर्वनाशश्च सर्वदा ॥१५॥
 न सौज्य गुरु देव या मूढ पूत्रयद् भ्रमात् ।
 ब्रह्महत्यायात्तपापलभतनात्र सशय ॥१६॥
 सामवेद च भगवानिन्दुवाच हरि स्वयम् ।
 तस्मादभोष्टदवाच्य गुरु पूज्यतम पर । १७ ।
 गुरामिष्टस्वयध्यात्वास्तुन्वाचमाधवा मुने ।
 वदोक्त स्थलमामाद्यावत्पूत्रमुन्मृजन्मुदा ॥१८॥
 जल जलनमीपञ्च सरन्ध्र प्राणिसन्निधिम् ।
 दनलयसमीपञ्च वृक्षमूज्ज्व यत्नं च ॥१९॥
 हनात्त्वपस्थलञ्चैव शस्यक्षत्रञ्च गोष्ठवम् ।
 नदानन्दरगभञ्च पुष्पोद्यानञ्चपद्मिलम् ॥२०॥

प्रामाद्यस्यन्तरञ्चैव तूरां गृहसमीपतम् ।

शङ्खुः सेतुं गरवमं न्नशानं वृत्तितत्रिधिम ॥२१॥

जिस भाग्यवाली साधक के गुरु देव परम प्रसन्न एवं शिष्य से पूर्ण सन्तुष्ट है और निरन्तर उनका अनुग्रह रहता है तो उत्तका पद-पद में सर्वत्र विजय ही होती है और जिसके गुरुदेव शिष्य पर रोषान्वित है उस व्यक्ति का सर्वदा के लिये ही सर्वनाश हो जाता है ॥१५॥ जो कोई मूढ़ मनुष्य अपने श्री गुरुदेव की श्रवणा प्रथम न करके देव का पूजन अथ से किया करता है, वह एक शतब्रह्म हत्या के समान महापाप का भागी भवत्य ही हो जाता है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१६॥ सागवेद में भगवान् हरि ने स्वयं ही यह कहा था, इसलिये अपने उपास्य एवं स्वीकृत देव से भी अधिक गुरुदेव ही पूज्यतम होते हैं ॥१७॥ हे मुने ! शक्यैव इष्ट श्री गुरु चरण का स्वयं स्नान करके और साधना करने वाले व्यक्ति को उनका स्तवन करके फिर वेद में वताया हुआ स्थल प्राप्त करके सान्द्र मलमूत्रादि का उत्सर्ग करना चाहिये ॥१८॥ अब मल-मूत्र को-उत्सर्ग करने के दिषय में पूरा विवरण दिया जाता है कि किस स्थान का इसके करने में करना चाहिये—जल के समीप का स्थल-रन्धु (छिद्र), से पुनः स्थान प्राणियों की सन्निधि वाला स्थल-देवालय के समीप का स्थान-वृक्ष का मूल प्रदेश और मार्ग का स्थान मल-मूत्र के त्याग करने में त्याग कर देना चाहिये ॥१९॥ हल से उत्कर्षण जिस भूमि का हो जुगा हो उस स्थान जो-खड़ी हुई फसल वाले क्षेत्र को-गोष्ठ (गायों के रहने-वैठने का स्थल) को नदी और कन्दरा के मध्य भाग को—पुष्पों वाले उद्यान को और पशुद (दीव या दलदल वाले) स्थान को मलमूत्रोत्सर्जन के काम में त्याग कर देना चाहिये ॥२०॥ ग्राम आदि जना-वासों के भीतरी भाग को-मनुष्यों के निवास करने वालों ग्रहों के समीप का स्थल को-शङ्खुको-सेतुको-शरोंके वनको-श्मशान भूमि के स्थान को और अग्नि के समीप में रहने वाले स्थान को भी मलादि के त्याग करने में अवश्य ही वर्जित कर देना चाहिये ॥२१॥

कीडास्थल महारण्य मद्वाहाव स्थलतया ।
 वृक्षच्छायायानुत्स्यानमन्न प्राण्यवर्णकम् ॥२२॥
 दूर्वास्थान कुशास्थान वरमीकस्थानमेव च ।
 वृक्षारापणभूयञ्चकाव्यायञ्चपरिवृतम् ॥२३॥
 एतत् सर्वं परित्यज्य सूर्यतापविवर्जितम् ।
 कृत्वा गत्तं पुरीषञ्च मूत्रञ्च परिवर्जयेत् ॥२४॥
 पुरीषमूत्रोन्नयञ्चनदिवाकुर्यादुद्वेगमुत् ।
 पश्चिमाभिमुखो गत्रोमन्ध्यायादक्षिणामुत् ॥२५॥
 मीनी भूत्वा च निश्वाश यथा गन्धी न सञ्चरेत् ।
 त्यक्त्वा मृदा नमाच्छाद्य शीघ्रं कुर्याद्विचक्षणं ॥२६॥
 वृत्त्वा तु लो वृक्षोच्चञ्च जलशीघ्रं तत् परम् ।
 मृदमुक्तं तज्जलञ्चैव नत्प्रमाणनिशामय ॥२७॥
 एका लिङ्गे मृद दद्याद् वामहस्ते चतुष्टयम् ।
 उभयोर्हस्तयोर्द्वैतुमूत्रशीघ्रप्रकीर्तितम् ॥२८॥

कीडा करन वा स्थल शोर महान शरण्य —मन्त्रका क नीचे वा भाग-
 वृक्षो की छाया से युक्त स्थल मन्त्र प्राणिया का शवपणक-दूवा का स्थान-
 कुशा जहाँ पर लगे हूय हा वह स्थल मर्दों की बाँदी जहाँ पर हो वह स्थान-
 वृक्षा के आरोपण करन की भूमि वा स्थल शोर जो भूमि का स्थान किसी
 भी कार्य सम्पादन करने के लिये परिष्कृत किया गया हो—इत समस्त
 उपयुक्त स्थान का परित्याग मलादि के त्याग करने से कर देना
 चाहिए शोर सूर्य के ताप से वर्जित स्थान की भी त्याग देव । गत्तं करके
 पुरीष (मन) शोर मूत्र की परिवर्जित करना चाहिए ॥२२॥ २३॥२४॥ दिन
 के समय में सर्वदा मत्त मूत्र का त्याग उत्तर की शोर मुख करके करना चाहिए
 यदि के समय में पश्चिम दिशा की शोर मुख करने वाला होकर त्याग करे
 तथा सन्ध्या के समय में दक्षिणभिमुख होकर त्याग करे ॥२५॥ मीनी होकर
 त्याग करे शोर निश्वास ऐसा रने निम्ने गन्ध का सञ्चारण न होवे ।
 मलादि का त्याग करते मिट्टी में उडा । सन्ध्याहिन कर्त्तव्य शोर दिव

विचक्षण पुरुष को शुद्धि करनी चाहिए ॥२६॥ पहिले लोण शीच करके फिर जल से शीच अर्थात् शुद्धि करे और वह जल भी मृत्तिका से युक्त होना चाहिये । अब उसका प्रमाण बताता हूँ । उसका श्रवण करो ॥२७॥ लिङ्ग में एक बार मिट्टी लगाकर उसकी शुद्धि करे—वाम हस्त से चार बार मिट्टी से मले । दोनों हाथों को दो बार मिट्टी लगाकर मले । यह तो मूत्रोत्सर्ग करने का शीच होता है ॥२८॥

मूत्रशीचञ्च द्विगुणं मथुनानन्तर यदि ।

मथुनानन्तरे शीचं मूत्रशीचं चतुर्गुणम् ॥२९॥

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ।

उभयो सप्त दातव्याः पादः पठेन शुध्प्रति ॥३०॥

पुरापशीचं विप्राणां गृहिणामिदमेव च ।

विधवानाञ्च द्विगुणं शीचमेवं प्रकीर्तितम् ॥३१॥

यतोनां वप्राणानाञ्च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम् ।

चतुर्गुणञ्च गृहिणां तेषां शीचं प्रकीर्तितम् ॥३२॥

नो यावदुपनीयत द्विजः शुद्रस्तथाङ्गना ।

गन्धलेपक्षयकरं तेषां शीचं प्रकीर्तितम् ॥३३॥

शीचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानां गृहिणां समम् ।

द्विगुणां वप्राणादीनां मुनीनां परिकीर्तितम् ॥३४॥

न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शीचं शुद्धिमभीप्सता ।

प्रायश्चित्तं प्रयुज्येत विहितातिक्रमेकृते ॥३५॥

यदि मथुन के पश्चात् मूत्रोत्सर्ग करे तो मूत्र की शुद्धि उक्त विधि से दुगुनी करनी चाहिये । मथुन के अनन्तर शीच और मूत्र शीच चतुर्गुण ही जाता है ॥२९॥ अब मलके त्याग में शुद्धि का विधान ब्रुवताया जाता है— एक बार लिङ्ग को मिट्टी से मले । गुदा में तीन बार मृत्तिका लेपन कर उसकी शुद्धि करे—बायें हाथ से दशवार मिट्टी लगाकर मले—दोनों हाथों को मिलाकर सातवार मृत्तिका लेपन कर शुद्धि करनी चाहिये । छटे से पाद शुद्ध होता है । यह मलत्याग की शुद्धि विधियों की और गृहाश्रमियों की

होती है। विषयार्थों का दुगुना शौच बताया गया है ॥३०-३१॥ हे ब्रह्मर्षे !
 पानप्राणा—वैष्णवों का और ब्रह्मचारियों का शौच जो गृहियों का बताया
 गया है, उससे दोगुना होना चाहिये ॥३२॥ जय तक द्विज का उपनयन सस्कार
 नहीं होना है वह सूत्र के समान ही होता है और उसी प्रकार स्त्रियाँ होती
 हैं। उनका शौच गन्धलेप के धाम का करने वाला ही होता है ॥३३॥
 धर्मिय वर्ण वाले और वैश्यों का शौच गृहाश्रमी द्विजों के तुल्य ही होना
 चाहिये। अर्थात् गृहस्थ विप्र का बताया गया है। वैसा ही इनका
 भी होता है। वैष्णव आदि का और मुनियों का इनसे दुगुना शौच बताया गया
 है ॥३४॥ जो शुद्धि करने की इच्छा रखता है कि वास्तविक शुद्धि होनी
 चाहिये उसे इससे न्यून और अधिक कभी नहीं करना चाहिये। यदि इसका
 अतिक्रमण किया जाय तो उसका प्रायश्चित्त अवश्य ही करना चाहिये ॥३५॥

शौच तत्रियम मत्त सावधान निशामय ।

मृत्शौचेचशुचिविप्रोऽप्यशुचिश्चव्यतिक्रमे ॥३६॥

वल्मीकमूपिको त्खाता मृदमन्तर्जला तथा ।

शौचावशिष्टाग्नेहाच्चनदद्याल्लेपसम्भवाम् ॥३७॥

अन्न प्राण्यवपणाञ्चहलोत्खाताविशेषतः ।

कुशमलोत्थिताञ्चैवदूर्वामूलोत्थितान्तथा ॥३८॥

अश्वत्थमलाश्रीताञ्च तथैवशयनात्थिताम् ।

चतुष्पथाञ्च गोष्ठाना गोष्पदानातथैव च ।

सम्यस्यलाना क्षेणाणामुद्यानानामृदत्यजेत् ॥३९॥

स्नातो वाप्ययवास्नातोविप्र शौचेनशुष्यति ।

शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनहं सर्वकर्मसु ॥४०॥

वृत्तानशौचमिदं विप्रो मुख प्रक्षालयेत् सुधी ॥४१॥

आदौ पोटनगण्डूपैर्मुखशुद्धि विधाय च ।

दन्तकाष्ठेन दन्तञ्च तत्पश्चात् परिमार्जयेत् ॥४२॥

अब शौच और उसका नियम मुझसे तुम सावधान हीकर अवगत करो—

मृत्शौच में शुचि भी विप्र व्यतिक्रम होजान पर अनुशि हो जाता है ॥३६॥

सर्पों की बल्मीक की तथा चूहों के द्वारा खांदी हुई मृत्तिका को और जो जलके अन्दर में रहने वाली मिट्टी होती है उसको—शौच से अवशिष्ट मिट्टी को और लेप से उत्पन्न मिट्टी को नहीं देना चाहिये ॥३७॥ अन्तः प्राण्यन-वर्णों और विशेष करके हल से उत्पन्न मिट्टी को तथा कुशा के मूल से निकली हुई तथा दूब की जड़ से उठी हुई मिट्टी को—पीपल वृक्ष की मूल से उखड़ी हुई एवं शयन से उठी हुई मृत्तिका को भी नहीं लेना चाहिये ॥३८॥ घौराहे की—गोप्टों की और गीत्रों के खुरों की—शस्त्रों के स्थलों की—खेतों की और उद्यानों की मृत्तिका का त्याग कर देना चाहिये ॥३९॥ स्नान किया हुआ हो अथवा स्नान न किया हुआ हो विप्र शौच से शुद्ध हो जाता है । जो शौच से हीन है वह नित्य ही अशुचि रहा करता है और समस्त कर्मों के सम्पादन करने के अयोग्य होता है ॥४०॥ इस प्रकार के शौच को करके जो उक्त विधि से बताया गया है उसे करके सुधी ब्राह्मण को अपने मुख का प्रक्षालन करना चाहिये ॥४१॥ आदि में सोलह कुल्लों के द्वारा मुख की पहले शुद्धि करे फिर दन्त काष्ठ (दांतुन) से दांतों का भली भाँति परिमार्जन करना चाहिये ॥४२॥

पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखगुद्धिं समाचरेत् ।
 दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद ! ॥४३॥
 निरूपितं सामवेदे हरिणा चाह्निकक्रमे ।
 अपामार्गं सिन्धुवारमाम्रञ्च करवीरकम् ॥४४॥
 खदिरञ्च शिरीषञ्च जातिपुन्नागशालकम् ।
 अशोकमर्जुनञ्चैव क्षीरीवृक्षं कदम्बकम् ॥४५॥
 जम्बूकं वकुलं चोडं पलाशञ्च प्रशस्तकम् ।
 बदरीं पारिभद्रञ्चमन्दारंशाल्मलितथा ॥४६॥
 वृक्षं कण्टकयुक्तञ्च लतादिपरिवर्जितम् ॥४७॥
 पिप्पलञ्च पिथालञ्च तिलिन्तीकञ्च ताड़कम् ।
 खर्जूरं नारिकेलञ्च तालञ्च परिवर्जितम् ॥४८॥

दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनकः ।

शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मभृनु ॥४६॥

इम दन्त धावन के द्वारा परिमार्जन करने के पश्चात् पुनः सौजह कुत्तियो के द्वारा मुख की शुद्धि करनी चाहिये । हे नारद ! अब दन्त काष्ठों के विषय में जो नियम है उनका श्रवण करा ॥४६॥

साम वेद में आह्लिक के क्रम में हरि ने स्वयं निरूपण किया है—प्रपामार्ग - सिन्धुवार - आग्र - करवीरक - तादिर - क्षीरीप - जाति-पुन्नाग - शालक - अशोक अर्जुन - क्षीरी वृक्ष - बदाम्बर जम्बूक - वकुल-चोड़-पलाश ये वृक्ष दांतुन करने में प्रशस्त कह गये हैं । बहरी (वेर)-पारिभद्र-मन्दार तथा शालमलि और कांटी से युक्त वृक्ष जोकि लता आदि से रहित दांतुन होनी चाहिये ॥४४-४७॥ पीपल पिपाल-निन्तटोक-ताडव खजूर-नारि बेल-ताल ये वृक्ष भी दांतुन क लिये बजित कह गये हैं ॥४८॥ जो व्यक्ति दाँतो के शौच से विहीन होता है वह-सब प्रकार के शौच से विहीन होता है । जो शौच (शुद्धि) से रहित अशुचि होता है , वह नित्य ही समस्त प्रकार के कर्मों में असोम्य होता है ॥४९॥

कृत्वा शौच शुचिविप्रो घृत्वा घीने च वामसी ।

प्रक्षाल्य पादमाचम्य प्रातः सन्ध्या समाचरेत् ॥५०॥

एवमत्रिसन्ध्य सन्ध्याञ्चकुरुतेकुलजो द्विजः ।

सस्नातःसर्वतीर्थेषु त्रिसन्ध्यय समाचरेत् ॥५१॥

त्रिसन्ध्यहीनोऽप्यशुचिरनर्हः सर्वकर्मसु ।

यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ॥५२॥

नोपतिष्ठतियः पूर्वानोपास्ते यस्तुपश्चिमासु ।

स शूद्रवद्वहि कार्यं सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥५३॥

पूर्वामन्ध्या परित्यज्य मध्यमा पश्चिमांतया ।

ब्रह्महत्यामात्महत्याप्रत्यह लभते द्विजः ॥५४॥

एकादशौचिहीनोय सन्ध्याहीनश्चयो द्विजः ।

कल्पयजेत् कालसूत्रययाहिवृपत्नीपतिः ॥५५॥

इमं द्विविधं शौचं नृके शुचिं हो जाने वाला विप्र बुझे हुये दो वस्त्रों को धारण करे अर्थात् पहिनेने और ओढ़ने वाले दो वस्त्र होने चाहिये । फिर पैरों को धोकर आचमन करे और इनके अनन्तर प्रातः काल की सन्ध्या की उपासना करनी चाहिये ॥१०॥ इसी प्रकार मे कुशील विप्र को तीनों सन्धियों के काल में सन्ध्या करनी चाहिये । वह नवें तीर्थों में स्नान किया हुआ होता है जो त्रिकाल सन्ध्या की उपासना किया करता है ॥११॥ दिनसन्ध्या से जो हीन होता है वह अशुचि और समस्त बन्धों में अयोग्य होता है । ऐसा व्यक्ति दिन में जो भी कर्म करता है उसके फल का भागी वह नहीं हुआ करता है अर्थात् उसका सबकुछ दिन में किया हुआ विकृत होता है ॥१२॥ जो पूर्व सन्ध्या अर्थात् प्रातः कार्त्तिक की सन्ध्या उपासना नहीं करता है और जो पश्चिम सन्ध्या अर्थात् सायंकाल की सन्ध्या की उपासना नहीं करता है वह मृत की भाँति समस्त ब्रह्मणो के कर्म से बहिष्कृत कर देने योग्य होता है ॥१३॥ पूर्व सन्ध्या का तथा मध्यमा सन्ध्या का और पश्चिम सन्ध्या का त्याग कर देना है वह द्विज प्रति दिन ब्रह्महत्या और आत्महत्या के पाप को प्राप्ति किया करता है ॥१४॥ जो द्विज एकाग्नी से हीन होता है और सन्ध्याउपासना से विहीन होता है वह एक वृषलीपति की भाँति कल्प भरतक कालसूय नामक नरक में जाकर पतित होता है ॥१५॥

द्विषायप्रातः सन्ध्याञ्चगुरुनिष्टं नुरंःरदिन ।

ब्रह्माण् नीर्गविष्णुञ्चनार्यापद्मानंरस्वतीम् ॥१६॥

प्रणान्य गुरुनाज्यञ्च क्षेपेण नष्टुकाञ्चनम् ।

सृष्ट्या कानादिकं काले कुष्योत्सनाप्रकमत्तनः ॥१७॥

पुष्करिष्यान्तुवाप्यान्तु यदात्तानंनमाचरेत् ।

समुद्धृत्य पञ्चपिण्डानादीधनीं विचक्षणः ॥१८॥

नद्यांनवे कन्दरेवा नीयेवा स्नानमाचरेत् ।

कुष्योत्सनात्वा तु मङ्गल्यं नतः स्नानंयुनमेति ॥१९॥

श्रीकृष्णप्रीतिकानश्च वैष्णवाणां महात्मनान् ।

मङ्गल्यो गृहीणञ्चैवकृतपातकमायनम् ॥२०॥

विप्रः कृत्वा तु सङ्कल्पमृद गात्रे प्रलेपयेत् ।

वेदात्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिं कृत्वा च ॥६१॥

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्तेवसुन्धरे ।

मूर्त्तिके हर मे पाप यन्मया दुष्टृत कृतम् । ६२॥

उद्धृतामि वराहेण कृप्येण शनवाहुना ।

आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पाप प्रमोचय ॥६३॥

जा प्रातः काल मे सन्ध्योपामना करके फिर-गुरु इष्टदेव-सुरगण-मूर्ध-
शङ्ख-ईश-विष्णु-माया-पद्मा-श्रीर सरस्वती को प्रणाम करके तथा गुरु की
चन्दना करके फिर घृत-दपंग-मधु वाञ्छन का स्पर्श करके समय पर स्नान आदि
की क्रिया करता है वह साधकी म परम श्रेष्ठ होता है । ५६-५७॥ पुष्करिणी
मे-बापी मे जब स्नान करे तो विचक्षण पुरुष की आदि म जोकि धर्म करने वाला
है पांच पिण्डों का समुद्धरण करना चाहिये ॥५८॥ नदी में-नद मे अथवा
चन्द्र म या तीर्थ मे स्नान करना चाहिये । हे मुन ! पहले स्नान करन का
सङ्कल्प करे और फिर स्नान करना चाहिये ॥५९॥ मन्त्रम् आत्मा वाले वैष्णवों
का और गृहाश्रमिया का मकल्प ही श्री कृष्ण की प्रीति की कामना वाता
हाना है और किये हुए शतकों का नाशक हुआ करता है ॥६०॥ ब्राह्मण को
मङ्कल्प करके फिर मूर्त्तिका को शरीर मे लपन करना चाहिये । निम्न लिखित
वद मे बड़े हुये मनन से मद्युलेपन करे जोकि देह की शुद्धि करने वाला
होता है ॥६१॥ मन्त्र—'अश्व क्रान्ते रथ क्रान्ते विष्णु क्रान्ते वसुन्धरे ।
मूर्त्तिके हरम पाप यन्मया दुष्टृत कृतम् । अर्थात् ह अश्वों के द्वार क्रान्त होने
वाली ! हे रथों से क्रान्त होने वाली ! हे विष्णु के द्वारा क्रान्त रूप वाली !
हे धनों की धारण करने वाली ! हे मूर्त्तिके ! मेरे पापों का हरण करो जो
भी कुछ मैंने दुष्टृत किया हो ॥६२॥ वराह के द्वारा आपकी उठाया
गया है । अथ आप मेरे शरीर पर आरोहण करके मेरे समस्त पापों से मुझे
प्रमुक्त कर दो ॥६३॥'

【पुण्यदेहिमहाभागे न्नानानुजां कुरुष्व माम् ।

इत्युक्तवाच जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम् ॥६४॥

चतुर्हस्तप्रमण्डलाञ्च कृत्वा मण्डलिकां शुभाम् ।
 तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तदत्त्वा तपोधन ॥६५॥
 यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयानि ते ॥६६॥
 गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
 नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिकुर ॥६७॥
 नलिनीनन्दिनी सीतामालिनी च महापथा ।
 विष्णुपादाध्यंसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥६८॥
 पद्मवतीभोगवती स्वर्णरेखा च काशिकी ।
 दक्षापृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवामृता ॥६९॥
 विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाधिनी ।
 क्षेमा च वैष्णवी शान्ता शान्तिदा गोमती सती ॥७०॥
 त्रिविक्रान्तुलसीदुर्गा महालक्ष्मीः सरस्वती ।
 कृष्णप्राराधिकाराद्या लोपामुद्रादितोरतिः ॥७१॥
 अहल्या चादितोः संजास्वधा स्वाहाप्यरुन्वती ।
 शतरूपा देवहूतीत्येवमाद्या स्मरेत्तनुधीः ॥७२॥

हे महा भागे ! मुझे पुण्य का प्रदान करो और स्नान करने की मुझे अनुज्ञा प्रदान करो । इतना कह कर नाभि प्रमाण जल में मन्त्रों के साथ चार हाथ प्रमाण वाली शुभ मण्डलिका करके हे तपोधन ! वहाँ पर तीर्थों का आवाहन करना चाहिये ॥६४॥ जो-जो भी तीर्थ हैं उन सब को मैं तुमसे कहता हूँ । प्रत्येक आवाहन किये जाने वाले तीर्थ के नाम को सम्बोधित करके प्रार्थना करनी चाहिये यथा—हे गङ्गे ! हे यमुने ! हे गोदावरि ! हे सरस्वती ! हे नर्मदे हे सिन्धु ! हे कावेरि ! आप नद यहाँ आकर इस जल में अपना सन्निधान करो ॥६५-६७॥ विद्वान् पुरुषों को निम्न देवी देवों का—उस समय स्मरण करना चाहिये यथा-नलिनी नन्दिनी-सीता मालिनी-महापथा-विष्णु के चरणों की अर्च्यभूता-गङ्गा-त्रिपथगामिनी-पद्मावती-भोगवती-स्वर्णरेखा-काशिकी दक्षा-पृथ्वी-सुभगा-विश्व काया-शिवामृता-विद्याधरी-सुप्रसन्ना-लोक प्रसाधिनी-क्षेमा-

वैष्णवी-शाङ्गा शान्तिदा-गोमती गती-नायित्री -तुलसी दुर्गा-महालक्ष्मी-सरस्वती
शृणु प्राणाधिका राधा-लोपा मुद्रा अदिनि-रति अहत्या-अदिति-सज्ञा-अघा-
राहा-अरुघनी-शनरूपा और दवहूति इत्यादि के नामा का स्मरण उस स्नान
के समय में करना शुभ होता है ॥६८-७२॥

स्नात्वास्नात्वा महापूज कुर्व्यान्तु तिलक बुध ।
वाङ्गोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशे च वक्षामि ॥७३॥
स्नानदान तपो होम दैवञ्च पितृकर्मसु ।
तत् सर्वानिष्फल याति ललाटे तिलक विना ॥७४॥
ब्राह्मणास्तिलक कृत्वा कुर्भ्यात् सन्ध्याञ्च तर्पणम् ।
नमस्कृत्य मुग्धान् भक्त्या गृह गच्छेन्मुदान्वित ॥७५॥
प्रक्षाल्य पाद यन्नेन घृत्वा धीने च वामसी ।
मन्दिर प्रविशेत् प्राज्ञ इत्याहृष्टारभे च ॥७६॥
त्रिनापदौ च प्रक्षाल्य स्नात्वा विशति मन्दिरम् ।
नम्य स्नानादिव नष्ट जपहामञ्च पञ्चमम् ॥७७॥

बार-बार स्नान करने अर्थात् दुर्गामाँ - गावर अथवा आपसी गृह पूज
परे और फिर बुधका चाहिये कि स्नान करके तिलक करे । तिलक तिन २
स्थानों में शरीरका द्वा पत्र करे, इस बताया जाता है कि बाहुओं के मूल मन्त्रलाटम
कण्ठदेशमें और वक्षस्थल में तिलक लगाना चाहिये ॥७३॥ स्नान-दान-वरा-
हाम-दैव कम और पितृ कम यज्ञ साँ ललाट में तिलक के विना निष्फल हो
जाते हैं ॥७४॥ ब्राह्मणों को निष्कृष्ट शरीरारामों पर तिलक करने कि सन्ध्या
और तर्पण करना चाहिये । इसमें उपरान्त भक्तिभाव से दवा को नमस्कार कर
के आनन्द में मुक्त गान्तर पर को जाना चाहिये ॥७५॥ वहाँ घरपर परों
को धोकर और धीव (घृत्त तृप्य) अथवा दूध गान्तर करने प्राज्ञ पुण्य का मन्दिर
में प्रवेश करना चाहिये—यह हरि न ही कहा है ॥७६॥ अत्र स्नान कि
और अपने परों को धोय जो कोई हरि मन्दिर में या देवालय में प्रवेश किया
करता है उम्का स्नान आदिक जप और पञ्चम होम सभी नष्ट हो जाता
है ॥७७॥

परिधायस्त्रिगवदस्त्रंगृहञ्चप्रविशेद् गृही ।
 रुष्टालक्ष्मीर्गृहाद्याति श्रापंदस्त्वानुदाहरणम् ॥७८॥
 ऊर्ध्वजङ्घे चयोविप्रः पादौ प्रक्षालयेत् यदि ।
 तावद्भवतिचाण्डलो यावद् गङ्गान पच्यति ॥७९॥
 उपविश्यासनेब्रह्मन्नाचम्य साधकःशुचि ।
 पूजांकुर्व्यात्तु वेदोक्तं भक्तियुक्तोहि संयतः ॥८०॥
 शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायांजले स्थले ।
 गोपृष्ठेवा गुरौ विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरेः ॥८१॥
 सर्वप्रशस्ता पूजा च शालग्रामे च नारद ।
 सुराणामेव सर्वेषां यत्राधिष्ठानमेव च ॥८२॥
 स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वज्ञेऽपि वीक्षितः ।
 शालग्रामोदकेनैव योऽभिषेकं समाचरेत् ॥८३॥
 शालग्रामेजलं भक्त्या नित्यमभ्रातियो नरः ।
 जीवन्मुक्तःसच भवेद् यात्तयन्ते कृष्णमन्दिरम् ॥८४॥

स्निग्ध वज्र का परिधान करके गृही को घर में प्रवेश करना चाहिये ।

यदि ऐसा नहीं करता है तो लक्ष्मी रुष्टा होकर घर से मुदाहरण श्राप देकर चली जाया करती है । जो विप्र ऊर्ध्व जङ्घ मे पैरों का यदि प्रक्षालन करता है तो वह तबतक चाण्डाल हो जाता है जब तक वह गंगा दर्शन नहीं किया करता है ॥७८-७९॥ हे ब्रह्मन् ! इसके अनन्तर वहाँ आसनपर उपविष्ट होकर शुचि साधना करने वाले साधक को आचमन करना चाहिये । फिर भक्तिभाव से समन्वित होकर सयत होते हुये वेदोक्त विधि मे देव की पूजा करनी चाहिये ॥८०॥ शालग्राम में—मणि में-मन्त्र मे-प्रतिमा में जल में-स्थल में-अथवा गोपृष्ठ में-गुरु में और विप्र में हरि वा अर्चन करना प्रशस्त होता है ॥८१॥ हे नारद ! सब पूजा प्रशस्त है और शालग्राम मे अत्यधिक प्रशस्त है क्योंकि वहाँ पर समस्त गुरों का अधिष्ठान होता है ॥८२॥ जो कोई शालग्राम के उदके मे अभिषेक किया करता है वह समस्त तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त कर लेता है तथा सम्पूर्ण गणों में वीक्षित हुआ हो जाता करता है

शालग्राम में जो भक्तिभाव से जल को धर्यात् शालग्राम के स्नान किये हूये तोय को नित्य पीता है वह पुण्य जीवित ही मुक्त हो जाता है और धन्त में वृष्ण मन्दिर को प्राप्त हो जाता है ॥८३-८४॥

शालग्रामशिलाचक्र यत्र तिष्ठति नारद ।
 सचक्रो भगवास्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम् । ८५॥
 तत्र यो हि मूर्तो देही ज्ञाताज्ञानेन दंबतः ।
 रत्ननिर्माणयानेन स याति श्रीहरेः पदम् । ८६॥
 शालग्राम विनान्यत्रक. साधु. पूजयेद्धरिम् ।
 कृत्वा तत्र हरे. पूजा परिपूर्ण फललभेत् ॥८७॥
 पूजाधारश्च कथित श्रूयता पूजनक्रमः ।
 हरे पूजा बहुमता कथयामि यथागमम् ॥८८॥
 कश्चिद् ददाति हरये चोपचाराश्च पोटन ।
 सुन्दराणि पवित्राणि नित्य भक्तया च वैष्णव ॥८९॥
 क्वचिद् द्वादश द्रव्याणि पञ्चचस्तूनि कश्चन ।
 गेयामे त यथाशक्तिर्भक्तवित्तमूलञ्च पत्रने ॥९०॥
 भ्रातृज वसत पाद्यमध्यमाचमनीयकम् ।
 पुण्य चन्दनधूपञ्च दीपनवेद्यमूलमम् ॥९१॥
 गन्ध माल्यञ्च द्रव्याञ्च तलिना सुविलक्षणाम् ।
 जलमन्नञ्च नाम्बून साधार देयमव च ॥९२॥

हे नारद ! शालग्राम वा शिलाचक्र जिन स्थान पर स्थित रहता है वही पर नुदशन चक्र के तद्विषय माक्षात् भगवान् ही स्थित रहा करते हैं और निश्चिन्त रूप से गमय्य तीर्थ निदान किया करते हैं । ८५ । च । पर जो कोई भी देहागी मृत होता है चाहे वह ज्ञान पूर्वक रहता हो वा अज्ञान यज्ञ ही देवात् निवाम करता हो, वह रहता द्वाग निमित्त ज्ञान के द्वारा श्री हरि के पद (स्थान) को प्राप्त हो जाता है ॥८६॥ शालग्राम शिला के क्षिप्ता धन्यत्र कौन साधु हरि को पूजा करता है ? धर्यात् कोई नहीं । वही धर्यात्

शालग्राम शिलामें हरि की पूजा करके परिपूर्णां फल का लाभ प्राप्त होता है ॥८७॥ अब तक मैंने पूजा के आधार को बना दिया है। अब आगे पूजा के क्रम का आप लोग श्रवण करें। बहुतसे अर्थात् अधिक शास्त्रों—मुनियों और देवों तथा विद्वानों के द्वारा मानी हुई हरि की पूजा को जैसा कि आगम बताता है, अब मैं कहता हूँ ॥८८॥ कोई वैष्णव परम भक्ति की भावना से मित्त ही हरि के लिये षोडश उपचारों को समर्पित किया करता है जो कि परम सुन्दर और पवित्र हुआ करते हैं ॥८९॥ कोई वारह ही उपचारों के द्वारा पूजन किया करता है और कोई तो केवल पांच ही प्रमुख पूजनोपचारों के द्वारा हरि का भजन करता है। जिनकी जो भी शक्ति होती है उसी के अनुसार अर्चन के उपचारों से यजन करते हैं किन्तु वस्तुतः हरि के पूजन में मूल वस्तु भक्ति की सुदृढ़ भावना ही होनी है ॥९०॥ आसन-दस्त्र-पाद्य-अर्घ्य-आचमनीय-पुष्प-चन्दन-धूप-दीप-नैवेद्य जोकि अत्युत्तम हो—गन्ध-माल्य-सुविलक्षण ललित शय्या - जल - अन्न-ताम्बूल हो सब साधार समर्पित करने चाहिये

॥९१-९२॥

गन्धान्ततल्पनाम्बूलं विनाद्रव्याणि द्वादश ।
 पाद्यार्घ्यजल नैवेद्य पुष्पाण्येनानि पञ्च च ॥९३॥
 सर्वाण्येनानि मूलेन दद्यात् साधकसत्तमः ।
 गुह्यपदिष्टं मूलञ्च प्रशस्तं सर्वकर्मसु ॥९४॥
 आदी कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणायामं ततः परम् ।
 अङ्गप्रत्यङ्गन्यासञ्च मन्त्रन्यासततः परम् ॥९५॥
 वर्णान्यासं विनिवर्त्य चाध्वपात्रं विनिर्दिशेत् ।
 त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्रक्रमेण प्रजयेत् ॥९६॥
 जलनापूर्य्य गङ्गञ्च तत्रसस्यापयेद् द्विजः ।
 जलं संयूज्यविधिवत्तीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥९७॥
 पूजोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत् पुनः ।
 ततो गृहीत्वा पुष्पञ्च कृत्वायोगासनं बुद्धिः ॥९८॥

मन्त्र-अन्न-तल्प (शय्या) और ताम्बूल के बिना कुल बारह ही उपचार होते हैं । पात्र-अर्घ्य-जल-पुष्प नैवेद्य में पाँच उपचार मन्त्र के हुंकार करते हैं ॥६३॥ साधना करने वालों श्रेष्ठ पुरुष को ये समस्त पूजनोपचार मूल-मन्त्र से ही देव को समर्पित करने चाहिये । गुरु के द्वारा जो मन्त्र का उपदेश किया हो, वही मूल मन्त्र होता है और यह समस्त कर्मों में परम प्रशस्त होता है ॥६४॥

सबके आदि में भूत पुष्टि करे और इसके पश्चात् प्राणायाम करना चाहिये । फिर मन्त्र के द्वारा अङ्ग-प्रत्यङ्ग में न्यास करे और फिर मन्त्र का न्यास करना चाहिये ॥६५॥ फिर वाणं न्यास की विनिवृत्ति करे । इसके पश्चात् अर्घ्यपात्र को विनिश्चित करना चाहिये । त्रिकोण एक मण्डल की रचना करके वहाँ पर कूर्म की पूजा करे ॥६६॥ द्विज को आश्रय कि जल में पारुष को पूरित करके वहाँ पर स्थापित करे । जल की विधि-विधान के साथ पूजा करने फिर समस्त तीर्थों का उस जल में आवाहन करना चाहिये ॥६७॥

इहाँ उपकरण हा, उनको उस जल से क्षालन
योग्यता में स्थित होवे और पुष्प ग्रहण करे

इत् कृष्णमनन्यद्यौ ।

दशान्मूलेन साधक ॥६८॥

इत्त पूजयद्धर्मिम् ।

इवमन्त्र विमर्जयेत् ॥१००॥

वा च कवच पठेत् ।

धर्मा च प्राणमेद्भुवि ॥१०१॥

कुर्याद्विचक्षणम् ।

लिदद्यात्ततो मुने ॥१०२॥

इत्त वित्तानुरूपकम् ।

[त्त्तमाएश्रुतीश्रुत ॥१०३॥

इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम् ।
 ब्राह्मिकस्य च विप्राणां किं भयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०४॥

श्री गुरु चरण के द्वारा उपदेश किये हुये ध्यान के द्वारा अनन्य वृद्धि वाले को श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिये और फिर साधना करने वाले साधक भक्त पूजक को मूल मन्त्र के द्वारा ध्यान करके समस्त अर्घ्य-पाद्य-आचमन - स्नान-वस्त्र-माल्य-घूप-द्वीप नैवेद्य-नान्य-अन्न आदि उपचारों को क्रमशः समर्पित करना चाहिये ॥१२६॥ तन्त्रोक्त देव के अङ्ग और प्रत्यङ्ग की पूजा करे । यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप करके देव मन्त्र का विमर्जन करना चाहिये ॥१००॥ विविध भाँति के उपचारों को समर्पण कर के हृदि की स्तुति करे और फिर कवच का पाठ करना चाहिये । इनके उपरान्त पगीहार करके मस्तक से भूतल में देव को प्रणाम करे ॥१०१॥ इस तरह देव की पूजा का पूर्णतया साङ्ग सम्पादन करते विचक्षण पुरुष को यज्ञ कर्म करना चाहिये । हे मुने ! श्रौत-स्मार्त्त अग्नि से युक्त यज्ञ करे और फिर इनि देनी चाहिये ॥१०२॥ इसके अनन्तर नित्य श्राद्ध करे और फिर यथाशक्ति अपने अपने वित्त के अनुसार दान करना चाहिये । यह सब पूर्ण करके कृती पुरुष को विहार करना चाहिये । यह क्रम श्रुति में धृत होता है ॥१०३॥ हे विप्र ! इस प्रकार से यह भव हमने तुमको बता दिया है । यही वेद में कहा हुआ उत्तम सूत्र है जोकि विप्रों का ब्राह्मिक हुआ करता है । अब आप लोग मुझे यह बताओ—अब आगे क्या श्रवण करना चाहते हैं ? ॥१०४॥

— —

११—ब्रह्मनिरूपणम् ।

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वत्प्रसादज्जगद्गुरो ।
 भवान् ब्रह्मस्वरूपञ्च वद ब्रह्मनिरूपणम् ॥१॥
 प्रभो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमोक्षरम् ।
 किं तद्विशेषणं किं वाप्यविशेषणमेव च ॥२॥

किं वा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा ।
 किं वा तल्लक्षणं शस्तवेदेवाकिनिरूपणम् ॥३॥
 ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिः किं वा ब्रह्माम्बरुपिणी ।
 प्रकृतिर्लक्षणं किं वा सारभूतश्रुतम् ॥४॥
 कस्य सृष्टौ च प्राधान्यं द्वयोर्मध्ये वरं परम् ।
 विचार्यं मनसा सर्वसर्वं जवद मा ध्रुवम् ॥५॥
 नारदस्य वच श्रुत्वा पञ्चवक्त्रं प्रहस्य च ।
 भगवान् वक्तुमारंभे परं ब्रह्मनिरूपणम् ॥६॥

इस अध्याय में ब्रह्म का निरूपण किया जाता है । देवपि श्री नारद जी ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगत गुरो ! आपके प्रसाद से मैंने यह सब मनी भौति श्रवण किया है । आप तो ब्रह्म स्वरूप है अतएव यह ब्रह्म का निरूपण करने बताने का अनुग्रह कीजिये ॥३॥ हे प्रभो ! क्या ब्रह्म आवार वाला है अथवा क्या वह ईश्वर निराकार है ? उस ब्रह्म का विशेषण क्या है ? अथवा उसकी ध्विजोयता क्या है ? ॥२॥ क्या वह ब्रह्म देवन क योग्य है अथवा अदृश्य है अथवा वह देहियों से लिप्त है ? या उसका प्रसास्त लक्षण क्या होता है किम्वा वेद में उसका निरूपण किस प्रकार का किया गया है ? ॥३॥ उस ब्रह्म से अतिरिक्त जो प्रकृति है वह क्या ब्रह्म के स्वरूप वाली है ? उस प्रकृति का लक्षण क्या होता है ? जोकि सारभूत श्रुति में श्रुत होता है ? ॥४॥ इन दोनों में सृष्टि के सृजन में किस की प्रधानता होती है ? उन दोनों के मध्य में परम अण्ड कौन है ? हे सर्वज्ञ ! यह सब मन में मनी भौति विचार करके मुझे सब ध्रुव जो हो वह बताने की कृपा करें ॥५॥ देवपि नारद के इस वचनावली का श्रवण करके पञ्चवक्त्र प्रहसित हुए और हसकर फिर भगवान् शिव ने पर ब्रह्म का निरूपण करना आरम्भ किया था अर्थात् बताना शुरू किया ॥६॥

यद् यत् पृष्टं स्वशा वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम् ।
 सुदुर्लभञ्च वेदेषु पुराणेषु च नारद ॥७॥
 अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शैषो धर्मा महान् विराट् ।
 सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्न वा ॥८॥

यद्विशेषणयुक्तञ्च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च ।
 तान्निरूपितमस्माभिर्वेदे वेदविदां वर ॥६॥
 वैकुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मण ब्रह्मणा मया ।
 यद्ब्रुवाच हरिः किञ्चिन्निरुपेयं कथयामि ते ॥१०॥
 सारभूतञ्च तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम् ।
 द्वैधभ्रमतमोर्ध्वंससुप्रकृष्टप्रदीपकम् ॥११॥
 परमात्मस्वरूपञ्च परं ब्रह्म सनातनम् ।
 सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहिकर्मणाम् ॥१२॥
 प्राणः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्माप्रजापतिः ।
 सर्वज्ञानस्वरूपोऽहंशक्तिः प्रकृतिरीश्वरी ॥१३॥
 आत्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिंश्च संस्थिताः ।
 गते गताश्च परमे नारदैवमिवानुगाः ॥१४॥

श्री महादेव ने कहा—हे वत्स ! तुमने जो भी प्रश्नों के द्वारा पूछा है वह प्रति निगूढ उत्तम ज्ञान का विषय है । हे नारद ! यह विषय वेदों में और पुराणों में अत्यन्त दुर्लभ है ॥७॥ मैं-ब्रह्मा-विष्णु-शेष धर्म और महान् विराट् यह सब हे ब्रह्मन् ! हमने निरूपित किया है, श्रुतियों ने नहीं किया है ॥८॥ हे वेदों के वेत्ताओं में वर ! जिस विशेषण से वह युवत होता है—वह दृश्य है और प्रत्यक्ष है, यह हमने वेद में भली भाँति निरूपित कर दिया ॥९॥ पहिले वैकुण्ठ लोक में धर्म के द्वाग ब्रह्मा के द्वाग और मेरे द्वारा मैं पर भगवान् हरि ने जो कुछ कहा था, उसे आप समझिये—मैं वही सब आपको कहता हूँ ॥१०॥ तत्त्वों का सार भूत अज्ञान के अन्धकार का नेत्र है । के अम के तम का ध्वंस करने वाला प्रकृष्ट प्रदीप है ॥११॥ परमात्मा स्वरूप सनातन परम ब्रह्म है ! जोकि सबके देहों में स्थित रहता है और श्रुतियों के कर्मों का साक्षि स्वरूप वाला है ॥१२॥ पाँच प्राण स्वयं विष्णु, मन स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हैं—सर्व ज्ञान स्वरूप मैं हूँ और शक्ति ईश्वरी ति है ॥१३॥ हम सब आत्मा के अधीन होते हैं । उसके स्थित होने पर ही हम सब संस्थित रहा करते हैं । उसके परम में चले जाने पर हम सब भी गत

हो जाया करते हैं जैसे कोई नर देव के साथ उसने मनुष्यामी भी चले जाया करते हैं ॥१०॥

जीवस्तत्प्रतिविम्बश्च म च भोगी च कर्मणाम् ।
यथाकंचन्द्रयाविम्बो जलपूर्णघटेपु च ॥११॥

विम्बो घटेपु भग्नपु प्रलीनश्चन्द्रसूर्ययो ।
तथा सृष्टौ च भग्नायाजीवो ब्रह्मणि लीयते ॥१२॥

एकमेव पर ब्रह्म शेषे वत्सु भवशये ।
वय प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम् ॥१३॥

तच्च ज्योति स्वल्पञ्च मण्डलाकारमेव च ।
ग्रीष्ममध्याह्नमासंण्डकोटिकोटिसमप्रभम् ॥१४॥

आकाशमिव विस्तोर्णं सर्वव्यापकमव्ययम् ।
सुखदृश्य यथा चन्द्रविम्ब योगिभिरेव च ॥१५॥

वदन्ति योगिनस्तत्तु पर ब्रह्म सनातनम् ।
दिवानिशञ्च ध्यायन्ते सत्य तत् सर्वमङ्गलम् ॥१६॥

निर्गोहञ्च निराकार परमात्मनमीश्वरम् ।
स्वेच्छामय स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम् । २१॥

परमानन्दरूपञ्च परमानन्दकारणम् ।
परं प्रधान पुम्प निर्गुण प्रकृते परम् ।

तत्रैव लीना प्रकृति सर्वबीजस्वरूपिणी ॥२२॥

यह जीवात्मा उसका ही एक प्रतिविम्ब होता है और कर्मों के भोगने वाला हुआ करता है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का विम्ब जल से पूर्ण घटों में दिखाई दिया करता है ॥११॥ घटों का जब भग्न हो जाता है तो वह विम्ब जो उनमें भरे हुए जल में दिखाई देता था, चन्द्र और सूर्य में ही जाकर प्रलीन हो जाया करता है। उसी प्रकार से इस सृष्टि के भग्न हो जाने पर यह जीवात्मा ब्रह्म में जाकर लीन हो जाया करता है ॥१२॥ हे वत्स ! यह ब्रह्म एक ही होता है जबकि भय का शय शेष हो जाता है। हम सब भी उसी में प्रलीन हो जाया करते हैं और यह घराचर सम्पूर्ण जगत् भी उसमें प्रलीन हो

जाता है ॥१७॥ वह ज्योति स्वरूप होता है और एक मण्डल के आकार वाला ही है । उसका महा प्रकाश श्रीष्म ऋतु के मध्याह्न समय के सूर्य के कितने ही करोड़ों - प्रभा के समान वाला है ॥१८॥ वह इस आकाश के समान महान् विस्तार वाला है—सब में व्यापक है और अवश्य है । योगियों के द्वारा ही चन्द्र के विम्ब की भाँति यह सुखद पूर्व के देखने योग्य होता है ॥१९॥ योगी लोग उसे सनातन परम ब्रह्म कहते हैं और वे रातदिन उस सत्य सर्व मङ्गल का ध्यान किया करते हैं ॥२०॥ वह निरीह है अर्थात् चेष्टा या इच्छा से रहित है—निराकार है अर्थात् आकृति से रहित है—परमात्मा - ईश्वर - स्वेच्छा से परिपूर्ण - स्वतन्त्र है और सबके कारणों का भी कारण है । परम आनन्द के रूप वाला-परम आनन्द का कारण-पर-प्रधान पुरुष-निर्गुण-प्रकृति से पर वह ब्रह्म है । वहाँ पर ही यह सबके बीज स्वरूप वाली प्रकृति लीन होती है ॥२१-२२॥

यथाग्नी दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्ये यथा मुने ।
 यथा दुग्धे च धावत्यं जलेशैत्यंयथैव च ॥२३॥
 यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षिती सदा ।
 तथाहि निर्गुणां ब्रह्म निर्गुणां प्रकृतिस्तथा ॥२४॥
 सृष्ट्युन्मुखे न तद्ब्रह्मचाशेन पुरुषः स्मृतः ।
 स एव सगुणो वत्स ! प्राकृतोविपयीस्मृतः ॥२५॥
 सा च तत्रैव त्रिगुणा परा छाया मयी स्मृता ॥२६॥
 यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्तुं क्षमः सदा ।
 तथाप्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं क्षमोमुने ॥२७॥
 स्वर्णेन कुण्डलं कर्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा ।
 तथा ब्रह्म तयामार्द्धं सृष्टिं कर्तुं मिहेश्वरः २८॥
 कुलालसृष्टा न च मृन्नित्या एव सनातनी ।
 न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णञ्च नित्यमेव च ॥२९॥
 नित्यं तत् परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता ।
 द्वयोः समञ्च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥३०॥

हे मुने ! जिस प्रकार से अग्नि में दाह करने वाली शक्ति और सूर्य में प्रभा एवं दूध में घबलता तथा जल में शीतलता, गगन में शब्द-पृथ्वी में गन्ध सदा ही रहा करते हैं और ये सब इन गुणों से कभी हीन नहीं होते हैं वैसे ही वह निर्गुण ब्रह्म है तथा प्रकृति भी निर्गुण है ॥२३-२४॥ यही ब्रह्म जब सृष्टि की रचना करने को उन्मुक्त होता है तो वह अक्ष से पुष्प हो जाता है और ऐसा ही कहा गया है । हे वरस ! वह ही सगुण होता है एवं प्राकृत तीन (सत्त्व-रज-तम) गुणों वाली त्रिगुणा परा छायामयी कही गई है ॥२५-२६॥ जिस तरह कुलाल (कुम्हार) घट की रचना करने में सदा ही समर्थ होता है, हे मुने ! उसी प्रकार से वह ब्रह्म प्रकृति से सृष्टि की रचना करने में समर्थ होता है ॥२७॥ जिस प्रकार में स्वर्णकार सुवर्ण से कुण्डलों की रचना करने में समर्थ होता है, ठीक उसी भाँति से प्रकृति के साथ ईश्वर भी यहाँ पर सृष्टि का निर्माण करने की क्षमता रखा करता है ॥२८॥ कुम्हार के द्वारा बनाई हुई मृत्तिका नित्य एवं सनातनी नहीं होती है और न स्वर्णकार के द्वारा सृष्ट वह स्वर्ण ही नित्य होता है ॥२९॥ नित्य तो वह परम ब्रह्म है और वह प्रकृति भी सनातनी है—ऐसा बताया गया है । कुछ मनीषी गण कहते हैं कि उन दोनों की समान ही प्रधानता होती है ॥३०॥

मृद स्वर्णं समाहृतं कुलालस्वर्णकारको ।

न समर्थो च मृन्स्वर्णं तद्योगहृद्यो क्षमम् ॥३१॥

तन्मात्तदब्रह्म प्रकृते परमेव च नारद ।

इति केचिद्ब्रह्मन्त्येव द्वयोश्च नित्यता ध्रुवम् ॥३२॥

केचिद् वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयञ्च प्रकृतिं पृमात् ।

ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिर्वदन्तीति च केचन ॥३३॥

तदब्रह्म परमं ग्रामं स्वर्णकारगणकारणम् ।

तद्ब्रह्मपादारुणं ब्रह्मनिदं विज्जित् अतीश्रुतम् ॥३४॥

ब्रह्मनात्मा च सर्वेषां नित्यं साक्षिरपिणम् ।

नर्तन्यापो च सर्वादिनशाण्डवश्रुतीश्रुतम् ॥३५॥

तद्ब्रह्मशक्तिः प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी ।

यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतिलक्षणम् ॥

तेजोरूपञ्च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा ॥३६॥

कुलाल और स्वर्णकार मृत्तिका और मुवर्ण का समाहरण करने में समर्थ नहीं होते हैं और मृत्तिका तथा स्वर्ण उन दोनों के आहरण में समर्थ हैं ॥३१॥ हे नारद ! इमसे वह ब्रह्म प्रकृति से परे ही होता है—ऐसा कुछ विद्वान् कहा करते हैं, किन्तु इन दोनों की निरयता निश्चत ही है कुछ विद्वान् ऐसा कहते है कि वह ब्रह्म स्वयं प्रकृति और पुमान् है । कुछ मनीषी प्रकृति को ब्रह्म से अतिरिक्त कहा करते हैं ॥३२॥ वह ब्रह्म परम धाम है और समस्त कारणों का भी कारण स्वरूप होता है । हे ब्रह्मन् ! उस ब्रह्म का लक्षण कुछ यह श्रुति में श्रुत होता है ॥३४॥ ब्रह्म और आत्मा सबका निर्मित सब साक्षि स्वरूप वाला होता है यह सर्वव्यापी है और सबका आदि लक्षण है—ऐसा श्रुति (वेद) में श्रुत होता है ॥३५॥ यह प्रकृति उस ब्रह्म की शक्ति है, जो समस्त बीजों के स्वरूप वाली होती है क्योंकि यह ब्रह्म उसकी शक्ति वाला होता है यही प्रकृति का लक्षण है । वह ब्रह्म तेजो रूप वाला है जिसका योगीगण सदा ध्यान किया करते हैं ॥३६॥

वैष्णवास्तन्न मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मबुद्धयः ।

तत्तेजः कस्य वाश्चर्य्य ध्यायन्ते पुरुषं विना ॥३७॥

कारणेन विना कार्यकुतो वा प्रभवेद्भवे ।

ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम् ॥३८॥

स्वेच्छामयस्य पुंसश्च साकारस्यात्मनः सदा ।

तत्तेजो मण्डलाकारेसूर्य्यकोटिसमप्रभे ॥३९॥

नित्यं स्थूलञ्च प्रच्छन्नं गोलोकाभिधमेव च ।

लक्षकोटियोजनञ्च चतुरस्रं मनोहरम् ॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीनामावृतं सदा ॥४०॥

सुदृश्यं वत्सुलाकारं यथैव चन्द्रमण्डलम् ।

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं निराधारञ्च स्वेच्छया ॥४१॥

ऊर्ध्वञ्चनित्यवकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।

गोगोपगोपीमयुक्त कल्पवृक्षमन्वितम् ॥४२॥

सूक्ष्म वृद्धि वाले मरे भक्त वैष्णव इसको नहीं मानते हैं । पुरुष के बिना किमथा वह तेज है जिसका योगीश्वर ध्यान किया करते हैं यह परमाश्चर्य का विषय है ॥३७॥ वाग्ग के बिना प्रभवोद्भव म काय कैसे होता है ? इसमें वैष्णव लोग बर्ही पर परम मनोहर स्वरूप का ध्यान किया करते हैं ॥३८॥ स्वच्छामय साकार पुरुष की छात्मा का सदा वह तेज कोटि सूर्यो के समान प्रभाव वालेमण्डलाकार म होता है ॥३९॥ नित्य-स्थूल और प्रच्छन्न वह गालोक इस नाम वाला है । वह एक लाख करोड योजन के विस्तार वाला चौकोर अर्थात् मनोहर है और उत्तम रत्नों के सारो के द्वारा निर्माण किया हुआ एक मदा गोपियो से आकुल रहता है ॥४०॥ वह सुदृश्य अर्थात् सुख से दर्शन करने के योग्य है और (चन्द्रमण्डल की भाँति वस्तुल (गोल) आकार वाला है । उसकी रचना रत्नों में जो परमोत्तम श्रेष्ठ तम रत्न है उनसे हुई है-वह बिना आधार वाला है और अपनी ही इच्छा से स्थित रहता है । वह वैकुण्ठ से ऊपर है - नित्य है और पचास करोड योजन के विस्तार से युक्त है । वह गो-गोपी और गोपी से समन्वित है तथा बल्प वृक्षो से समुक्त है ॥४१-४२॥

कामधेनुभिराकीर्ण रासमण्डलमण्डितम् ।

वृन्दावनवनाच्छन्न विरजावेष्टित मुने ॥४३॥

शतशृङ्गं शतशृङ्गं सुदीप्त दीप्तभीप्सितम् ।

लक्षकोटिपरिमितं राश्रमं सुमनोहरं ॥४४॥

शतमन्दिरसयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम् । ४५॥

प्राकारपरित्यायुक्त पारिजातवनान्वितम् ।

कौस्तुभेन्द्रेण मणिना निर्माणकलमोज्ज्वलं ॥४६॥

हीरासारविनिर्माणमोपानसघसुन्दरं ।

मणीन्द्रसारनिर्माणं कपाटदर्पणान्वितं ॥४७॥

नानाचित्रविचित्राढ्यं राश्रमञ्च सुसंस्कृतम् ।

षोडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्त रत्नदीपकैः ॥४८॥

रत्नसिंहासनं रम्ये चामूल्यरत्ननिर्मिते ।

नानाचित्रविचित्राढ्ये वसन्तमीश्वरं वरम् ॥४९॥

वह गोलोक धाम अनेक कामधेनुओं से समाकीर्ण होता है और रास मण्डल से मण्डित है । हे भुने ! यह तो लोक वृन्दावन के वनों से आच्छन्न रहता है तथा विरजायमुना से वेष्टित है ॥४८॥ शतशृङ्गों से शत शृङ्ग दीप्त है सुदीप्त और ईप्सित हैं जोकि एक लाख करोड़ परिमित मनोहर आश्रमों से देदीप्यमान है ॥४९॥ शत मन्दिरों से संयुक्त बहुत ही सुन्दर आश्रम है ॥४९॥ वह प्राकार (चारदिवारी) - परिखा (खाई) से युक्त है और पारिजात नामक देववृक्षों के वन से अन्वित है । कौस्तुभेन्द्रमणि से उज्ज्वल निर्मित किये हुये कवचों से—उक्त हीरों के सार से विनिर्मित सुन्दर सोपान (सीढ़ी) के संध से—श्रेष्ठ मणियों से विरचित कपाट और दर्पणों से तथा अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र पदार्थों से युक्त सुसंस्कृत आश्रम वाला वह गोलोक धाम है जहाँ रत्नों के दीपों से युक्त-सुदीप्त सोलह द्वार हैं ॥४८-४९॥ वहाँ पर अनेक प्रकार के अमूल्य सर्व श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित परम रम्य सिंहासन पर जोकि विविध चित्र - विचित्र उत्तम पदार्थों से युक्त है सर्वेश्वर विराजमान हैं ॥४९॥

। नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम् ।

शरन्मध्याह्नमार्त्तं षडप्रभामोचनलोचनम् ॥५०॥

। शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशोभाच्छादनमाननम् ।

कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितसुन्दरम् ॥५१॥

कोटिचन्द्रप्रभायुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् ।

सस्मित मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम् ॥५२॥

वह्निस्स्कार पीतांशुयुगलेन समुज्ज्वलम् ।

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ॥५३॥

आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ।

त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं मणिमणिमयभूषितम् ॥५४॥

मयूरपुच्छचूडञ्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ।

रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥५५॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलमुशोभितम् ।

मुक्तापट्टि विनिन्दकं दशनसमनोहरम् ॥५६॥

वे नूतन मेघ के तुल्य ह्याम दर्शुं वात्रे है । रिशोर प्रवस्था से युक्त हैं । सिमु स्वल्प वाले हैं । शर-माल क मध्याह्न के मूर्यं प्रचण्डतम प्रभा का मोचन करने वाले नेत्र है ॥५०॥ शरत्काल के पार्वण पूर्ण चन्द्र की शोभा का द्योदन करने वाला मुख है । करोड़ों काम देवों की लावण्य की लीला से निन्दित करने वाली सुन्दरता से युक्त है । कोटि चन्द्रों की प्रभा से प्रापुष्ट एव पुष्ट श्री से युक्त विग्रह वाले हैं । मन्द मुस्कान से अश्विन-मुरली हाथ में धारण करने वाले हैं—युपशस्त शीघ्र सुमङ्गल है ॥५१-५२॥ अग्नि के सत्स्वार की भक्ति पीत वस्त्र युगल से समुज्ज्वल है । चन्दन से सुरक्षित समस्त अङ्गों वाले हैं । बौस्तुभ से विभूषित है । जानु पर्यन्त मालती की माला एव वन माला से विभूषित है । विभङ्ग की अङ्गिमा से युक्त है । मणि शीघ्र नागिका के समूह से विभूषित है । मयूर की प्रच्छ चूडायें रखन वाले हैं । श्वट रत्नपूर्ण मुकुट से समुज्ज्वल है । रत्नों द्वारा निमित्त केयूर तथा रत्न उदित धलय शीघ्र रत्नपूर्ण मञ्जीर से रञ्जित है ॥५३-५५॥ रत्न जटित कुण्डलों के युग्म से सुशोभित गण्डस्थल वाले शीघ्र मोतियों की पट्टि की निन्दित करने वाले दशन - पट्टि से युक्त एव श्रुति मनोहर है ॥५६॥

पवनविम्बाधरीष्ठञ्च नामिकोन्नतशोभनम् ।

वीक्षित गोपवामिभ्रवेणित्ताभिश्चरन्ततम् ॥५७॥

स्थिरधौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम् ।

भूषिताभिश्च सद्रत्ननिर्मणभूषणेन च ॥५८॥

सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मनिवेन्द्रकैः ।

ब्रह्माविष्णुशिवानन्तधमर्षिर्वन्दित मृदा ॥५९॥

भक्तप्रिय भवननाय भक्तानुग्रहकानरम् ।

रासेस्वरं सुरसिक रात्रावगन्त्यलस्थितम् । ६०॥

एवंरूपमरूपं तं ध्यायन्ते वैष्णवा मुने ।

मततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम् ॥६१॥

अक्षरं परम ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ।

स्वेच्छामयं निगुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परमं ॥६२॥

सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वज्ञं सर्वमेव च ।

सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरप्रदम् ॥६३॥

गोलोक धाम निवासी सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के मुख के ओष्ठ पके हुये विम्ब के समान सुन्दर हैं तथा ऊँची नासिका से शोभायुक्त हैं । श्रीकृष्ण चारों ओर निरन्तर वेष्टित गोपिकाओं से निरन्तर वीक्षित है ॥५७॥ वे गोपिकायें स्थिर यौवन से युक्त हैं और आदर के सहित मन्द मुस्कान से युक्त तथा सुन्दर श्रेष्ठ-तम रत्नों के द्वारा निर्मित भूषणों से समलङ्कृत हैं ॥५८॥ गोलोकेश्वर के द्वारा-गुनीन्द्रों से-मुनियों से-मानवेन्द्रों से और प्रसन्नता के साथ ब्रह्मा-विष्णु-शिव-शेष और चर्म आदि के द्वारा वन्दित है ॥५९॥ गोलोक धाम के प्रभु भक्तों के परम प्रिय अपनी भक्ति करने वालों के स्वामी और भक्तजनों के ऊपर अनुग्रह करने को अत्यन्त कातर रहने वाले हैं । रास लीला के अधीश्वर-बड़े ही रसिक और श्री राधा के वल्लभ्यजन में स्थित रहने वाले हैं ॥६०॥ हे मुने ! इस प्रकार के रूप वाले और विना रूप वाले उन गोलोक के स्वामी श्रीकृष्ण चन्द्र का वैष्णव लोग ध्यान किया करते हैं । वह हमारे निरन्तर ध्यान करने के योग्य हैं । वह परमात्मा और ईश्वर है ॥६१॥ अक्षर-परम ब्रह्म-भगवान-सनातन-स्वेच्छामय-निगुण-निरीह-प्रकृति से पर - सबके आधार-सबका बीज स्वरूप-सर्वज्ञ-सर्व सबके ईश्वर-सबके पूजा करने के योग्य और वह समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं ॥६२-६३॥

स एव भगवानादिर्गोलोकेद्विभुजः स्वयम् ।

गोपवेशश्च गोपालेः पार्षदैः परिवेष्टितः ॥६४॥

परिपूर्णात्मः श्रीमान् श्रीकृष्णोराधिकेश्वरः ।

सर्वान्नारात्मा सर्वत्रप्रत्यक्षः सर्वगः स्मृतः ॥६५॥

कृपिश्च सर्ववन्नोनकारश्चात्मवाचकः ।

सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्तितः । ६६॥

कृपिश्च सर्ववचनो नकारश्चादिवाचक ।
 सर्वादिपुरुषो व्यापी तेन कृष्ण प्रकीर्तित ॥६७॥
 स एवाशेन भगवान् बंकुष्ठे च चतुर्भुज ।
 चतुर्भुजं पार्यदस्तरावृत कमलापति ॥६८॥
 स एव क्लेया विष्णु पाता च जगता प्रभु ।
 इवतद्दीपेसिन्धुन्यापतिरव चतुर्भुज ॥६९॥
 एतत् कथित सर्व पर ब्रह्मनिर्माणम् ।
 अस्माक चिन्तनीयञ्च सेव्यवन्दितमीप्सितम् ॥७०॥

वह ही उपर्युक्त स्वरूप एव शक्ति से सम्पन्न भगवान् आदि रूप
 हैं जोकि मोनोक धाम मे दो भुजा वाले स्वयं गोप के वेश वाले धरने पापद
 गोपात्रों के द्वारा परिवेष्टित होते हुये विराजमान रहते हैं ॥६४॥ श्रीराधिका
 के साथ श्रीकृष्ण श्रीमान् और परिपूर्ण तम प्रभु हैं । यह सबक अन्तरा मा-
 न्यत्र प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले और सबक गमन करने वाला कह गये हैं ॥६५॥
 कृपि पर शब्द सबका वाचक है और नकार आदि के धर्म को घटाने वाला है ।
 एमीनिचे कृष्ण शब्द का धर्म सर्वात्मा होता है । वही परब्रह्म है । इसमे कृष्ण
 रूप नाम से यह प्रकीर्तित होते हैं ॥६६॥ वह ही श्रीकृष्ण जो परिपूर्ण प्रभु हैं
 एक भग से बंकुष्ठ लोक मे चार भजा वाले भगवान् होकर विराजमान रहा
 करते हैं । वह कमला के स्वामी चारभजा वाले पार्यदा मे चाग और आवृत
 रहते हैं ॥६७ ६८॥ वह ही एक कला म जगत् के प्रभु विष्णु पालन करने
 वाले हैं और इन द्वीपम सिन्धु कया (महानदी) के पति चार भजाया
 वाले हैं ॥६९॥ यह सब तुमको ज्ञान बता दिया है जोकि परब्रह्म का पूर्ण
 और मत्त निर्माण है । वही हम सबका सेव्य वन्दित इप्सित और विन्नन करने
 का योग्य है । ७०॥

इत्युक्तवत् । शङ्करस्मृत्य विरराम च शौनक ।
 गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टाव तञ्च नारद ॥७१॥
 मुनिस्तोत्रेण मन्तुष्टा भगवानादिरच्युतः ।
 ज्ञान मृत्युञ्जयस्तरमं प्रददीव रमोप्सितम् ॥७२॥

तं प्रणम्य मुनीन्द्रश्च प्रहृष्टवदनेक्षणः ।

तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणश्रमम् ॥७३॥

हे शौनक ! शङ्कर इतना कहकर विराम को प्राप्त हो गये थे अर्थात् धुन हो गये । फिर देवर्षि नारद ने गन्धर्व राज स्तोत्र के द्वारा उनकी स्तुति की ॥७१॥ उस मुनि ने स्तोत्र के द्वारा स्तुति होने पर भगवान् आदि स्वरूप अच्युत बहूत ही सन्तुष्ट हो गये थे और उस समय मृत्युञ्जय भगवान् ने उन देवर्षि नारद को ज्ञान तथा ईप्सित वरदान प्रदान किया था ॥७२॥ मुनीन्द्र नारद ने उनको प्रणाम किया और उनका मुख तथा नेत्र परम प्रहृष्ट हो गये थे । इसके उपरान्त उनकी आज्ञा से वह परम पुण्यमय नारायणश्रम को खले गये थे ॥७३॥



प्रकृतिखण्डम्

१२—प्रकृतिचरितसूत्रम् ।

गणेशजन्मदुर्गा राधा लक्ष्मी सरस्वती ।
 सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चचात्मृता ॥१॥
 आविर्बभूव साकेन जावामा ज्ञानिना वरा ।
 विवा तल्लक्षणं वरस । को वा वन्तु क्षमो भवेत् ॥२॥
 किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यत् शत रुद्रवव्रत ॥३॥
 प्रकृष्टवाचक प्रश्न कृतिश्च सृष्टिवाचकः ।
 सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृति सा प्रकीर्त्तिता ॥४॥
 गुरो प्रकृष्टसन्वे च प्रगल्भो वर्तते श्रुतौ ।
 मध्यमे रजनि कृश्च तिस्रद्वन्द्वमपि स्मृत ॥५॥
 त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वेगनिसमन्विता ।
 प्रधानसृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥६॥
 प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचक ।
 सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता ॥७॥

इस अध्याय में प्रकृति के चरित्र के सूत्र का निरूपण किया जाता है ।
 नारायण ने कहा—गणेश को जन्म प्रदान करने वाली जननी दुर्गा-राधा-
 लक्ष्मी-सरस्वती और सावित्री और सृष्टि के सृजन करने की विधि में प्रकृति
 पाँच प्रकार की बही गई है ॥१॥ ज्ञानियो में वर वह किम से आविर्भूत हुई थी

और कहां वास करने वाली है ? उसका लक्षण क्या है ? हे वत्स ! अथवा कौन है जो उसको कहने के लिये समर्थ होता है ? ॥२॥ मैं उसको कुछ थोड़ा बहुत कहता हूँ जोकि मैंने श्री रुद्रदेव के मुख से इसका श्रवण किया है ॥३॥ प्रकृति-इस शब्द में जो 'प्र' है वह प्रकृष्ट का वाचक होता है । जो कृति— यह शब्द है वह सृष्टि का वाचक है । सृष्टि में जो प्रकृष्ट देवी है वही प्रकृति- इस शुभ नाम से कही गई है ॥४॥ श्रुति में प्रकृष्ट सत्त्व वाले गुण में 'प्र' शब्द होता है । मध्यम रज में 'कृ' शब्द और 'ति' शब्द तम में कृत्वा ॥५॥ जो यह त्रिगुणात्म स्वरूप वाली है वह सर्व प्रकार की शक्ति से समन्वित होनी है । प्रधान सृष्टि के प्रकरण में यह परम शक्ति शालिनी है । इसी से प्रकृति इस नाम से कही जाती है ॥६॥ 'प्र' शब्द प्रथम में आता है और 'कृति'—यह शब्द सृष्टि का वाचक है । सृष्टि के आदि में जो देवी है वह प्रकृति कही गई है ॥७॥

योगेनात्मासृष्टिविधौ द्विधा रूपो बभूव सः ।

पुमांश्च दक्षिणाद्वाङ्गो वामाङ्गः प्रकृतिः स्मृतः ॥८॥

सा च ब्रह्मस्वरूपा च माया नित्यमनातनी ।

यथात्मा च यथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्मृता ॥९॥

अतएव हि योगीन्द्र स्त्रीषु भेदं न मन्यते ।

सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् पश्यति नारद ॥१०॥

स्वेच्छामग्रम्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया ।

सा विवर्भूव सहसा मूलप्रकृतिरोच्चरी ॥११॥

तदाजया पञ्चविधा सृष्टिकर्मणि भेदतः ।

अथ भक्तानुरोधाद् वा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥१२॥

गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया ।

नारायणी विष्णुनाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥१३॥

ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता सदा ।

सर्वाधिष्ठातृदेवी सा ब्रह्मरूपसनातनी ॥१४॥

वह आत्मा सृष्टि की विधि में योग से दो प्रकार का हो गया था ।
 दक्षिण भाग का जो आया अग्र, या वह पुमान् हो गया और वाम भाग का
 उसका आया अग्र प्रवृत्ति हो गई थी—ऐसा बताया गया है ॥११॥ वह नित्य
 स्वरूप बानी सनातनी मायामह्य स्वरूपा है । जिस प्रकार से आत्मा है वैसी
 ही शक्ति है जिस तरह अग्नि में दाहिका शक्ति होती है ॥१२॥ इसीलिये
 योगीन्द्र श्री श्री परम का कोई भेद नहीं मानता है । ब्रह्मन् ! हे नारद ।
 वह सबको सदा ब्रह्ममय ही देखता है ॥१०॥ स्वेच्छामय श्रीवृष्ण की सृजन
 करने की इच्छा में वह ईश्वरी मूल प्रवृत्ति सहसा आविर्भूत हो गई थी ॥११॥
 उस परम पुरुष की आज्ञा से भेद से सृष्टि के ऋत में पाँच प्रकार की हो गई
 थी । इसके अनन्तर भक्तों के अनुरोध से अथवा अपने भक्तों के लिये अनुग्रह
 परके शरीर धारण करने वाली हुई थी ॥१२॥ जो गणेश की मत्ता दुर्गा-शिव
 की प्रिय शिवस्वयं वाली-नारायणी विष्णु माया पूर्णब्रह्म स्वरूप वाली
 है ॥१३॥ यह ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा-मुनियों के द्वारा और मनुष्यों के द्वारा
 पूजित हो है, वह सबकी अधिष्ठाता देवी ब्रह्मरूपा सनातनी है ॥१४॥

धर्मसत्यपुण्यकीनियमोमङ्गलदायिनी ।

मुग्धमोक्षहर्षदात्री शोकात्तिदुःखनाशिनी ॥१५॥

गररागतदीनात्तपस्त्रिपरायणा ।

तेजस्वरूपा पद्मा तदधिष्ठातृदेवता ॥१६॥

मवंगक्तिस्वरूपा च शक्तिरोन्मय सन्तनम् ।

मिद्धेश्वरी सिद्धरूपा मिद्धिदा सिद्धिदेवता ॥१७॥

वृद्धिनिद्रा क्षत् विपासा द्याया तन्द्रादया स्मृति ।

जाति क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्तिर्भ्रान्तिश्च चैना ॥१८॥

सृष्टि पुष्टिस्तथा लक्ष्मीवृत्तिमाता तथैव च ।

सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥१९॥

उक्त श्रुतीभूतगुणद्वानिस्वल्पो यथागमम् ।

गुरोऽस्त्यनन्तो जन्तायामपराञ्चनिशामय ॥२०॥

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः ।

सर्वसम्पत्स्वरूपा या सा तदधिष्ठातृदेवता ॥२१॥

वह धर्म-सत्य-पुण्य-कीर्ति-यश और मंगल के देने वाली, सुख, मोक्ष और हर्ष की देने वाली, शोक के दुःख और आर्त्ति का नाश करने वाली है ॥१५॥ वह शरण में आये हुएों दीनों और आर्त्तों के परिचारा करने में परायण थी । वह तेज के स्वरूप वाली और परमा उसके अधिष्ठातृ देवता थी ॥१६॥ वह सदा ईश की सर्व शक्तियों के स्वरूप वाली शक्ति थी—वह सिद्धेश्वरी-सिद्धिरूपा-सिद्धि देने वाली-सिद्धि देने वाली ईश्वरी थी ॥१७॥ बुद्धि-निद्रा-क्षुत्-पिपासा-छाया-तन्द्रा-दया-स्मृति-जाति-क्षान्ति-शान्ति - वान्ति-भ्रान्ति-चेतना-तुष्टि-पुष्टि-लक्ष्मी-वृत्ति तथा माता वह परमात्मा कृष्ण की सर्व शक्ति स्वरूपा है ॥१८-१९॥ श्रुति में कहा हुआ-श्रुतगुण और आगम के अनुसार अति स्वल्प अनन्ता का अनन्त गुण है । और अपरा का श्रवण करो ॥२०॥ परमात्मा की जो पद्मा है वह शुद्ध सत्त्व स्वरूप वाली है । जो सर्व सम्पत् के स्वरूप वाली है वह उसकी अधिष्ठातृ देवता है ॥२१॥

कान्ता दान्तातिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला ।

लोभमोहकामरोपाहङ्कारपरिर्वाजिता ॥२२॥

भक्तानुरक्तपायूश्च सर्वाद्या च पतिव्रता ।

प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्री प्रियंवदा ॥२३॥

सर्वद्यस्यात्मिका सर्वजीवनोपायरूपिणी ।

महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेववती सदा ॥२४॥

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्चराजलक्ष्मीश्च राजसु ।

गृहे च गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणांतथा ॥२५॥

सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा ।

प्रीतिरूपा पुण्यवता प्रभारूपा नृपेषु च ॥२६॥

वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहङ्करा ।

दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकातरा ॥२७॥

चपले चपला भवतसम्पदो रक्षाय च ।

जगज्जीवन्मृतं सर्वं यथा देव्या विना मुने ॥२८॥

कान्ता-हान्ता अर्थात् सुन्दरी और दमनयुक्ता-अत्यन्त शान्ता-सुशीला-सर्वमङ्गला-लौभ, मोह, क्रान्, रोष, और प्रहृद्धार में परिवर्तित रहने वाली-भक्तो पर अनुरक्त रहने वाली भवते अर्थात् में होंने वाली-पतिव्रता-भगवान् के प्राणों के तुल्या-प्रेमयाची और श्रिय धोलने वाली-सर्वं शस्यो के रूप वाली-जय के उपायो के स्वरूपा वाली, महालक्ष्मी यंकुण्ड में गदा ही पति की सेवा में रहने वाली है ॥२२-२४॥ वह स्वर्ग लक्ष्मी तथा राजाघो में राज लक्ष्मी और गृह में गृह लक्ष्मी गृहाश्रमी मनुष्यों के यज्ञ होती है ॥२५॥ समस्त प्राणियों में और द्रव्यों में वह शोभा रूप वाली मनोहरा है । पुण्य वालों में प्रीति के रूप वाली है और नृपों में प्रभा के रूप वाली है ॥२६॥ वैद्या की वह वाणिज्य के स्वम्प वाली है और पापियों की बलह करने वाली है । यह भक्ता की माता और भक्तों के ऊपर अनुग्रह परत के लिह वातर होने वाली है । भक्तों की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिये चपल में यह चपला है । हे मुने ! जिस देवी के बिना यह जगत् वा जीवन् मृत है ॥२७-२८॥

यन्निर्द्वितीया कायता वेदान्ता भवेसम्पत्ता ।

सर्वपज्या सर्ववन्द्या चान्या मत्तोनिशामय ॥२९॥

वायुाद्भविद्याशानाधिदेवता परमात्मन ।

सर्वविद्यारूपा या सा च देवी मरस्वता ॥३०॥

सुबुद्धिः प्रितानेधाप्रतिभाम्मृतिदाः सताम् ।

नानाप्रकारनिदान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा ॥३१॥

व्यानावाबोधस्वरूपा च सर्वसन्देः भङ्गिनी ।

द्वि रक्षारिणी शन्यकारिणी गदितन्पिणी ॥३२॥

भवन्तीतिमन्दान्तकारणरूपिणी ।

विषयज्ञानागन्ना प्रतिविश्वेषु जीविनाम् ॥३३॥

व्याख्यामुद्राकरा शान्ता योगापुम्न रक्षारिणी ।

शुटसस्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहार्तरिणा ॥३४॥

द्वितीया शक्ति कही गई है जो वेदोक्त है और सर्व सम्मत है तथा सबके द्वारा पूज्य एवं सबकी वन्दना करने के योग्य है । श्रव अन्यों का मुझसे श्रवण करो । वाणी-वृद्धि-विद्या और ज्ञान की अधिदेवता परमात्मा की समस्त विद्याओं के स्वरूप वाली जो है वह सरस्वती देवी है ॥२६-३०॥ सत्पुरुषों को सुबुद्धि-कविता-मेधा-प्रतिभा और स्मृति के प्रदान करने वाली है । अनेक प्रकार के सिद्धान्त-भेदार्थ वत्पनाओं के प्रदान करने वाली है ॥११॥ व्याख्या-बोध के स्वरूप वाली-और समस्त सन्देहों को भञ्जन करने वाली-विचारों को करने वाली - ग्रन्थ रचना करने वाली रूपिणी सरस्वती है ॥३२॥ सम्पूर्ण सङ्गीत के सन्धान और तालों के कारण रूपवाली विषय ज्ञान के वाग् रूप वाली प्रत्येक विश्वों में जीव धारियों की यह सरस्वती देवी होती है ॥३३॥ इसका स्वरूप व्याख्या करने की मुद्रा को धारण वाला है—यह परम शान्त स्वरूप वाली है—हाथों में वीणा और पुस्तक को धारण करने वाली है । शुद्धि सत्व के स्वरूप वाली, सुशीला और श्री हरि की प्रिया है ॥३४॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा ।

जपन्ती परमात्मानं श्री कृष्णं रत्नमालया ॥३५॥

तपस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ।

सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥३६॥

देवीतृतीया गदिता श्रीयुक्ता जगदम्त्रिका ।

यथागमं यथाकिञ्चिदपरां संनिबोधमे ॥३७॥

माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानाञ्च छन्दसाम् ।

सन्ध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणाञ्च विचक्षणा ॥३८॥

द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी ।

ब्राह्मतेजोमयी शक्तिस्तर्धाधिष्ठातृदेवता ॥३९॥

यत्पादरजसां पृतं जगत् सर्वञ्च नारद ।

देवी चतुर्था कथिता पञ्चमीं दण्ड्यामि ते ॥४०॥

प्रमप्राणधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी ।

प्राणविकप्रियतमा सर्वाद्यासुन्दरी चरा ॥४१॥

सर्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता ।

वामाद्वाङ्मस्वरूपा च गुणेन तेजसा मया ॥४२॥

हिम - चन्द्रम - मुन्दपुष्प - वुमुद - इन्दु - अम्भोज, के सहस्र युक्त वर्षा वाली और रत्नों की माना से परमत्मा श्रीकृष्ण का जन्म करने वाली - तप के स्वरूप से ममन्वित - तपा के फलों को प्रदान करने वाली - तपस्विनी - सिद्धि और विद्या के स्वरूप वाली और सदा समस्त सिद्धियों का प्रदान करने वाली तीमरी देवी श्री युक्ता जगदम्बिका कही गई है। इन जैसा आगम कहता है उनके अनुसार मयाकिञ्चित् अपरा देवी का ज्ञान मुझसे प्राप्त करो ॥३५-३७॥ चारों वेदों की माता और वेदों के समस्त श्रगो-द्वन्दो-तन्ध्यावन्दना के मन्त्रों और तन्त्रों की परम विदुषी अपरा देवी है ॥३८॥ यह द्विजातियों की जाति के रूप वाली—जप के स्वरूप युक्त-तपस्विनी-ब्राह्म तेज से परिपूर्ण शक्ति हैं और उनकी अधिष्ठात्री देवता हैं। हे नारद ! जिसके चरण की रज से यह समस्त जगत पूत हो गया है वह सावित्री देवी है। अब तक चार प्रकार की देवियों का वर्णन किया गया है इससे प्राये हम पाँचवीं देवी का वर्णन करते हैं ॥३९-४०॥ जो प्रेम प्राण की अधिदेवी हैं और पञ्च प्राणों के स्वरूप वाली है तथा प्राणों में भी अधिक प्रियतमा है और मन्त्र म आद्य श्रुत मुन्दरी है ॥४१॥ यह देवी सब प्रकार के सौभाग्य से ममन्वित मानिनी और गौरव साधित है। गुण और तेज से मेरे द्वारा वाम भद्रं श्रग के स्वरूप वाली है ॥४२॥

परावरा सर्वव्रता परमाद्या मनालनी ।

परनालन्तरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥४३॥

रासक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः ।

राममण्डलमभना राममण्डलमण्डिता ॥४४॥

रासश्वरोरुरसिका रासवासनिवासिनी ।

गोलाकवासिनी देवी गोपीवेशविधायिका ॥४५॥

परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी ।

निर्गुणा च निराकारा नितिस्तात्मस्वरूपिणी ॥४६॥

निरीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहदिग्रहा ।
 वेदानुसारध्यानेन विजाता सा विचक्षराः ॥४७॥
 दृष्टिदृष्टा सहस्रेषु सुरेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः ।
 बह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालङ्कार भूषिता ॥४८॥
 कोटिचन्द्रप्रभामुष्टश्रीयुक्तभक्तविग्रहा ।
 श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदात्रिका सर्वसम्पदाम् ॥४९॥

यह परावरा सत्यव्रत वाली-परमाद्या-सनातनी-परम आनन्द के रूप से युक्त-धन्य-मान्य और पूजित हैं ॥४३॥ रासलीला की जो क्रीड़ा है उसकी अधिष्ठात्री देवी है जोकि परमात्मा कृष्ण की रासलीला होती है । रासमण्डल में रहने वाली और रास मण्डल से मण्डित है । यह रासलीला की स्वामिनी-सुरसिका-रास वास के निवास करने वाली, गोलोक के निवास करने वाली तथा गोपी वेश के करने वाली देवी है । इनका स्वरूप परम आह्लादमय है । यह सन्तोष और हर्ष के रूप वाली हैं । निर्गुण-निराकार-निलिप्त और आत्म स्वरूप वाली है ॥४३-४६॥ यह निरीह-विना अहङ्कार वाली-भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये ही शरीर धारण करने वाली है । वेदों के अनुसार ध्यान करने पर ही विचक्षण पुरुषों के द्वारा यह ज्ञात की गई है अन्य इनका ज्ञान नहीं होता है ॥४७॥ सहस्रों में सुरेन्द्र और मुनि पुङ्गवों के द्वारा दृष्टि से देखी हुई है । अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र का परिधान करने वाली तथा रत्न जटित आभरणां से समलङ्कृत है ॥४८॥ करोड़ों चन्द्रों की प्रभा को मुष्ट करने वाली श्री से समन्वित भक्तों के हितार्थ विग्रह धारण करने वाली हैं और श्रीकृष्ण की परम भक्त एक दासी है तथा समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाली हैं ॥४९॥

अतारो च वाराहे वृकभानुसुता च या ।
 यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुन्धरा ॥५०॥
 ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते ।
 स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥
 तथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने ॥५१॥

द्वाष्टि वर्षमहत्तमिण प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा ।
 यत्पादपद्मनरादृष्टये चात्मगुद्वये ॥
 नच दृष्टञ्च न्यप्लेडपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥५२॥
 तेनव तपसा दृष्टा भूरि वृन्दावने वने ।
 कथिता पञ्चमो देवी मा राधा परिकीर्तिता ॥५३॥
 अक्षरपा कलास्पा वलाशाससमुद्भवा ।
 प्रकृतेः प्रतिविद्येषु देवी च सर्वोपितः ॥५४॥
 परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यश्च कीर्तिताः ।
 या या प्रघाताशरूपा वर्णयामि निनामय ॥५५॥

नारद श्रवतार के समय में जो राजा वृषभानु की मुता थी जिसके चरण बमल के सरसों होने में यह मसरन वसुन्धरा पवित्र हो गई थी ॥५०॥ जो यह ब्रह्मा आदि के द्वारा महृष्ट थी और इस भव्यभारत में सबके द्वारा देखी हुई थी । रत्न के समान परम श्रेष्ठ जियो में यह कार समूत थी और थी वृष्ण के बक्ष स्पल में स्मिथति रखने वाली थी । हे मुने ! यह उस प्रकार की थी जैसे गहरे नदीन मेंग में चचल सोदायिनी होती है ॥५१॥ पहिले ब्रह्मा ने माठ हजार दणं तप तप मिया था कि उसे उनमें क्षरणा समन के नख वा दर्शन हो जाये और वह अपनी आत्म शुद्धि कर लेये किन्तु ब्रह्मा को स्वप्न में भी उसका दर्शन नहीं हो सकता था प्रत्यक्ष होने की तो यान ही क्या है ॥५२॥ उगी ब्रह्मा ने फिर वृन्दावन के वन में तप से दर्शन प्राप्त किया था । यह पारिवी देवी को बता दिया है जोकि राधा—इस नाम से कही गई है ॥५३॥ अग इस वाली-कला के रूप वाली-और कला के अग के अग से समुद्धन प्राप्त करने वाली प्रतिविद्ये में सब पोषित प्रकृति की देवी है । ये पारिवी प्रकार की दणिका परिपूर्ण व कही गई हैं । उनमें जो जो प्रघात अग के रूप वाली है उनका वर्णन में करता हूँ, उनको तुम श्रव श्रवण करो ॥५४-५५॥

प्रघाताशस्वरूपा च गङ्गा भूवनपावनी ।
 विष्णुविग्रहमभूना द्रवरूपा सनातनी ॥५६॥

पापिपापेन्धदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी ।
 दर्शस्पर्शस्नानपानं निर्वाणपददायिनी ॥५७॥
 गोलोकस्थानप्रस्थानसुसोपानस्वरूपिणी ।
 पवित्ररूपा तीर्थानां सरिताञ्च परावरा ॥
 शम्भुमौलिजटामेहमुवतापंक्तिस्वरूपिणी ॥५८॥
 तपः सम्पादनी सद्यो भारते च तपस्विनाम् ।
 शङ्खपद्मक्षोरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥
 निर्मला निरहङ्कारा साध्वी नारायणप्रिया ॥५९॥
 प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी ।
 विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥६०॥
 तपः सङ्कल्पपूजादिसद्यः सम्पादनी मुने ।
 सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥६१॥
 दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्च सद्योनिर्वाणदायिनी ।
 कर्ला कलुपशुष्केधमादाहनायाग्निरूपिणी ॥६२॥
 यत्पादपद्मसंस्पर्शात् सद्यःपूतावसुन्धरा ।
 यत्स्पर्शदर्शवाञ्छन्तितीर्थानि चात्मशुद्धये ॥६३॥
 यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्मातिनिष्फलम् ।
 मोक्षदा य मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा ॥६४॥

इन देवियों में प्रधान अंश के स्वरूप वाली, भवनों को पावन बनाने वाली गंगा हैं । यह विष्णु के विग्रह से उत्पन्न होने वाली सनातनी द्रव के स्वरूप में रहती हैं ॥५६॥ महान् पापियों के पाप रूपी ईंधन के दाह करने के लिये जलते हुये ईंधन के स्वरूप वाली हैं । इसके केवल दर्शन से—स्पर्श करने से—स्नान से और पान करने से यह मोक्षपद को देने वाली है ॥५७॥ यह देवी गोलोक धाम के स्थान को प्रस्थान करने के लिये सोपान (सीढ़ी) के स्वरूप वाली है जिसके द्वारा अत्युच्च श्रीर अतिदूरस्थ वहाँ गोलोक में पहुँच सकता है । यह तीर्थों में पवित्र रूप वाली है और नदियों में परावरा है । यह देवी शम्भु के मस्तक की जटा रूपी मेरु की मोतियों की पंक्ति (लड़ी) के

स्वरूप वाली है ॥५८॥ भारत देश में तपस्वियों के तप को तुरन्त सम्पादन करने वाली है । यह शङ्ख-पद्म और क्षीर के समान श्वेत वर्ण वाली है और घुट सत्व स्वरूप से युक्त है । यह निर्मल-निरद्वन्द्वार-साध्वी और नारायण की प्रिया है ॥५९॥ प्रधान अग्नि के स्वरूप वाली है और परम सती सदा विष्णु के भी है । यह विष्णु के भूषण रूप वाली है और परम सती सदा विष्णु के घरगों में सन्निहित रहा करती है । ६०॥ हे मुने ! यह तप और महत्त्व-पूजा आदि का तुरन्त सम्पादन करने वाली देवी है । यह तुलसी देवी पृथ्वी की सार भूत-अग्नि पवित्र और सदा पुण्य की देने वाली है ॥६१॥ इसके दर्शन तथा स्पर्श करने से ही तुरन्त निर्वाण पद को प्रदान करने वाली है । इस कनियुग में पाप रूपी मुष्क ई धन के दाह करने के लिये अग्नि के रूप वाली है ॥६२॥ जिस तुलसीवा देवी के पाद पद्म के सस्पर्श होने से यह पृथ्वी तुरन्त ही पूत हो गई था । समस्त तीर्थों के समूह जिसके दर्शन और स्पर्श करके आत्म शुद्धि के करने की इच्छा किया करते हैं ॥६३॥ जिस तुलसी देवी के विना विद्वों में समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं । यह मुमुक्षु जनों को मोक्ष प्रदान करने वाली है और जो कामना रखने वाले लोग हैं उनकी समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाली है ॥६४॥

कल्पवृक्षरूपा च भारते विश्वरूपिणी ।
 त्राणाय भारतानान्च पूजाना परदेवता ॥६५॥
 प्रधानाशशस्वरूपा च मनसा कश्यपात्मजा ।
 शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा ॥६६॥
 नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता ।
 नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी ॥६७॥
 नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता ।
 नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी ॥६८॥
 विष्णुभयता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा ।
 तप-स्वरूपा तपसा फलदात्री तपस्विनी ॥६९॥

दिव्यं त्रिलक्षवर्षं नपत्तं यया हरेः ।

तपस्विनीपु पूज्या च तपस्विपु च भारते ॥७०॥

यह भारत में कल्प वृक्ष के स्वरूप वाली है और विश्व रूपिणी है । यह भारत के जनों का त्राण करने के लिये पूजाओं की पर देवता है ॥६५॥ प्रधान अंश के स्वरूप वाली मन से क्रश्यप ऋषि की आत्मजा है । यह गङ्गुर की प्रिया शिष्या है और महान् ज्ञान की विदुषी है ॥६६॥ नागेश्वर अनन्त की भगिनी-नागों द्वारा पूजित नागेश्वरी-नागों की माता-सुन्दरी और नाग वहिनी है ॥६७॥ यह नागेश्वरों गण से समन्वित और नागों के भूषणों से विभूषित है । नागेश्वरों से वन्दित-सिद्धि योगिनी और नागों में वास करने वाली है ॥६८॥ विष्णु की भक्त-विष्णु के रूप वाली और विष्णु की पूजा में परायण रहने वाली है । तप के स्वरूप वाली-तपों के फलों को प्रदान करने वाली और स्वयं तपस्विनी है ॥६९॥ जिसने तीन लाख दिव्य वर्षों तक हरि का तप किया था । भारत में तपस्वी और तपस्विनियों में यह पूजा के योग्य हैं ॥७०॥

सर्पमन्त्राधिदेवी च उदलन्ती ब्रह्मतेजसा ।

ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्माभावनतत्परा ॥७१॥

जरत्कारमुनेः पत्नी कृष्णाशम्भुपतिव्रता ।

आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ॥७२॥

प्रधानांशस्व-पा या देवसेना च नारद ।

मातृकासु पूज्यतमा साचषष्ठी प्रकीर्तिता ॥७३॥

शिशूनांप्रतिविश्वेषु प्रतिपालनकारिणी ।

तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्तिकेयस्यकामिनी ॥७४॥

षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता ।

पुत्रपौत्राप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा ॥७५॥

सुन्दरी युवती रम्या सततं भर्तुरन्तिके ।

स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी ॥७६॥

पूजा द्वादशमासेषु यस्याः षष्ठ्यास्तुसन्ततम् ।

पूजाच सूतिकागारे परषष्ठदिने शिशोः ॥७७॥

सर्पों के मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी है और ब्रह्म तेज में जाज्वल्य मान है। यह परम ब्रह्म के स्वरूप वाली तथा ब्रह्म की भावना करने में परायण रहने वाली है ॥७१॥ यह देवी जरत्कार मुनि की पत्नी वृण्ण गम्भुपति व्रता है। तपस्वियों में परम प्रवर आस्तिक की यह माता है। हे नारद ! जो देव मैना है वह भी प्रधान अशकं स्वरूप वाली है। यह समस्त मातृकाओं में अधिष्ठ पूज्य है और वह पठती देवी कही गई है ॥७२-७३॥ प्रत्येक विम्बों में यह शिशुओं के प्रति पालन करने वाली है। यह अत्यन्त तपस्विनी है—विष्णु की भक्त है और स्वामी कालिकेय की कामिनी है ॥७४॥ यह प्रकृति देवी के छठे भ्रम के स्वरूप वाली है। इसी लिये पठो इन पुत्र नाम के द्वारा कही गई है। यह पुत्रों और पौत्रों के प्रधान करने वाली तथा महा जगतों की धात्री है ॥७५॥ यह अति सुन्दरी-युवती-रम्य और निरन्तर स्वानों के समीप में रहने वाली—शिशुओं के स्थान में परम वृद्ध रूप वाली योगिनी है ॥७६॥ नित पृष्ठी देवी की पूजा बारहमासों में निरन्तर होती है और सूतिकागार में शिशु के जन्म के पष्ठ दिन में होती है ॥७७॥

एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी ।
 शश्वन्त्रियमिता चया निन्त्रा काम्याप्यत परा ॥७८॥
 मातृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी ।
 जले न्यने चान्तरीक्षे शिशूनां स्वप्रगोचरा ॥७९॥
 प्रधानाशस्वरूपा या देवी महलचण्डिका ।
 प्रकृतेर्मुखसभूता सर्वमहलदा सदा ॥८०॥
 सृष्टौ मगलरूपा च सहारे कोपरूपिणी ।
 तेन मगलचण्डी सा पण्डितं परिकीर्त्तिता ॥८१॥
 प्रतिमगलवारेषु प्रतिविस्वेषु पूजिता ।
 पद्मोपचारैर्भक्त्या च योपिद्भिः परिपूजिता ॥८२॥
 पुत्रपौत्रजनंश्च सर्वं यशोमगतदायिनी ।
 शोकनापपापात्तिदुःखदारिद्र्याशिनी ॥८३॥
 परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोपिताम् ।
 स्रष्टाक्षणेन सत्सु मक्ता विश्वं महेश्वरी ॥८४॥

इक्कीसवें दिन में कल्याण हेतु की पूजा होती है। यह निरन्तर नियमित-नित्य और इससे परा काम्यायी है ॥७८॥ यह मातृरूपा-दयारूपा और सतत रक्षण कारिणी है। जल में-स्थल में और अन्तरिक्ष में शिशुओं के स्वप्नों में गोचर होती है ॥७९॥ जो देवी मङ्गल चण्डिका है वह भी प्रधानांश स्वरूप वाली है। यह प्रकृति की मुख से उत्पन्न होने वाली सदा समस्त मङ्गलों के प्रदान करने वाली होती है ॥८०॥ यह सृजन काल में तो मङ्गल रूपा होती है और संहार के समय में कोप रूपिणी हुआ करती है। इसी कारण से वह विद्वानों के द्वारा मङ्गल चण्डी कही गई है ॥८१॥ यह देवी प्रत्येक मङ्गल वारों में प्रत्येक विश्व में पूजी हुई होती है। इसका पूजन पांच उपचारों से स्त्रियों के द्वारा बड़ी भक्ति की भावना से किया जाता है ॥८२॥ यह पुत्र-पौत्र-धन-ऐश्वर्य-यश और मङ्गल के प्रदान करने वाली देवी है। शोक-सन्ताप-पापों की यातना-दुःख और दरिद्रता के नाश करने वाली है ॥८३॥ जब यह पूर्ण परितुष्ट हो जाती है तो समस्त स्त्रियों को सम्पूर्ण वाञ्छा को प्रदान करने वाली होती है। और किसी कारण या व्यतिक्रम से यह रुष्ट हो जाती है तो महेश्वरी विश्व का संहार करने में समर्थ होती है ॥८४॥

प्रधानांशस्वरूपा च कालीकमलोचना ।

दुर्गाललाटसंभूता रणे शुम्भनिशुम्भनिशुम्भयोः ॥८५॥

दुर्गाद्द्विंशस्वरूपा च गुरोर्न तेजसा सभा ।

कोटिसूर्यप्रभामुष्टपुष्टजाज्वल्यविग्रहा ॥८६॥

प्रधाना सर्वशक्तीनां वरा बलवती परा ।

सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी ॥८७॥

कृष्णभक्ताकृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः ।

कृष्णभावनयाश्वत् कृष्णवर्णासनातनी ॥८८॥

संहर्तुं सर्वव्राण्डं शक्तानिश्वासमात्रतः ।

रणादैर्त्यैः समन्तस्याः क्रीड्यालोकरक्षया ॥८९॥

वर्मार्थकाममोक्षाश्चदातुं शक्ता च पूजिता ।

ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥९०॥

कमल के समान नेत्रों वाली काली प्रधानाश से समुत्पन्न होने वाली है । यह काली शुम्भ और निशुम्भ के युद्ध में दुर्गा के ललाट में जन्म ग्रहण करने वाली है ॥८५॥ यह काली दुर्गा के अर्द्धांश रूप वाली है और गुण तथा तेज से उमी के समान है । बरौंड सूयों की प्रभा को भुष्ट करने वाले परम पुष्ट जागृत्यमान और शरीर को धारण करने वाली होती है ॥८६॥ यह ममस्त धन्य शक्तियों में प्रवान-वर और अधिकतम बलवती परा देवी है ॥८७॥ यह काली देवी कृष्ण की भक्त और तेज-गुण और विक्रम में वृष्ण के ही तुल्य होती है । वृष्ण की निरन्तर भावना करने में यह काली देवी भी सनातनी वृष्ण होती है ॥८८॥ यह अपने निःश्वास मात्र से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संहार करने के लिये समर्थ होती है । शीघ्र से तथा लोको को रक्षा के लिये हमका दै-यो के साथ युद्ध होता था । जब यह समर्चिन होती है तो पूर्ण परितुष्ट होकर धर्म-प्रथं-काम और मोक्ष को देने के लिये समर्थ हो जाती है । काली अज्ञा आदि के द्वारा मुनि से-मनुगुण और नरों के द्वारा स्तूयमान होती है ॥८९-९०॥

- । प्रधानाशस्वरूपा च प्रकृतेश्च वमुन्धरा ।
 । आचारभूता सर्वेषां सर्वशम्यप्रनूतिका ॥९१॥
 । रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया ।
 । प्रजादिभिः प्रजेर्गैश्च पूजिता वन्दिता सदा ॥९२॥
 । सर्वोपजीवप्रहृषा च सर्वसम्पद्विधायिनी ।
 । यथा विना जगत् सर्वं निराधार चराचरम् ॥९३॥
 । प्रकृतेश्च कला या यास्ता निवोध मनीश्वर ।
 । यम्य यम्य च या पत्न्यस्ता सर्वा वर्णयामि ते ॥९४॥
 । स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रियु लोकेषु पूजिता ।
 । यथा विना हविर्दत्तं न प्रहीतुं मुरा क्षमा ॥९५॥
 । दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता ।
 । यथा विना विश्वेषु सर्वं कमत्र निष्फलम् ॥९६॥

स्वधा पितृणां पत्नी च मुनिनिर्मुक्तिर्नरैः ।

पूजिता पितृदानञ्च निष्कलञ्च यथाविना ॥१६१॥

स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविदेवेषु पूजिता ।

आदानञ्च प्रदानञ्च निष्कलञ्च यथाविना ॥१६२॥

वसुधैव कुटुम्बकम् देवी भी प्रकृति की प्रधानांश स्वरूप वाली होती है । यह सबकी आधार भूता है और ममस्त प्रकार के वस्तुओं के प्रसन्न करने वाली है ॥१६१॥ वसुधैव कुटुम्बकम् रत्नों की छात्र (दान)—रत्न अपने : व्य में रखने वाली और मद्र प्रकार के रत्नों के खानों का आश्रय वाली है । यह प्रजा आदि से—प्राण के ईशों के द्वारा सर्वत्र पूजित एवं वन्दित होती है ॥१६२॥ यह सबके उपजीविका बन जाती है और ममस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाली है । इसके बिना यह सम्पूर्ण चराचर जगत् निराधार और बिना आश्रय वाला रहता है ॥१६३॥ हे मुनीन्दर ! इस प्रकृति देवी की जो-जो कल्पों है उनको तुम भली भाँति से समझ लो । जिस-जिस की जो पत्नियाँ हैं उन सबका मैं तुम्हारे आगे मद्र वर्णन करता हूँ ॥१६४॥ स्वाहा देवी जो है वह ज्ञान देवी पत्नी है और नीलों नीलों में पूजित होती है जिसके बिना अग्नि में भी हृद हवि को ग्रहण करने देवगण मन्त्र नहीं होते हैं ॥१६५॥ इक्षिणा देवी यह देवी पत्नी है । जोका सर्वत्र समर्पित हुआ जाता है जिसके अभाव में विश्वो में सम्पूर्ण किया हुआ कर्म बिना फल वाला हुआ करता है ॥१६६॥ स्वधा देवी पितृगण की पत्नी है । यह मुनि-तनु और नरों के द्वारा समर्पित होती है जिसके निवृत्त हो समर्पित किया हुआ सम्पूर्ण दान निष्कल हो जाता है अर्थात् इसके बिना ग्रहण ही नहीं किया करते हैं । स्वस्ति देवी वायुदेव की पत्नी है तथा प्रत्येक विघ्न में इनकी पूजा होती है । जिसके बिना आदान अर्थात् दान का ग्रहण करना और प्रदान अर्थात् दान का देना सब फल से शून्य व्यर्थ हो जाता है ॥१६७॥१६८॥

पृथिव्यापतेः पत्नी पूजिता जगतीतने ।

यथा विना परिधीणाः पुनांसो योषितोपि च ॥१६९॥

अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजितावन्दितासदा ।

यथा विना न सन्तुष्टा सर्वलोकाश्च सर्वतः ॥१७०॥

ईशानपत्नी सम्पत्ति पूजिता च सुरैर्नरे ।
 सर्वे लोकादग्निद्राश्च त्रिव्यपु च यया विना ॥१०१॥
 घृति कपिलपत्नी च सर्वे सर्वत्रपूजिता ।
 सर्वतोत्रा श्रयंर्याश्च जगत्सु च ययाविना ॥१०२॥
 यमपत्नीक्षमा साध्वी सुशाना तदपूजिता ।
 समुन्मत्ताश्चरष्टाश्च सर्वलोका ययाविना ॥१०३॥
 क्रीडाधिष्ठातृदवी सा कामपत्नीरति मती ।
 कर्तव्योत्तुर्गौनाश्च सर्वे गाना ययाविना ॥१०४॥
 सत्यपत्नी मती मुक्ति पूजिता जगताप्रिया ।
 ययाविना भवहोत्रो बन्धुना रहिता मदा ॥१०५॥
 मोहनपत्नीदयासाध्वीपूजिता च जगत्प्रिया ।
 सर्वलोकाश्च सर्वत्र निष्कुराश्च ययाविना ॥१०६॥

घृष्टि दवी गण पति की पत्नी है यह जगती तन म पूजित होती है ।
 इसका भूतल म पुमान योग तथा स्थिया कभी परि क्षीण रहते हैं ॥१६६॥
 तुष्टि दवी अनात दय की पत्नी है । य मदा पूजित और सर्वत्र शक्ति होती है ॥१००॥
 है । त्रिसप्त विना सवस्त नाक मना मार सनुष्ट नहीं होते हैं ॥१००॥
 सम्पत्ति ईशान की पत्नी है जो मुर और नरा क द्वारा पूजित होती है जिसके
 प्रभाव म विश्वा म सब लोक दरिद्र हान हैं ॥१०१॥ घृति कपिल देवकी
 पत्नी है जिसका सवन द्वारा तदत्र यजमानन किया जाता है इसका न होना
 पर म सभी योग धर्म गुण हो गया बरना जिस धर्म की जीवन म
 परा साध्यकता है ॥१०२॥ साध्वी यमराज की प्रिय पत्नी है । यह कभी
 साध्वी और सुगील होती है और इसकी सभी साग भव मया करते हैं ।
 सारी सत्ता म जगती तन म हो तो सभी लोग समुत्त और शेष म
 भरे हुए रहा करते हैं ॥१०३॥ सती रति कामदेव की प्राण प्रिया प्रिया
 अनुसंगिनी पत्नी है जो केलि बौद्ध की अधिष्ठात्री दवी होती है । तका
 प्रस्तित्व समार म न गता फिर सभी लोग कामकलि व कौतुक से रहित
 हानर ध्य हो जावे ॥१०४॥ सती मुक्ति सत्य दय की प्रिय पत्नी है जो

स्वधा पितृणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ।

पूजिता पितृदानञ्च निष्फलञ्च ययाविना ॥६७॥

स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ।

आदानञ्च प्रदानञ्च निष्फलञ्च ययाविना ॥६८॥

वसुन्धरा देवी भी प्रकृति की प्रधानांश स्वरूप वाली होती है । यह सबकी आधार भूता है और समस्त प्रकार के शरयों के प्रसव करने वाली है ॥६१॥ वसुन्धरा रत्नों की आकर (खान)—रत्न अपने गव्य में रखने वाली और सब प्रकार के रत्नों के खानों का आश्रय वाली है । यह प्रजा आदि से—प्रजा के ईशों के द्वारा सर्वदा पूजित एवं वन्दित होती है ॥६२॥ यह सबके उपजीव्य रूप वाली है और समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाली है । जिसके बिना यह सम्पूर्ण चराचर जगत् निराधार और बिना आश्रय वाला रहता है ॥६३॥ हे मुनीश्वर ! इम प्रकृति देवी की जो-जो कलायें हैं उनको तुम भली भाँति से समझ लो । जिम-जिस की जो पत्नियाँ हैं उन सबका मैं तुम्हारे आगे अब वर्णन करता हूँ ॥६४॥ स्वाहा देवी जो है वह आग्नि देवकी पत्नी है और तीनों लोकों में पूजित होती है जिसके बिना अग्नि में दी हुई हवि को ग्रहण करने देवगण समर्थ नहीं होते हैं ॥६५॥ दक्षिणा देवी यज्ञ देवकी पत्नी है । दोषा सर्वत्र गर्भवित हुश्रा करती है जिसके अभाव में विश्वों में सम्पूर्ण किया हुआ कर्म बिना फल वाला हुआ करता है ॥६६॥ स्वधा देवी पितृगण की पत्नी है । यह मुनि-मनु और नरों के द्वारा समर्पित होती है जिसके पितृगण को समर्पित किया हुआ सम्पूर्ण दान निष्फल हो जाता है अर्थात् इसके बिना ग्रहण ही नहीं किया करते हैं । स्वस्ति देवी वायुदेव की पत्नी है तथा प्रत्येक विश्व में इसकी पूजा होती है । जिसके बिना आदान अर्थात् दान का ग्रहण करना और प्रदान अर्थात् दान का देना सब फल से शून्य ध्यर्थ हो जाता है ॥६७॥६८॥

पुष्टिर्लापतेः पत्नी पूजिता जगतीतले ।

यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोपि च ॥६९॥

अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजितावन्दितासदा ।

यया विना न सन्तुष्टा सर्वलोकाश्च सर्वतः ॥१००॥

ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः ।
 सर्वे लोकादग्निश्च विद्वेषु च यथा विना ॥१०१॥
 धृतिः कपिलपत्नी च सर्वे सर्वत्रपूजिता ।
 सर्वैर्लोका अर्धैर्भ्याश्च जगत्सु च यथाविना ॥१०२॥
 यमपत्नीयमा माध्वी सुगीता सर्वपूजिता ।
 समुत्पत्ताश्चरुष्टाश्च सर्वैर्लोका यथाविना ॥१०३॥
 क्रीटाधिष्ठानदेवी सा कामपत्नीरति सती ।
 कैलिकीर्तुरीनारच सर्वैर्लोका यथाविना ॥१०४॥
 सन्यपत्नी मती भूमिः पूजिता जगताप्रिया ।
 यथाविना भवेत्तोको बन्धुना रहित्वा मदा ॥१०५॥
 मोहपत्नीदयासाध्वीपूजिता च जगत्प्रिया ।
 सर्वैर्लोकाश्च सर्वत्र निःशुभान्च यथाविना ॥१०६॥

पुष्टि देवी गण पति की पत्नी है यह जगती तल में पूजित हानी है ।
 इसके भूतल में पुमान लोग तथा स्थिया सभी परी वीण रहते हैं ॥१०१॥
 पुष्टि देवी अन्त देव की पत्नी है । यह मदा पूजित और सर्वत्र वसित होती
 है । जिसके विना सपत्न लोक सभी घर मनुष्य नहीं होते हैं ॥१००॥
 सम्पत्ति ईशान की पत्नी है जो मुर और नरों के द्वारा पूजित होती है जिसके
 अभय में विद्वेषों में सब लोक विरुद्ध हाते हैं ॥१०१॥ धृति कपिल देवकी
 पत्नी है जिसका सर्वत्र द्वारा सर्वत्र यजनायन किया जाता है । इसके न होने
 पर जगती में सभी लोग घब घब हो जाया करते हैं जिस श्रेय की जीवन में
 परम प्रादक्षकता है ॥१०२॥ माध्वी यमराज की प्रिय पत्नी है । यह यती
 लक्ष्मी और सुगीत होती है और इनकी सभी लोग अचना अचना करते हैं ।
 इसी मता पति जगती तल में ही तो सभी लोग समुत्पत्त और रोप म
 भरे हुए रहा करते हैं ॥१०३॥ मती रति कामदेव की प्राण प्रिया धीनय
 अनुत्पत्ती पत्नी है जो कैलि कीर की अधिष्ठात्री देवी होती है । जगता
 अस्तित्व मकर में न हो तो फिर सभी लोग कामकलि के शत्रु से रहित
 होकर ध्वंस हो जावे ॥१०५॥ सती मुक्ति सत्य देव की प्रिय पत्नी है जो

जगतों की अत्यन्त प्रिय एवं परम पूजित होती है इसके न होने पर लोक सह बन्धुता के भाव से रहित हो जाता है ॥१०५॥ दया मोह महाराज की अति वल्लभा पत्नी है । यह भी परम साधु वृत्ति वाली संसार की प्यारी और समर्पित है । इसके बिना तो समस्त लोक बहुत ही सर्वत्र निष्ठुर और क्रूर हो जाया करते हैं । इसकी संसार में महती आवश्यकता है ॥१०६॥

पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता ।
 यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ॥१०७॥
 मुकर्मपत्नी कीर्तिश्चधन्यामान्या च पूजिता ।
 ययाविना जगत् सर्वं यशोहीनंमृतंयथा ॥१०८॥
 क्रिया उद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसङ्गता ।
 ययाविना जगत् सर्वमुच्छन्नमिव नारद ॥१०९॥
 अधर्मपत्नी मिथ्यासा सर्वधूर्त्तेश्चपूजिता ।
 ययाविनाजगत् सर्वमुच्छन्नविधिनिमित्तम् ॥११०॥
 सत्ये अदशेनाया च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी ।
 अर्द्धविवरूपा च द्वापरं संवृता हि या ॥१११॥
 कलौमहाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिकारणात् ।
 कपटेन समं भ्राता अमत्येव गृहे गृहे ॥११२॥

प्रतिष्ठा पुण्य देव की प्राण प्रिया पत्नी है । यह भी पुण्य रूप वाली और पूजित होती है । हे मुने ! इसके अभाव में तो यह सारा जगत जीवित रहता हुआ भी मत् के समान ही होता है ॥१०७॥ कीर्ति देवी सुकर्म की पत्नी है । यह परम धन्य-भाग्य और अत्यन्त पूजित होती है । इसके बिना सम्पूर्ण जगती तल यश से हीन एक मृत की भाँति ही रहना करता है । जिसकी संभार में कीर्ति ही कुछ नहीं है उसका जीवन कुछ भी नहीं । उससे मृत हो जाना ही अच्छा है ॥१०८॥ क्रिया उद्योग की प्राण वल्लभा है । यह भी पूजित और सर्वसङ्गता होती है । हे नारद ! इसके अभाव में तो यह सम्पूर्ण जगत उच्छिन्न की भाँति ही रहा करता है । जब कोई क्रिया ही नहीं होती है तो फिर कुछ भी नहीं हो सकता है । सभी कुछ क्रिया के द्वारा ही होता है ॥१०९॥

मिथ्या अथर्व की पत्नी है। यह सभी धूर्त मानवों के द्वारा समाहन
 णत्र पूजित होती है। इसके बिना सारा विधि के द्वारा विनिमित्त भी
 समुच्छिन्न ना रहना है ॥११०॥ यह मिथ्या देवी सत्य युग में तो दर्शन
 गति थी अर्थात् कही भी इमका दर्शन नहीं होता था। प्रता युग में यह
 देवी प्रकृत ही मूत्रन रूप में कही-कही दिखलाई देने लगी थी। द्वापर युग
 में अर्धब्रह्मवती वाली अर्थात् विकलाङ्ग रूप वाली सृता होकर दिखाई
 दिया करती थी। इन कतिपय में तो इसका रूप महान् प्रगल्भ हो गया है
 और सर्वत्र व्यापक ही है। यह अपने भाई कपट को साथ लेकर घर-घर में
 पूज स्वच्छन्दता पूर्वक भ्रमण करती है ॥१११-११२॥

शान्तिर्लज्जा च भाय्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ।
 यान्या विना जगत् सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥११३॥
 जानस्य तिस्रो भाय्याश्च बुद्धिर्मथा स्मृतिस्तथा ।
 याभिर्विना जगत् सर्वं मूढ भूतसम सदा ॥११४॥
 मूर्तिचचवर्मपत्नी सा वान्निरूपा मनोहरा ।
 परमात्मा च विश्वोत्रानिराधारगयाविना ॥११५॥
 नर्तनशोभात्पा च लक्ष्मामूर्तिमतीसती ।
 श्रोत्रामूर्तिरूपा च मान्या घन्या च पूजिता ॥११६॥
 कालगिरद्वपत्नीचनिद्रासासिद्धयोगिनाम् ।
 सर्वलोका ममाच्छ्रिता मातायोगेनरात्रिषु ॥११७॥
 कान्त्य तिस्रो भाय्याश्च मन्थ्या रात्रिदिनानि च ।
 याभिर्विना विनात्रा च सरत्रा कर्तुं न शक्यते ॥११८॥
 धनुर्पिपासेलाभनाय्येधन्येमान्येचपूजिते ।
 यान्याभ्याम्पजगन् क्षोभयुवतचिन्तितमेवच ॥११९॥
 प्रभाचशहिकाचंर द्व भाय्यतेजसस्तथा ।
 यान्याभ्याम्पजगन्मृष्टु विधाता च न हीश्वर ॥१२०॥
 कालकन्येमृत्युजरप्रज्वरस्य प्रिये प्रिये ।
 यान्याभ्याम्पजगन् समुच्छ्रितं विधात्रानिमित्तेविधौ ॥१२१॥

सुशील की दो पत्नियाँ हैं जिनका शुभ नाम शान्ति और लज्जा है । यह दोनों ही पूजित होती हैं । हे नारद ! इन दोनों के अभाव में यह समस्त जगतीतल उन्मत्त की भाँति हो जाता है ॥११३॥ ज्ञान की तीन भार्या हैं जिनका नाम बुद्धि-मेधा और स्मृद्धि है । इन तीनों के बिना यह जगत् सदा महामूढ़ और मृत के तुल्य ही हो जाता है ॥११४॥ मूर्ति धर्म की पत्नी है, वह कान्ति रूप वाली परम मनोहर है जिसके बिना परमात्मा और ये विश्वों के समूह सब निरावार ही हो जाते हैं ॥११५॥ मूर्तिमती सतीलक्ष्मी सर्वत्र शोभा के रूप वाली है, यह श्री रूपा और मूर्तिरूपा महा मान्य एवं परम धन्य और पूजित है ॥११६॥ निद्रा कालाग्नि नाम वाले रुद्रदेव की पत्नी है जोकि सिद्धयोगियों को होती है । माया योग से समस्त लोक रात्रियों में समाच्छन्न होते हैं ॥११७॥ काल की तीन भार्या हैं जिनके नाम सन्ध्या-रात्रि और दिन हैं जिनके बिना विधाता के द्वारा सन्ध्या नहीं की जा सकती है ॥११८॥ क्षुत् (भूख) और पिपास (प्यास) ये दोनों लोभ महाराज की पत्नियाँ हैं । ये दोनों धन्य और मान्य तथा पूजित हैं । इनके द्वारा यह जगत् व्याप्त है—क्षोभ से युक्त है और चिन्तित भी रहता है ॥११९॥ तेज की भी प्रभा और दाहिका ये दो पत्नियाँ हैं, इन दोनों के अभाव में विधाता भी इस जगत् का सृजन करने में समर्थ नहीं होता है ॥१२०॥ काल कन्या और मृत्यु जटा ये प्रज्वर की परम प्रिय पत्नियाँ हैं जिनसे यह जगत् समुच्छिन्न हो रहा है जोकि विधाता के द्वारा निमित्त विधि में है ॥१२१॥

निद्रा कन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये ।

याभ्यां व्याप्तं जगत् सर्वं विधिपुत्रविधेर्विधौ ॥१२२॥

वैराग्यस्य च द्व भार्य्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ।

याभ्यां शश्वत् जगत सर्वं जीवन्मुक्तिमिदं मुने ॥१२३॥

अदितिर्देवमाता च सुरभिश्च गवां प्रसूः ।

दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः ॥१२४॥

उपयुक्ताः मृष्टिविधौ एताश्च प्रकृते कला ।
 कलाश्चान्या सन्ति बह्वृषस्तासु काश्चिन्नवोद्यमे ॥१२५॥
 रोहिणीचन्द्रपत्नी च सजा मूर्ध्न्यस्य कामिनी ।
 शतरूपा मनोभार्या शचीन्द्रस्य च रोहिणी ॥१२६॥

निद्रा कन्या शरदा और श्रव्या प्रीति ये दोनों सुख की प्रियायें हैं जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है जोकि विधिपुत्र विधाता की विधि में है ॥१२२॥ वैराग्य की भी दो भार्यायें हैं जिनके नाम श्रद्धा और भक्ति हैं। ये दोनों जगत् में परम पूजित हैं। हे मुने! इन दोनों के द्वारा यह सम्पूर्ण जगती तल जीवनन्मुक्त होता है ॥१२३॥ अदिति देवगण की माता है और गौश्री की जननी सुरभि है। दिति नाम धारिणी देवों की माता है तथा कद्रु और विनितादनु हैं ॥१२४॥ इस सृष्टि की विधि में ये सब प्रकृति की कलायें उपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त भी अन्य प्रकृति की बहुत सी कन्यायें हैं, उनको भी मुझसे तुम पूजा करो ॥१२५॥ रोहिणीचन्द्र देव की पत्नी है और सजा मूर्ध्न्यदेव की कामिनी है। शतरूपा मनु की भार्या है तथा इन्द्र की रोहिणी शची हैं ॥१२६॥

ताराबृहस्पतेर्भार्या वशिष्ठस्याप्यरुण्यती ।
 अहल्या गोनमस्त्री साप्यनस्यात्रिकामिनी ॥१२७॥
 देवहती कदमन्य प्रसूतिदंशकामिनी ।
 पितृणा मानसो कन्या मेनका साम्बिकाप्रसू ॥१२८॥
 लोपामुद्रा तथाहूती कुचेरकामिनी तथा ।
 बरुणानो यमस्त्री चबलेविन्ध्यावलीनि च ॥१२९॥
 कुन्तीचदमयन्ती च यशोदादेवकीसती ।
 गान्धारीद्रोपदीर्गन्या सावित्रीसत्यवत्प्रिया ॥१३०॥
 वृषभानुप्रियासाध्वी राधा माता कलावती ।
 मन्दोदरी च कौशल्या मुमद्राकंठभीतया ॥१३१॥
 रेवती सत्यभामा च कालिन्दी लक्ष्मणा तथा ।
 जाम्बती नागजिती मिश्रविन्दा नधाररा ॥१३२॥

लक्ष्मणारुक्मिणीसीतास्वयंलक्ष्मीःप्रकीर्तिता ।
कलायोजनगन्धाचव्यासमातामहासती ॥१३३॥

सुर गुरु बृहस्पति की भार्या का नाम तारा देवी है । धमिष्ठ की पत्नी शरुन्वती है । गीतम ऋषि की पत्नी का नाम अहल्या है । अत्रि की पत्नी अनुसूया नाम वाली है ॥१२७॥ देवहूति नाम वाली कर्दम की पत्नी है तथा दक्ष की पत्नी प्रसूति नाम धारिणी है, पितृगण की मानसी कन्या मेनका अम्बिका प्रसू है ॥१२८॥ लोपामुद्रा तथा आहूति कुवेर की कामिनी है । यम की वरुणानी है और गंगा वली की पत्नी विन्ध्यावली है ॥१२९॥ कुन्ती-दमयन्ती - यशोदा-सती देवकी-गान्धारी-द्रौपदी - शैव्या-सत्यवान की प्रिया सावित्री-चृपभानु की साध्वी प्रिया कलावती जो राधा की माता हैं- मन्दोदरी - कौशल्या - सुभद्रा - कौटभी-रेवती-सत्यभामा-कालिन्दी-लक्ष्मणा-जाम्बवती-नाग्नजिती तथा अपरामित्रविन्दा-लक्ष्मणा-सुवितणी-सीता और स्वयं लक्ष्मी - योजनगन्धा-और महासती - व्यास की माता-ये सब कलायें प्रकीर्तित की गई हैं ॥१३०-१३३॥

{ वाराणपुरी तथोपाच चित्ररेखाच तत्सखी ।
प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती ॥१३४॥
रेणुकाच भृगोर्माता हलिमाताच रोहिणी ।
एकानंशाचदुर्गासा श्रीकृष्णरुग्निनी सती ॥१३५॥
बह्वचः सन्ति कलाश्चैव प्रकृतेरेव भारते ।
यायाश्च ग्रावदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रकृतेःकला ॥१३६॥
कलांगांशमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योपितः ।
योपितामपमानेन प्रकृतेश्चपराभवः ॥१३७॥
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती ।
प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ॥१३८॥
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ।
पूजितायेन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥१३९॥

सर्वा प्रकृतिसम्भूता उत्तमाधममध्यमा ।
सत्त्वाशाश्चोत्तमा ज्ञेया सुशीलाश्च पतिव्रता ॥१४०॥

वाण की पुत्री उषा, उसकी सखी चित्ररेखा-प्रभावती-भानुमती-सती माया बती-भृगु की की माता रेणुका और हनघर की जननी रोहिणी और एकानशा की दुर्गा सती श्रीकृष्ण की भगिनी हैं । इस प्रकार से भारत में प्रकृति देवी की बहुत-सी कलाएँ हैं । जो-जो गाव देवियाँ हैं वे सब प्रकृति की कलाएँ भारत में हैं ॥१३४-१३६॥ इस तरह प्रति विश्वों में कला के अशाश से समद्भूत योपित हैं । इन योपितों का अपमान करने से प्रकृतिदेवी का ही पराभव होता है । १३७। जिसने सती पति और पुत्र वाली आह्वानी की पूजा की है, उसने वस्त्र-मलङ्कार और चन्दन से प्रकृति देवी की पूजा करली है । १३८। जिम किसी ने आठ वष की अवस्था वाली कुमारी का वस्त्रालङ्कार और चन्दन के द्वारा अर्चन किया है जोकि कुमारी किसी विप्र की हो उसमें निश्चय ही प्रकृति देवी की पूजा करली है ॥१३९॥ यह सब प्रकृति से समुत्पन्न होने वाली है और उत्तम-मध्यम तथा अधम तीन प्रकार की श्रेणियों वाली है । जो प्रकृति के सर्व के अंश से समुत्पन्न हैं वे उत्तम हैं । ये सुशील और पतिव्रता ज्ञान के योग्य होती हैं ॥१४०॥

मध्यमा रजसश्चाशास्ताश्च भोग्या प्रकीर्तिता ।
मुत्तसम्भोगवत्यश्च स्वकार्यतत्परा सदा ॥१४१॥
अधमास्तमसश्चाशा अज्ञातकुलसम्भवा ।
दुर्मुखा कुलटा घूर्ता स्वन्नत्रा कलहप्रिया ॥१४२॥
पृथिव्या कुलटायाश्च स्वर्गो चाप्सरसाङ्गणा ।
प्रवृत्तेस्तमसश्चाशा पुश्चल्य परिकीर्तिताः ॥१४३॥
एव निगदित सर्वं प्रवृत्ते परिकीर्तनम् ।
ता सर्वा पूजिता पृथ्व्या पुण्यक्षेत्रेचभारते ॥१४४॥
पूजिता सुरधेनादौ दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ।
द्वितीये रामच द्रेण रावणस्य वधार्थिना ॥१४५॥

तत्पश्चात् जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ।

जातादौ दक्षपत्न्याञ्च निहन्तुं दैत्यदानवान् ॥१४६॥

जो मध्यम श्रेणी की हैं वे रजके अंश से उत्पन्न होने वाली प्रकृति की कलाएँ हैं । ये भोगने के योग्य कही गई हैं । ये सब सुख से सम्भोग करने वाली हैं और सर्वदा अपने कार्य में तत्पर रहने वाली होती हैं ॥१४१॥ जो अघम श्रेणी की प्रकृति की कला हैं, वे उसके तम के अंश से समुत्पन्न होने वाली होती हैं । इनका कुल और जन्म अज्ञात होता है । ये दुर्मुखा-कुलटा-घूर्त्ता-कलह के साथ प्यार करने वाली और स्वतन्त्र होती हैं ॥१४२॥ पृथिवी में कुलटा और स्वर्ग में अप्सराओं का समूह ये सब प्रकृति देवी के तम के अंश से समुद्भूत होने वाली हैं जो प्रायः पुंश्चली कही गई हैं । इस प्रकार से सम्पूर्ण प्रकृतिदेवी का परिकीर्तन किया गया है । ये सभी पुण्य क्षेत्र भारत में पृथ्वी में पूजित होती हैं ॥१४३-१४४॥ आदि में सुर्य के द्वारा दुर्गा के नाश करने वाली दुर्गा पूजी गई थी । दूसरे में रावण के वध करने की इच्छा वाले श्री रामचन्द्र के द्वारा इसकी पूजा की गई थी ॥१४५॥ इसके पश्चात् यह समस्त जगत् की माता फिर तीनों लोकों में पूजित हुई है । आदि में यह दैत्य और दानवों का निहान करने के लिये प्रजापति दक्ष की पत्नी में समुत्पन्न हुई थी ॥१४६॥

ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुंश्च निन्दया ।

यज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥१४७॥

गरीशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः ।

वभूवतुस्तौ तनयो पश्चात्तस्याश्चनारदः ॥१४८॥

लक्ष्मीमङ्गलभूपेन प्रथमे परिपूजिता ।

त्रिषुलोकेषु तत्पश्चात् देवतामुनिमानवैः ॥१४९॥

सावित्री चापि प्रथमे भक्त्या च परिपूजिता ।

तत्पश्चात् त्रिषुलोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥१५०॥

आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता ।

तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥१५१॥

प्रथमे पूजिता राधा गोलेके रासमण्डले ।

पौर्णमास्या कार्तिकस्य कृष्णेनपरमात्मना ॥१५२॥

गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः ।

-----ने ॥१५३॥

।

पुष्पधूपादिभिर्भवत्या पूजिता वन्दिता सदा ॥१५४॥

इसके अनन्तर फिर हमने अपने देह का त्याग कर दिया था जोकि अपने स्वामी की निन्दा के कारण से दक्ष के यज्ञ में ही किया था । फिर हमने त्रिमयान व यही उमवी पत्नी में अपना जन्म ग्रहण किया था और पशुपति शिव की अपना पति बनाया था ॥१४७॥ और गणेश स्वयं कृष्ण थे और स्कन्द विष्णु की बच्चा से जन्म लेने वाले थे । य दोनों ने नारद । पीछे उसके पुत्र हुये थे ॥१४८॥ लक्ष्मी का सबसे प्रथम म मङ्गल । भूप ने पूजन किया था । इसके अनन्तर फिर तीनों लोकों में देव-मुनि और मानवों के द्वारा लक्ष्मी का अर्चन किया जाता है ॥१४९॥ सावित्री भी प्रथम में भक्ति भाव के साथ पूजा गई थी । इसके अनन्तर देव-मुनि-मानवों के द्वारा तीनों लोकों में इसका पूजन किया जाता है ॥१५०॥ आदि में सरस्वती देवी की अर्चना ब्रह्मा के द्वारा की गई थी । इसके पश्चात् फिर सभी देव मुनि और मानवों के द्वारा सरस्वती देवी की तीनों भुवनों में पूजा की जाती है । १५१॥ प्रथम काल में श्री राधा का अर्चन गोलीक घास के रास मण्डल में परमात्मा श्रीकृष्ण के द्वारा कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन किया गया था । इसके पश्चात् गोपिका-गोप-बालिका बालक-गोपी व गण गुरों का समुदाय तथा हरि की माया में ब्रह्मा आदि देव-मुनि मण्डल और मनुष्य के द्वारा पुष्प धूप आदि पूजन के उपचारा से भक्ति भाव पूर्वक श्री राधा सर्वदा पूजित एवं वन्दित हुई है ॥१५२-१५४॥

पृथिव्या पथमे देवी सयज्ञेन च पूजिता ।

वद्वरेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥१५५॥

त्रिषु लोकेषु तत्पद्मादाज्ञा परमात्मनः ।

पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः ॥१५६॥

कला या याः सुसंभूता पूजितास्ताश्च भारते ।

पूजिताग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥१५७॥

एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् ।

दयागमं लक्षणञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१५८॥

पृथ्वी में यह देवी प्रथम ज्ञान में सृज्यज्ञ के द्वारा पूजित हुई है और ब्रह्मर के उद्देश से पुण्य क्षेत्र भारत में पूजा की गई है ॥१५५॥ इसके अनन्तर तीनों लोकों में परमात्मा की आज्ञा से मुनिगण और देवों के द्वारा भक्तिभाव पूर्वक इसकी पूजा की गई । इसके अर्चन के लिये पुष्प धूप आदि सभी उपचार काम में लिये गये थे ॥१५६॥ जो-जो भी प्रकृति की कलाएँ समुत्पन्न हुई हैं वे सभी भारत में पूजित हुई हैं । हे मुने ! नगर और ग्राम में ग्राम देवियाँ पूजित हुई हैं ॥१५७॥ इस प्रकार से भिने यह सम्पूर्ण प्रकृति का चरित विस्तार पूर्वक तुमको बता दिया है, जोकि परम शुभ है । जैसा कि आगम में कहा गया है इन सब का लक्षण और स्वरूप सभी वर्णित कर दिया गया है । अब आगे तुम मुझसे क्या श्रवण करने की इच्छा रखते हो ? ॥१५८॥

१३-देवदेव्युत्पत्ति ।

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं विभो !

विवोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि ॥१॥

सृष्टिराद्या सृष्टिविधौ कथमाविवंभूव ह ।

कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदांवर ॥२॥

भूता या याश्च कलया तया त्रिगुणया भवे ।

व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥३॥

तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम् ।
 स्तोत्रं कवचमर्चय्यं शीष्यवर्णय मङ्गलम् ॥४॥
 नित्यात्मा च नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा ।
 विश्वेषां गोकुलं नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥५॥
 तदेकदेशो वंकुण्ठो लम्बभाग स नित्यकः ।
 यथैव प्रकृतिनित्या ब्रह्मलीला सनातनी ॥६॥
 यथाग्नी दाहिका चन्द्र पद्मे शोभाप्रधारवो ।
 शश्वद्युक्ता नभिन्नासातयाप्रकृतिरात्मनि ॥७॥

इस अध्याय में देव-देवी की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है । नारद जी ने कहा—हे विभी ! सद्योप से मैंने देवियों का शुभ चरित सम्पूर्ण गुना लिया है । क्यास देव तोष के विद्योप बोधन के लिये जो कहा है श्व उसे कहने के योग्य होते हैं ॥१॥ इस सृष्टि की विधि में सब से प्रथम होने वाली आद्या सृष्टि कैसे हुई थी । हे वेदो के ज्ञानाप्तो मे परम ध्येष्ठ । वह सृष्टि पाँच प्रकार की फिर कर्ने हो गई थी—यह सब वर्णन करने की कृपा कीजिये । इस मसार में तीन युगा वाली उस कला के द्वारा जो-जो हुई थी यह सब कहिये । क्यास देव ने उनका चरित सब वर्णन किया है । मैं श्व उसे श्रवण करना चाहता हूँ ॥२-३॥ उन सबका जन्मानुकथन-ध्यान और परम समर्चनकी विधि स्तोत्र-कवच-एदव्यं और मङ्गल शीष्यं सब का वर्णन करने का अनुग्रह करियेगा ॥४॥ श्री नारायण ने कहा— देखो—यह आत्मा नित्य है, आकाश नित्य है, काल नित्य है और ये दिशायें भी नित्य हैं । विश्वो मे गोलोक याम नित्य है ॥५॥ उसका एक भाग लम्बभाग वाला वंकुण्ठ नित्य है । उसी भाँति ब्रह्म मे तीन हो जाने वाली यह सनातनी प्रकृति भी नित्य है ॥६॥ जिस प्रकार से अग्नि मे दग्ध कर देने वाली दाहिका शक्ति है तथा चन्द्र-रश्मि और पृथ में प्रज्ञा और शोभा है जोकि सदावत् युक्त ही रहती है, उसी भाँति से उमी के समान यह प्रकृति है जोकि आत्मा में रहती है ॥७॥

विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुं मक्षमः ।
 विनामृदा कुमालोहि घटं कर्तुं न हीश्वरः ॥८॥
 न हि क्षमस्तथा ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं तथा विना ।
 सर्वशक्तिस्वह्यासातयाचशक्तिमान्सदा ॥९॥
 ऐश्वर्य्यं वचनः शक च तिः पराक्रमवाचकः ।
 तत्स्वरूपा तयोर्दात्रीयासाशक्तिः प्रकीर्तिता ॥१०॥
 समृद्धिवृद्धिसम्पत्तियशसां वचनो भगः ।
 तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥११॥
 तथा युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ।
 स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः ॥१२॥
 तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा ।
 वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥१३॥
 अष्टं सर्वषट्कारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ।
 सर्वदं सर्वरूपान्तमहर्षं सर्वपोषकम् ॥१४॥

स्वर्ण के अभाव में कितना ही निर्माण की कला में कुशल क्यों
 हों न्वर्णकार उसका कुण्डल बनाने में असमर्थ रहता है और कुम्हार मिट्टी
 के विना घट की रचना करने के कार्य में सर्वदा असमर्थ होता है। इसी
 तरह से उस प्रकृति के विना ब्रह्म इस जगतीतल की रचना करने के कार्य
 में सामर्थ्यहीन होता है। वह प्रकृति देवी सम्पूर्ण प्रकार की दक्षिणों से
 सम्पन्न स्वरूप वाली है और उसी के साथ सर्वदा ब्रह्म परमात्मा अवि-
 चान होता है ॥८-९॥ “शक्” यह वर्ण ऐश्वर्य का वाचक होता है और
 ‘ति’—यह वर्णपराक्रम के अर्थ को प्रकट करने वाला है। इन दोनों ऐश्वर्य
 और पराक्रम के स्वरूप वाली तथा इन दोनों को प्रदान करने वाली जो
 है वही ‘शक्ति’—इस शुभ नाम से कही गई है ॥१०॥ समृद्धि-वृद्धि-सम्पत्ति
 और यश इन चार अर्थों का प्रकट करने वाला ‘भग’ यह शब्द होता है।
 इससे युक्त शक्ति भगवती है और वह स्वयं सदा भग रूप वाली है ॥११॥

उक्त से ममन्वित रहने वाले सदात्मा भगवान् इस शुभ एव सुन्दर नाम से कहे जाया करते हैं । वह स्वेच्छामय श्रीबृष्ण हैं जो सुन्दर आकार में युक्त हैं और बिना आकार वाले निराकार भी हैं ॥१२॥ जो तेज के स्वरूप वाले हैं वह निराकार हैं अर्थात् तेजमय तो हैं किन्तु उनके कोई अन्य पुरुष देह के भाँति पद्म-प्रत्यङ्ग नहीं होते हैं । ऐसे निराकार का योगी जन सर्वदा ध्यान विद्या करते हैं । वे लोग उसी को परब्रह्म-परमात्मा और ईश्वर कहा करते हैं । वह अदृष्ट-सर्वपटुकार-सर्वज्ञ और सभी का कारण है, सब कुछ का प्रदान करने वाला है—स्पर्शरहित है और इस जगत् के समस्त पदार्थों का ही रूप वाला है अर्थात् यह चराचरमय समस्त जगत् ही उसका ही एक रूप है । सब का पोषण करने वाला है ॥१३-१४॥

ब्रह्मवास्त न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः ।

वदन्तीति कस्य तेजस्नेचतेजस्विनविना ॥१५॥

तेजोमण्डलमध्यस्य ब्रह्मतेजस्विन परम् ।

स्वेच्छामय सर्वरूप सर्वकारणकारणम् ॥१६॥

अतीवसुन्दर रम्य विभ्रत सुमनोहरम् ।

किमोरखपस आन्त सर्वकान्त परात्परम् ॥१७॥

नवीननोरदाभाम गर्भकश्यामसुन्दरम् ।

शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ॥१८॥

भुक्तामारविनिन्दकदन्तपङ्कितमनोहरम् ।

मयूरपुच्छचूडश्च मालतीमाल्यमण्डितम् ॥१९॥

सुनम सस्मितं शश्वद्भक्तानुग्रहवातरम् ।

उज्वलदग्निविशुद्धैवपीतांशुकसुशोभितम् ॥२०॥

द्विभुजं मुरलीहस्त रत्नमूषणभूषितम् ।

सर्वकारश्च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विन्दुम् ॥२१॥

सर्वेश्वर्यप्रदं सर्व स्वतन्त्रं सर्वमंगलम् ।

परिपूर्णतम सिद्ध सिद्धिदं सिद्धिकारणम् ॥२२॥

वैष्णव गण सूक्ष्म दर्शी उसके परमभक्त उसका ऐसा स्वरूप नहीं माना करते हैं। उनका कथन सपुक्तिक है कि जो निराकारवादी परब्रह्म परमात्मा को आकार से रहित तेजोमय मानते हैं तो यह भी उन्हें बताना चाहिये कि वह किसी तेजस्वी महापुरुष के बिना यह किसका तेज है क्योंकि तेज ही है तो उसका आधार कोई तेजस्वी भी अवश्य ही होना चाहिये। गुण तो गुणी के बिना होता ही नहीं है ॥१५॥ इनका कथन इस प्रकार से है कि माना वह एक तेज का मण्डल है किन्तु उस मण्डल के मध्य में स्थित परब्रह्म जोकि तेजस्वी है वह स्थित है। वही स्वेच्छामय-सर्वरूप-सबके कारणों का भी कारण है ॥१६॥ वह तेजस्वी अत्यन्त अनुपम सौन्दर्य वाला-परम रम्य वयु को धारण करने वाला-मनोहर-किशोर अवस्था से युक्त-अतिशान्त रूप वाला-सबका स्वामी-श्रीर पर से भी परतम है ॥१७॥ वह वैष्णवों का पर ब्रह्म नवीन नीरद (मेघ) के समान श्याम वर्ण वाला तथा रासलीलानुरागी एक श्याम सुन्दर है। उसके नेत्र शरत्काल के मध्याह्न में पक्षों के समुदाय की शोभा को मोचन करने वाले परम सुन्दर हैं ॥१८॥ अति सुरम्य मोतियों के सार को भी उसकी दाँतों की मञ्जुल पङ्क्ति हेचकर देने वाली है। वह मोर की पंख को चूड़ा में रखने वाला श्रीर मालती लता के पुष्पों की मालाओं से मण्डित है ॥१९॥ उस वैष्णवों के श्री कृष्ण रूपी परब्रह्म की बड़ी सुन्दर नासिका है श्रीर सर्व हासन्द मुस्कान से समन्वित रहने वाला है। सदा वह अपने भक्त जनों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये कातर (उतावला) रहा करते हैं। जलनी हुई अग्नि के समान परम विद्युत् वल्ल अर्थात् पीताम्बर की शोभा से सम्पन्न है ॥२०॥ वह दो भुजाओं वाला है—मुरली हाथ में धारण करने वाला श्रीर रत्न जटित आभरणों से विभूषित-सबका आधार-सब का ईश-सम्पूर्ण शक्ति समुदाय से समन्वित श्रीर व्यापक है ॥२१॥ वह समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता-सर्व-परम स्वतन्त्र- सर्व मञ्जुल रूप - परिपूर्णतम-स्वर्य सिद्ध-सिद्धियों के प्रदान करने वाले श्रीर सिद्धियों के कारण स्वरूप है ॥२२॥

ध्यायन्ते धीष्णवाः अश्वदक्षप सनातनम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभोकभीतिहर परम् ॥२३॥
ब्रह्मणो वयमा यम्य निमेष उपचर्यते
स चात्मा परम ब्रह्म कृष्ण इत्याभिधीयते ॥२४॥
कृपिस्तद्भक्तिवचनो नस्य तद्दास्यवाचक ।
भक्तिदास्यप्रदाता य.म.कृष्ण परिकीर्तितः ॥२५॥
कृपिश्च नर्दवचनो नकारो बीजवाचक ।
सर्व बीज पर ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥२६॥
असत्यब्रह्मणा पालेकालेऽनीतेऽपिनारद ।
यद्गुणानानास्तिनाशस्तत्नमानोगुणेनच ॥२७॥
स कृष्ण सर्वसृष्टिपादो तिस्रक्षुरेक एव च ।
सृष्टिघोन्मुक्तस्तदमेन कालेनप्रेरित प्रभु ॥२८॥

वैष्णव गण निरन्तर इस प्रकार के स्वरूप धारते जन्म-मृत्यु-जरा-
व्याधि भोक-भय सबके हरण करने धारते परम सनातन का ध्यान किया
करते हैं ॥२३॥ ब्रह्मा की पदों अथवा उसका एक निमेष समय होता है ।
वह चात्मा परब्रह्म कृष्ण-इस शुभ नाम से बड़े जाते हैं ॥२४॥ 'कृपि'—
यह दास्य उसकी भक्ति के अर्थ का वाचक होता है और न'—यह वरुण
उसके दास्य अर्थ का प्रकट करने वाला है । जो भक्ति और दास्य भाव के
प्रदान करने वाला है , वह 'कृष्ण'—इस शुभ नाम से कहा गया है ॥२५॥
'कृपि'—यह सबका वाचक है और नकार बीज के अर्थ का वाचक होता
है । जो सबका बीज स्वरूप परब्रह्म है वह 'कृष्ण'—इस नाम से कहा
जाता है ॥२६॥ ह नारद ! अन्तर ब्रह्माणो के पाल का समय ध्यनीत
ही जान पर भी जिसके गुण गणों का कभी नाश नहीं होता है और गुणगण
से वह उन्ही से समान होता है ॥२७॥ वह कृष्ण समस्त की सृष्टि के आदि
में एक ही सृजन करने की इच्छा वाला है । उसके अंग स्वरूप धान के
के द्वारा प्रेरित प्रभु सृष्टि का सृजन करने के लिये उन्मुख होते हैं ॥२८॥

स्वेच्छामयस्वेच्छयाचद्विधारूपोवभूवह ।
 स्त्रीरूपावामभागांशादक्षिणांशःपुमन्स्मृतः ॥२९॥
 अतीवसुन्दरींशान्तांसस्मितांवक्रलोचनाम् ।
 वह्निगुह्यांगुकाधानां रत्नभूषणप्रूषिताम् ॥३०॥
 शश्वच्चक्षुश्चकोराम्यांपिवन्तीसन्ततमुदा ।
 कृष्णस्यमुखचन्द्रश्चन्द्रकोटिविनिन्दितम् ॥३१॥
 दृष्टिमात्रं तथा साद्धं रासेशो रासमण्डले ।
 रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीडां चकार ह ॥३२॥
 स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो वभूव ह ।
 निःश्वासवायुःसर्वेषांजीविनाञ्चभवेपुच ॥३३॥
 वभूवभूतिमद्वयोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा ।
 तत्पत्नी साचतत्पुत्राः प्राणापञ्चचजीविनाम् ॥३४॥
 प्राणोऽपानः समानश्चोदानो ध्यान एव च ।
 वभूवुरेवतत्पुत्राग्रघःप्राणश्च पञ्च च ॥३५॥

वह स्वेच्छामय है इसी लिये अपनी इच्छा से ही दो प्रकार के रूप
 वाला हो गया था । वाम भाग का अंग स्त्रीरूप वाला हो गया और
 दक्षिण भाग का अंग पुमान् हो गया था ॥२९॥ जो स्त्री रूपा अंश था
 वह अत्यन्त ही सुन्दरी-शान्ता स्मित से युक्त और वक्र नेत्रों वाली थी ।
 अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र का परिधान करने वाली और रत्न जटित
 भूषणों से विभूषित थी ॥३०॥ वह निरन्तर नेत्ररुणी चकोरों से करोड़ों
 चन्द्रों को पराजित करने वाले कृष्ण के मुख रूपी चन्द्र का पान प्रसन्नता
 से करने वाली थी ॥३१॥ ऐसी उस परम सुन्दरी के साथ रास मण्डल में
 रासेश्वर ने रामोत्लास के समय सृष्टिभाव से एकान्त में रास क्रीडा
 की थी ॥३२॥ और उसकी निःश्वास की जो वायु थी वही सबका आधार
 हुई थी । भव में समस्त जीवधारियों की वह निःश्वास वायु हुई थी ।
 उस भूतिमान् वायु के वाम अङ्क से उसके प्राणों की वल्लभा पत्नी हुई थी
 और उसके पुत्र प्राण हुये थे जोकि जीवियों के पाँच प्राण हैं ॥३३-३५॥

धर्मतोयाधिदेवश्च वभूव वरुणो महान् ।
 तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी वभूव सा ॥३६॥
 अथ सा कृष्णाश्वितश्च कृष्णदुग्धं दधार ह ।
 शतमन्वन्तर यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मनेजसा ॥३७॥
 कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ।
 कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत् कृष्णत्वक्षम्यलक्ष्यता ॥३८॥
 शतमन्वन्नरानीतकालेऽतीतेऽपि सुन्दरी ।
 सुपाव डिम्बस्वर्णाभविश्वाधारालयपरम् ॥३९॥
 दृष्ट्वा डिम्बश्च सा देवी हृदयेन विभूषिता ।
 उत्तमजं च कोपेन ब्रह्माण्ड गोलके जले ॥४०॥
 दृष्ट्वा कृष्णाश्च नत्याग हाहाकार चकार ह ।
 अथाप देवी देवेशस्तद्वाराञ्चयथोचितम् ॥४१॥
 यतोऽपत्य त्वया त्यक्त कोपशीले सुनिष्ठुरे ।
 भवत्वमनपत्यापिवाद्यप्रभृतिनिश्चितम् ॥४२॥

धर्म और तोय (जल) का अधिकार महान् वरुण देवता हुआ था ।

उसका वाम अङ्ग से उसकी पत्नी वरुणानी प्रकट हुई थी ॥३६॥ इसके
 पश्चात् उस कृष्ण की श्वित ने कृष्ण से दुग्ध को धारण किया था और
 गो मन्वन्तर के समय तक यह ब्रह्मनेज से दीप्तिमती रही थी । ३७॥
 यह कृष्ण की प्राणाधि देवी और कृष्ण की प्राणा से भी अधिक प्रिया थी ।
 यह कृष्ण की निरन्तर सङ्गिनी थी अर्थात् नवदा उनका ही साथ रहने
 वाली थी तथा कृष्ण के वरुणत्व में सदा मस्थित रहा करती थी । ३८॥
 एक शत मन्वन्तर के बाद के अतीत हो जाने पर उस सुन्दरी ने स्वर्ण
 की आभा के समान आभा वाल—विश्व के आधार का स्थान परम डिम्ब
 (गिणु) का प्रसव किया ॥३९॥ उस देवी ने हृदय में विभूषिता होकर
 उस गिणु को देवा और गोलोक जल में उस ब्रह्माण्ड का बाप में उत्कर्ष
 कर दिया था ॥४०॥ कृष्ण ने उसके इस प्रकार से त्याग कर देने के धर्म
 की देवद्वार हाहाकार किया था और उन देवी के ईश कृष्ण ने उसी समय

यथोचित रूप से उस देवी को शाप दे दिया था ॥४१॥ हे कोपशैले ! हे सुनिष्ठुरे ! चूंकि तूने इस सन्तति को त्याग दिया है इस लिये आज से लेकर तू सन्तान हीना हो जावेगी और निश्चित रूप से अब तेरे कोई भी सन्तति नहीं होगी ॥४२॥

या यास्तदशरूपा च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः ।

अनपत्याश्चताः सर्वास्तत्समानित्ययीवनाः ॥४३॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात् सहसा ततः ।

आविर्भव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥४४॥

पीतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी ।

रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥४५॥

अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपाऽभवत् ह ।

वामार्द्धाङ्गा च कमलादक्षिणाद्द्वारिका ॥४६॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपोऽभवत् ह ।

दक्षिणाद्द्वारिच द्विभुजो वामाद्द्वारिच चतुर्भुजः ॥४७॥

उवाच वाणीं श्रीकृष्णस्त्वमस्य कामिनी भव ।

अत्रैवमानिनीराधानैवभद्रं भविष्यति ॥४८॥

एवं लक्ष्मीञ्च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च ।

स जगाम च वैकुण्ठताभ्यां सार्द्धजगत्पतिः ॥४९॥

जो-जो भी सुरों की स्त्रियाँ उसके अंश से होने वाली या अंश रूप धारण करने वाली होंगी वे भी सब सन्तान हीना नित्य यौवन वाली उसी के समान होंगी ॥४३॥ इसी अन्तर में फिर सहसा वह देवी जिह्वा के अग्रभाग से एक परम मनोहरा शुक्ल वर्णा वाली कन्या के रूप में प्रकट हुई थी ॥४४॥ यह पीत वस्त्रों के धारण करने वाली तथा वीणा और पुस्तक हाथों में लिये हुये रत्नों से जटित भूषणों से समलङ्कृत और समस्त शास्त्रों की अधि देवता थी ॥४५॥ इसके अनन्तर कालान्तर में वह दो रूप वाली हो गई थी । उसका जो दक्षिण भाग का आधा अंग था वह दो भुजाओं वाला हो गया था और वामांग का आधा भाग चार भुजाओं वाला हो

गया था ॥४६॥ उस समय श्रीकृष्ण उग वणी में बोले—तू इसरी कामिनी
 प्रयात् पत्नी होजा । यही पर ही मानिनी राधा थी, यह नहीं होगा । इस
 प्रकार में तुष्ट होकर लक्ष्मी को नारायण को दे दिया था । फिर वह
 जगती तन का स्वामी उन दोनों के साथ वैकुण्ठ लोक को चले गये थे
 ॥४७-४८॥

अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधाशसम्भवा ।

भूता नारायणाङ्गाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥५०॥

तेजसा वयसा रूपगुणाम्याञ्च समा हरेः ।

वभूवुःकमलाङ्गाच्चदासीकोट्यश्च तत्समाः ॥५१॥

अथ गोलोकनायस्य लोम्ना विवरतोमुने ।

भूताश्चासत्यगापाश्चवयसाोजसा समाः ॥५२॥

रूपेण च गुणेर्नैव धेधेन विक्रमेण च ।

प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे वभूवुः पार्षदा विभोः ॥५३॥

राधाङ्गलोमकूपेभ्यो वभूवुर्गोपकन्यकाः ।

राधातुल्याश्च सर्वास्ता राधातुल्याःप्रियवदाः ॥५४॥

रत्नभूरणभूषाढ्या शश्वत्मुस्थिरयोवनाः ।

अनपत्याश्चनाना सर्वाः पुमशापेन सन्ततम् ॥५५॥

एतन्मिदन्तरे विप्र महमा कृष्णदेहनः ।

आविर्बभूव मा दुर्गा विष्णुमाया मनाननी ॥५६॥

यद्यपि ये दोनों सन्तान हीन थी इस निय राधा के अश से जन्म
 देने वाले नारायण के अङ्ग से चार भुजाधो वाले पार्षद हुए थे । ये पार्षद
 तेज और गुण में तथा वय (प्रवस्था) में तथा रूप-रंगवपुष और गुण-गण से
 हरि के ही समान हुए थे । वचना के अंग से उसी के समान करोड़ों दासियाँ
 हुई थी ॥५०-५१॥ हे मुने ! इसने अनन्तर गोलोक धाम के स्वामी का
 रोम विस्तार में अमन्द गौर मधुत्वद्म हुए थे जो प्रवस्था और तेज से उन्हीं
 के मद्म थे ॥५२॥ रूप - लावण्य से-गुण-गण में-वेश भूषा से और वग-
 पराक्रम में सब विभ मद्म प्राणी के समान प्यारे पार्षद हुए थे ॥५३॥ इसी

प्रकार से राधा के लोमों के छिद्रों से राधा के ही सदृश गौर कन्यकाये हुई थीं । ये सब पूर्णरूप से राधा के ही सब समान प्रिय बोलने वाली समृत्पन्न हुई हुई थीं ॥५४॥ ये सभी रत्नों के विविध सर्वोत्तम आभरणों से समलङ्कृत थीं और निरन्तर सुस्थिर यौवन वाली थीं । परम पुरुष के शप से वे सभी सन्तानहीन थीं ॥५५॥ हे विप्र ! इसी अन्तर में सहस्रा कृष्ण के शरीर से विष्णुमाया सनातनी दुर्गा प्रकट हुई थीं ॥५६॥

देवी नारायणीशानी सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
 दुद्ध्यधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥५७॥
 देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
 परिपूर्णातमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥५८॥
 तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा ।
 ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभृजसंयुता ॥५९॥
 नानाशास्त्रास्त्रनिकरं विभ्रती सा त्रिलोचना ।
 वह्निचुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥६०॥
 यस्याब्जांशांशकलया बभूवुः सर्वयोपितः ।
 सर्वविश्वस्थिता लोका मोहितामाययायया ॥६१॥
 सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम् ।
 कृष्णभक्तिप्रदात्रीचवर्णावानाञ्च वैष्णवी ॥६२॥
 मुमुक्षूणां मोक्षदात्रीसुखिनांसुखदायिनी ।
 स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीः सागृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ ॥६३॥
 तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपासा नृपेषु च ।
 या चाग्नीदाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे ॥६४॥
 गोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुगोभना ।
 सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णे परमात्मनि ॥६५॥

यह नारायणी देवी ईशानी और समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली थी । वह परमात्मा कृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी थीं ॥५७॥ वह

देवियों की बीजरूप वाली थी और मूलप्रवृत्ति-ईश्वरी परिपूर्णतमा तेज के स्वरूप ने समन्वित तथा त्रिगुणात्मिका थी ॥५८॥ यह तपे हुए सुवर्ण के वर्ण व समान आभा वाली और करोड़ सूर्य की प्रभा व समप्रभा वाली थी । अल्प हान्य से युक्त प्रसन्न मुत्त वाली और एक सहस्र भुजाओं से युक्त थी ॥५९॥ वह तीन नेत्रों वाली देवी अनेक भाँति क दाज और अस्त्रा व गमूह की धारण करने वाली थी । वहि के समान विशुद्ध वस्त्र ने परिधान ने युक्त और रत्नों व भूषणों से विभूषित थी ॥६०॥ जिसके अशाशकला मे ससार की समस्त स्त्रियाँ हुई थी । ये सर्वेय सम्पूरा विश्व मे स्त्रियाँ सम्मिथ हैं जिनकी माया से सभी लोग मोहित रहा करते हैं ॥६१॥ गृह मे निवास करने वाले गृहस्थों को जोकि वामी हैं अर्थात् काम वासना रसत हैं उनका सब प्रकार व ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली हैं । जो वैष्णवी देवी है वह वैष्णवों को वृष्ण भक्ति की प्रदान करने वाली होती है ॥६२॥ जा भाक्षपद को प्राप्न करने की इच्छा रखने वाली मुमुक्षुओं का यह मोक्ष के प्रदान करने वाली हैं और मुग्धोन्मोग करने की इच्छा रखने वाला का यह देवी मुख का प्रदान भी उसी भाँति करने वाली हैं । स्वर्ग मे वही स्वर्ग लक्ष्मी है और धरो मे यह गृह लक्ष्मी है । ६३॥ तप करने वान तपस्विण्या मे वह तपस्या रूप वाली है और राजाभा मे थी का रूप धारण करने वाली है और जो अग्नि मे दाहिका रूप वाली तथा आस्त्र मे प्रभा के रूप वाली थी ॥६४॥ अन्द्र मे साभा के स्वरूप धारण करने वाली और यज्ञी पक्षी मे मुन्दर सोभा के रूप वाली है तथा परमात्मा थी वृष्ण मे वही सब प्रकार की शक्ति के स्वरूप धरण करने वाली थी ॥६५॥

यथा च शक्तिमानामा यथा च शक्तिमज्जगत् ।

यथा विना जगत् सर्वं जीवन्मृतनिव स्थितम् ॥६६॥

या च ससारवृद्धस्य बीजरूपासनातनी ।

न्यनिरूपा वृद्धिरूपा फनरूपा च नारद । ६७॥

द्युपिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा घृति ।

शान्तिलज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तकान्त्यादिरूपिणी । ६८॥

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह ।

रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥६६॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सखीकश्च चतुर्मुखः ।

पद्मनाभो नाभिवद्मान्निः ससार पुमान् मुने ॥७०॥

जिसके द्वारा यह प्रात्मा शक्ति वाला है और जिसके द्वारा यह स्मस्त जगत् शक्तिमान् होता है । इस बिना तो यह सम्पूर्ण जगत् एक मृतक की भाँति ही स्थित होता है ॥६६॥ हे नारद ! जो इस वृद्ध संसार की बीज रूप वाली है और सनातनी है, स्थिति रूपा बुद्धिरूपा और फलों के रूप वाली है ॥६७॥ वह धुधा-पिपासा-द्रयाश्रद्धा-निद्रा-तन्द्रा-क्षमा-वृत्ति-शान्ति-लज्जा-तुष्टि-पुष्टि-आन्ति और कान्ति आदि के रूप वाली है ॥६८॥ उसने सर्वेश्वर की स्तुति करके वह फिर उन्हीं के आगे संस्थित हो गई थी । राधिका के ईश्वर ने उसके लिये संस्थित होने को रत्नों का सिंहासन दिया था । इसी अन्तरुमें वहाँ पर अपनी स्त्री के साथ पद्मनाभ चतुर्मुख हे मुने ! भगवान की नाभि में स्थित पद्म नाल के पद्म से पुमान् निकला था ॥६९-७०॥

कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः ।

चतुर्मुखस्तं तुष्टाव प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥७१॥

सुन्दरी सुन्दरीश्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा ।

वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥७२॥

रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् ।

उवासः स्वामिना सार्द्धं कृष्णस्य पुरतोमुदा ॥७३॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो वभूव सः ।

वामार्द्धाङ्गीमहादेवोदक्षिणो गोपिकापतिः ॥७४॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शतकोटिरविप्रभः ।

त्रिगुलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मवरो हरः ॥७५॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः ।

भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥७६॥

दिगम्बरो नीलमण्ड सर्पभूषणभूषित ।
 विभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमाना सुसंस्कृताम् ॥७७॥
 प्रजपन् पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योति सनातनम् ।
 सत्यस्वरूप श्रीकृष्ण परमात्मानमीश्वरम् ॥७८॥
 काण्डा कार्यानाञ्च सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
 जन्ममृत्युजराव्याधिगोकभीतिहरपरम् ॥७९॥
 सस्तूय मृत्योर्मृत्यु त जातो-मृत्युञ्जयाभिध ।
 रत्नसिंहासने रम्य समुवास हरे पुर ॥८०॥
 यह श्रीमान हाथ में कमण्डलु लिए हुये थे, सपत्नी और जानियो में परम श्रेष्ठ थे। चतुर्मुखा ने ब्रह्मतेज में प्रज्वलित होते हुये उसकी स्तुति की थी ॥७१॥ गुन्दरिया में परम श्रेष्ठ सुन्दरी जिसकी शरत्काल के चन्द्रमा के समान प्रभा थी। अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र का परिधान धारण करने वाली, रत्ना के विभिन भूषणा से समनद्भूत होने वाली थी ॥७२॥ गवने कारण स्वस्व की उसने स्तुति की और फिर वह अत्यन्त सुरम्य रत्ना से जटिन सिंहासन पर कृष्ण के प्राग परम प्रगल्भता से अपने स्वामी के साथ सत्पित हो गई थी ॥७३॥ इनो अन्तर में वह कृष्ण दो रूप वाल थे। उसका कामान्ना गाथा जा था उसने वह महादेव हो गये थे और जो दक्षिण अङ्ग का प्रथम भाग था उससे गोपिकाओं के पनि हो गये थे ॥७४॥ महादेव का वरुण विष्णु स्फटिक मणि के समान था और वह सो करोड़ सूर्य की प्रभा व गमन प्रभा से युक्त था। त्रिगुल और पट्टिका आयुधो की हाथो में धारण करने वाल थे और हर शरीर पर व्याघ्र क चम का मोडे थे ॥७५॥ तप्त हुय सुवर्ण व वर्ण के सटस आभा वाली मुनटली जटाश्रा के भार का धारण करने वाले - पर और भस्म के शरीर पर मले हुए थे तथास्विन से युक्त और मस्तक पर चन्द्रना को धारण किये हुये थे। ॥७६॥ दिव दिगम्बर (मग्न) स्वरूप वाले थे। इनके कण्ठ में महाविष का कालकूट के चिह्न होने से नीलापन था। यह मर्षों के भूषणों से अपने आपकी भूषित करने वाले थे। इनके दाहिने हाथ में मुद्रास्कृत रत्नों की माता थी ॥७७॥ महादेव अपने पांच मुखों के मण्डल से सनातन ब्रह्मज्योति-

का जप कर रहे थे जोकि उनका उपास्य देव सत्य स्वरूप वाला - परमात्मा ईश्वर श्री कृष्ण ही थे । इन्हीं का जाप यह करते थे ॥७८॥ यह श्रीकृष्ण कारणों के भी कारण स्वरूप और सम्पूर्ण मङ्गलों के भी मङ्गल थे । जन्म-मरण-शोक-जरा-व्याधि और भय के हरण करने वाले परात्पर थे ॥७९॥ ऐसे अपने उपास्य देव को जो मृत्यु के भी मृत्यु रूप थे उनका संस्तवन करके जन्मग्रहण करने वाले मृत्युञ्जय नामक हर हरि के आगे सुन्दर सिंहासन पर संस्थित हो गये थे ॥८०॥



१४—विश्वनिर्णयवर्णनम् ।

अथ डिम्बोजले तिष्ठन् यावद्वै ब्रह्मणो वयः ।
 ततःस्वकालेसहस्राद्विधारूपो बभूव सः ॥१॥
 तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः ।
 क्षणं रोह्यमाणश्च स्तनान्वः पीडितः क्षुधा ॥२॥
 पितृमातृपरित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः ।
 ब्रह्माण्डासंख्यनाथो यो ददर्शोद्ध्वमनाथवत् ॥३॥
 स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपिनाम्नादेवोमहाविराट् ।
 परमाणुर्यथासूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाप्यसौ ॥४॥
 तेजसांपोडशांशोऽयंकृष्णस्यपरमात्मनः ।
 आधारोऽसंख्यविश्वानांमहाविष्णुश्चप्राकृतः ॥५॥
 प्रत्येकं रोमकूपेषु विश्वानि निखिलानिच ।
 अद्यापितेपांसंख्याञ्चकृष्णोवक्तुंनहिक्षमः ॥६॥
 संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां नकदाचन ।
 ब्रह्मविष्णुशिवादीनांतथासंख्यानविद्यते ॥७॥

इस अध्याय में विश्व के निर्णय का वर्णन किया जाता है । श्री नारायण ने कहा—इसके अनन्तर जितनी ब्रह्मा की अवस्था होती है उतने

समय तक वह डिम्ब जल में स्थित रहकर फिर अपना समय माने पर सहसा वह दो रूप वाला हो गया था ॥१॥ उसके मध्य में एक छोटा सा शिशु था जो शतकोटि मूर्तों के समान प्रभा वाला था । क्षण भर के वह स्तनान्ध दुग्धा से पीडित होता हुआ रदन करने वाला हो गया था ॥२॥ वह उस समय माता धीरे रित्तों के द्वारा परित्याग किया हुआ जल के मध्य में प्राथम्य में हीन था । जो वह ब्रह्माण्ड का नाथ था उस समय एक भनाय की भाँति ऊपर की ओर देतने लगा था ॥३॥ वह भी स्थूल से भी स्थूल तम और नाम से महा विश्व देव था । जिस तरह सूक्ष्म से परमाणु होता है वैसा ही यह तथापि स्थूल में पर था ॥४॥ परमात्मा कृष्ण के तेजों का यह सोनहका अणु था । यह प्राकृत महा विश्व अस्तस्य विश्वों का आधार था ॥५॥ इसके अन्तर्गत रोम छिद्रों में ममन्त विश्व हैं अर्थात् उनकी सत्त्वा का बताने के लिये कृष्ण भी समर्थ नहीं होते हैं ॥६॥ रजके कण समूह की यदि कोई मर्यादा की जावे तो कदाचित् वह हो सक किन्तु विश्वों की सत्त्वा तो किसी भी प्रकार से बनी नहीं की जा सकती है । जिस तरह विश्वों की सत्त्वा नहीं की जा सकती है उसी भाँति ब्रह्मा विश्व धीरे शिव आदि की मर्यादा नहीं की कही या बताई जा सकती है । इन सबकी अमर्यता इतनी विशाल है ॥७॥

प्रतिविश्वेषु मन्त्येव ब्रह्मविष्णुशिवोदय ।

पातालान्द्रव्यलोकात्तत्रह्याण्डापरिवीक्षितम् ॥८॥

तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद्बहिरेव स ।

नचमत्स्यस्वरूपश्चक्षुश्वनारायणोयथा ॥९॥

तदूर्ध्वं चैव गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोननात् ।

नित्यं मत्स्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाप्ययम् ॥१०॥

मत्प्रीतोपमिता पृथ्वी सप्तसागरसमुत्ता ।

ऊनपञ्चाशदुपद्वीपामत्स्यजलवतान्विता ॥११॥

ऊर्ध्वं सप्त चस्वलोकान्द्रव्यलोकसमन्विताः ।

पातालातिचमत्तायश्चैव ब्रह्माण्डमेव च ॥१२॥

ऊर्ध्व धरायाभू लोकीभुवर्लोकस्ततः परः ।
 स्वर्लोकस्तुततःपश्चान्महर्लोकस्ततो जनः ॥१३॥
 ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः ।
 ततः परोब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चननिर्मितः ॥१४॥

विश्व असंख्य हैं और उन असंख्य विश्वों में प्रत्येक विश्व में इसी प्रकार से ब्रह्मा - विष्णु और शिव आदि भी होते हैं । पाताल से ब्रह्म लोक के अन्त तक ब्रह्माण्ड बताया गया है ॥८॥ उसके ऊपर के भाग में वैकुण्ठ लोक है जोकि इस ब्रह्माण्ड से बाहिर ही होता है । और वह सत्य स्वरूप वाला है जिस प्रकार से निरन्तर नारायण होते हैं ॥९॥ इस वैकुण्ठ लोक से भी ऊपर के भाग में गोलोक धाम स्थित है जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन है । यह गोलोक धाम नित्य-सत्य स्वरूप वाला है जिस प्रकार से कृष्ण का स्वरूप होता है ठीक उसी प्रकार से उनके गोलोक धाम का भी होता है ॥१०॥ यह पृथ्वीतल का मण्डल सात द्वीपों में सीमित है और यह सात महा सागरों से संयुता है । इस पर उनचास उपद्वीप होते हैं और यह असंख्य पर्वतों से समन्वित है ॥११॥ ऊपर के भाग में ब्रह्मलोक से युक्त सात स्वरलोक होते हैं । और नीचे के भाग में पाताल भी सात हैं । इस प्रकार से यह पूरा ब्रह्माण्ड है जिसमें नीचे और ऊपर वाले चौदह भुवन होते हैं ॥१२॥ इस धरा से ऊपर पहिले भूर्लोक है । इसके पश्चात् भुवर्लोक है और उससे आगे स्वर्लोक है । उसके पीछे महर्लोक है और उससे ऊपर जनलोक है ॥१३॥ जनलोक से ऊपर तपोलोक है और उस से ऊपर के भाग में सत्य लोक स्थित है । इन सातों लोकों के ऊपर ब्रह्म लोक स्थित होता है जोकि तपे हुये सुवरां के समान निर्मित है ॥१४॥

एवं सर्वं कृत्रिमञ्च धराभ्यन्तर एव च ।
 तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥१५॥
 जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम् ।
 नित्यौगोलोकवैकुण्ठीसत्यीशशब्दकृत्रिमी ॥१६॥

लामकूपेचब्रह्माण्डप्रत्येकमस्यनिश्चितम् ।
 एपासस्यानजानातिकृष्णोऽन्यस्यापिकाकथा । १७॥
 प्रत्येक प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
 निस्र कोट्य सुराणाञ्चसस्यासर्वत्रपुत्रकः ॥१८॥
 दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ब्रह्मादयः ।
 भुविवर्णाश्चत्वारोऽधोनागाश्चराचराः ॥१९॥
 प्रथ कालेन म विराड्बुध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः ।
 डिम्बान्तरञ्च धून्यञ्च न द्वितीयं कथञ्चन ॥२०॥
 चिन्तामवाप क्षद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः ।
 ज्ञान प्राप्य तदादध्यौकृणः परमपूरुषम् ॥२१॥

इस प्रकार से यह सब वृत्रिम हैं और घरा के भ्रम्यन्तर में ही हैं ।
 हे नारद ! इस घरा के विनाश जान पर मभी का विनाश हो जाता है
 ॥१५॥ जल के बुदबुदों के समान ही ममस्त विश्वो के समुदाय अनित्य
 है । वैष्णव और गालोक ये दोनों नित्य हैं—सत्य हैं और निरन्तर ब्रह्मिम
 हैं ॥१६॥ इस के सामो क छिद्रा म प्रत्येक म निश्चित रूप से ब्रह्माण्ड
 स्थित रहते हैं । ऐसे य कितने ब्रह्माण्ड हैं—इतनी सख्या साक्षात् वृष्ण
 नहीं जानते हैं अन्य तो कोई इसे जान ही क्या सकता है ? इसकी तो चर्चा
 ही करना व्यर्थ है ॥१७॥ प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा-विष्णु और शिव
 भादि सब हुआ करते हैं । हे पुत्र ! देवा को तीन करोड सख्या है जोकि
 सर्वत्र रहा करते हैं अर्थात् प्रत्येक ब्रह्माण्ड में इतने ही देवाएँ रहते हैं
 ॥१८॥ ईशामो क स्वामी-दिशामो के पालक-नक्षत्र और गृह आदि ये सब
 भी ममस्त विश्वो में हात है और प्रत्येक म पृथक् पृथक् रहा करते हैं ।
 इस भूमण्ड में चार बण हैं और चापोभाग म चराचर नाग रहा करते हैं
 ॥१९॥ इनके उपरान्त समय आनेपर यह विराट वार-वार ऊपर की ओर
 देतता है । वहा पर अन्य डिम्ब और धून्य द्वितीय कही भी कोई नहीं है
 ॥२०॥ फिर यह धुषा से युक्त होकर चिन्ता को प्राप्त हो गया या और
 वार-वार रदन करने लगा या । फिर इसे ज्ञान की प्राप्ति हुई और ज्ञान का

लाभ करके उस समय में कृष्ण परम पुरुष का ध्यान करने लगा था ॥२१॥

ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
 नवीननीरव्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२॥
 सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम् ।
 जहास बालस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमोश्वरम् ॥२३॥
 वरं तस्मै ददौ तुष्टो वरेशः समयोचितम् ।
 भत्समो ज्ञानयुक्तश्चक्षत्पिपासाविवर्जितः ॥२४॥
 ब्रह्माण्डसख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ॥
 निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदोवरः ।
 जरामृत्युरोगशोकपीडादिपरिवर्जितः ॥२५॥
 इत्युक्तवा तद्दक्षकर्णो महामन्त्रमं पङ्क्षरम् ।
 त्रिः कृत्वा प्रजजापादीवेदागमवर परम् ॥२६॥
 प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ।
 वह्निज्वालान्तमिष्टञ्च सर्वविघ्नहरं परम् ॥२७॥
 मन्त्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वैप्रभुः ।
 श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोधकथायामि ते ॥२८॥

इसके उपरान्त वहीं पर इसने सनातन ब्रह्म ज्योति का दर्शन प्राप्त किया था जो नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले—दो भुजाग्रों से समन्वित-पीतवस्त्र धारण करने वाले मन्द मुस्कान से युक्त-मुरली हाथ में धारण करने वाले तथा भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाले थे । अपने जनक ईश्वर का दर्शन प्राप्त करके वह बालक प्रसन्न हुआ और हँस उठा था ॥२२-२३॥ उस वरों के समामी ने परम सन्तुष्ट होकर उसको समय पर उचित वरदान प्रदान किया था । उन्होंने कहा—हे वत्स ! तू अब मेरे ही समान ज्ञान वाला और भूख-प्यास से रहित होजा । और जब तक इसका तप हो तब तक इस ब्रह्माण्ड में असंख्य निलयों वाला होजा ॥२४॥ मैं तुझे

वरदात देता हूँ कि तू कामना से रहित, भय से रहित, सब को वर देने वालों में परम श्रेष्ठ-जरा, मृत्यु, रोग, शोक, पीडा आदि से वञ्चित होजा ॥२५॥ यह कहकर उसके दाहिने कान में छँ भक्षरो वाला महामन्त्र तीन बार कहकर प्रजपित कर दिया था जोकि आदि में परम वेदागम वा एक श्रेष्ठतम था ॥२६॥ इस मन्त्र के आदि में प्रणव (ओम्) था और चतुर्थी विभक्ति जिसके अन्त में थी ऐसे वृष्ण के दो अक्षर थे । वह्नि ज्वाला अन्त वाला और इष्ट था । यह समस्त विधियों को हरण करने में सर्वोपरि था ॥२७॥ यह मन्त्र देकर फिर उस समय प्रभु ने उसके आहार की कल्पना की थी । हे ब्रह्मपुत्र ! तुम यवण करो और समझ लो, मैं तुमसे कहता हूँ । २८॥

प्रतिवद्वे यन्नवेद्य ददाति वैष्णवो जनः ।
 षोडशाशविषयिणोविष्णो पञ्चदशास्यवे ॥२६॥
 निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च ।
 नवेद्यन च कृष्णस्य नहिकश्चित्प्रयोजनम् ॥३०॥
 यद् ददाति च नवेद्य यस्म देवाय यो जन ।
 सचखादतितत्सवलदमाहृष्टया पुनर्भवेत् ॥ ३१॥
 तञ्च मन्त्र वर दत्त्व तमुवाच पुनर्विभुः ।
 वरमन्य किमिष्टन्ते तन्मे ब्रूहि ददामिते ॥३२॥
 कृष्णस्य वचन श्रुत्वा तमुवाच महाविराट् ।
 अदन्तो बालकस्तत्र वचन समयाचितम् ॥३३॥
 वर मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला ।
 सन्तत यावदायुर्मे क्षण वा सुचिरञ्चवा ॥३४॥
 त्वद्भक्तियुक्तापोलोकजीवन्मुक्त.ससन्ततम् ।
 त्वद्भक्तिहीनोमूर्खश्चजीवन्नपिमृतोहि सः ॥३५॥

वैष्णव जन प्रत्येक विश्व में जो नवेद्य है उसको समर्पित करते हैं । षोडशाश विषय वाले पञ्चदशास्य विष्णु का निर्गुण आत्मा का और परिपूर्णतम वृष्ण का नवेद्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥२६-३०॥ जो

जन जिस देव के लिये जो भी नैवेद्य समर्पित करता है वह देवता उस सब को खा जाता है किन्तु लक्ष्मी की दृष्टि से वह फिर वैसा ही हो जाया करता है ॥३१॥ विभु'ने उस श्रेष्ठ मन्त्र को देकर महा विराट् ने उससे कहा था । तुझे अन्य क्या अभीष्ट वर चाहिए, उसे मुझे बतला दो सो उसे भी मैं तुझको दे देता हूँ । वहाँ पर दांत हीन बालक था उसको समय के लायक वचन था । महा विराट् ने कहा—मेरा यही वर है कि आँके चरण कमल में निश्चल भक्ति होवे । यह निरन्तर रहे जब तक मेरी आयु दो अथवा क्षण भर के लिये अथवा अधिक समय तक रहे ॥३४॥ आपकी भक्ति से हीन जो पुरुष है वह महाभूर्ख है और वह जीता हुआ भी मृत ही होता है ॥३५॥

किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च ।
 व्रतेनैवोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ॥३६॥
 कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा ।
 येनात्मना जीवितश्च तमेवनहि मन्यते ॥३७॥
 यावदात्माशरीरेऽस्तितावत्सशक्तिसंयतः ।
 पश्चाद्यान्तिगतेतस्मिन्नस्त्वतन्वाश्राशक्तयः ॥३७॥
 स च त्वञ्चमहाभागसर्वात्माप्रकृतेःपरः ।
 स्वेच्छामयश्चसर्वाद्योब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥३८॥
 इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद ।
 उवाच कृष्णःप्रत्युक्तिमधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥४०॥
 सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाहं त्वं भव ।
 ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्तेनभविष्यति ॥४१॥
 क्षणेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वञ्च पुत्र विराट् भव ।
 त्वन्नाभिपद्मेब्रह्माचविश्वस्रष्टाभविष्यति ॥४२॥

उस जप-तप-यज्ञ-पूजन-व्रत-उपवास-पुण्य-तीर्थों के सेवन से क्या लाभ है जिससे कृष्ण की भक्ति का भाव न हो वह चाहे उपभुक्त कर्म कुछ भी

क्यों न कर्मने वाता हो ऐसे कृष्ण की भक्ति से विहीन सूर्य का तो ममस्त जीवन ही व्यर्थ होता है । नियते जीवित रहते हुये अपनी आत्मा के द्वारा उसका ही नहीं माना है उसका जीवित रहना निष्फल है ॥३६-३७॥ जब तक इस नन्दर शरीर में इस आत्मा का निवास विद्यमान रहता है तभी तक वह शक्ति से मयत होता है । इसके अन्दर से आत्मा के निकल जाने जाने पर शक्तियाँ स्वतन्त्र नहीं रहा करती हैं ॥३८॥ हे महा भग ! वह भी तू सर्वात्मा प्रकृति से पर वस्तु है । वह स्वेच्छामय और सबका आद्य सनातन ब्रह्म ज्योति है ॥३९॥ हे नारद ! वह बालक इतना बड़कर विराम को प्राप्त हो गया था । फिर कृष्ण परम भगुर और कानो को प्रिय लगने वाली प्रत्युक्ति बोले थे । श्रीकृष्ण न कहा—तुम सुचिर और सुस्थिर रहो । जैसा मैं हूँ वैसा ही तू होजा । ब्रह्म के असंख्यगत होने पर तेरा पान नहीं होगा ॥४०-४१॥ प्रति ब्रह्माण्ड में हे पुत्र ! तू विराट् होजा । तेरे नामिभियत कमल नाल के समुत्पन्न पद्म से विश्व का मूजन करने वाला ब्रह्मा होगा ॥४२॥

ललाटे ब्रह्मण्यदन्व रद्रदचैनादशं व तु ।

दिवायेन भविष्यन्ति सृष्टिमञ्चरगाय वै ॥४३॥

वानासिन्दस्तेपेको विश्वसृष्टारकारकः ।

पानाजिगुञ्च विपयीक्षुद्रायेन भविष्यति ॥४४॥

मद्भक्तिपुक्ते नततं भविष्यति वरेण मे ।

ध्यानन कमनीय मानित्यद्रक्ष्यसिनिश्चिनम् । ४५॥

मानर कमनीयाञ्चममवक्ष स्थलस्थिताम् ।

यामिलानतिष्ठवत्मेत्युक् यामोऽन्तरधीयत ॥४६॥

गत्वा स्वर्लोक ब्रह्माण्ड मङ्कुर न उवाच ह ।

नष्टार रुद्रदुमीशञ्च सहस्रिञ्चवत्त्नगम ॥४७॥

सृष्टि स्रष्टु गच्छ वत्न नामिपद्मोद्भवोमव ।

महाविगाट्लामकूपे क्षुद्रन्पचविधे शृणु ॥४८॥

गच्छ वत्स महादेवं ब्रह्मभालोद्भवो भव ।

अंशेन च महाभाग स्वयञ्च सुचिरं तपः ॥४६॥

ब्रह्मा के ललाट में शिव के अंश से एकादश रुद्र सृष्टि के सञ्चरण करने के लिये होंगे ॥४३॥ उन एकादश रुद्रों में ही एक कालाग्नि नामक रुद्र भी होगा जो इस सृष्टि के संहार का करने वाला होगा । क्षुद्रांश से विषयी विष्णु पालन करने वाला होगा ॥४४॥ वह मेरी शक्ति से सतत युक्त मेरे वर से होवेगा और वह ध्यान से कमनीय (सुरभ्य) मुझको निश्चिन्त रूप से नित्य ही देखेगा ॥४५॥ और वक्ष स्थल के नीचे स्थित कमनीय माता का भी दर्शन करेगा । हे वत्स ! तू यहाँ स्थित रह—मैं अपने लोक को जाता हूँ—इतना कहकर वह अन्तर्हित हो गये थे ॥४६॥ फिर स्वर्लोक में जाकर ब्रह्मा और गङ्गा से बोला जो सृष्टा थे और सृजन करने के कार्य के ईश थे तथा उसी क्षण में संहार के करने वाले थे ॥४७॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे वत्स ! इस सृष्टि का सृजन करने के लिये जाओ तुम अब नाभि पद्म के उद्भव वाले बनो । महा विराट् के लोम कूप में अर्थात् रोम के छिद्र में क्षुद्र विधि का श्रवण करो । फिर महा देव से से कहा—हे वत्स ! ब्रह्मा के भाल से उद्भव वाला बनो । हे महा भाग ! अंश से स्वयं बहुत अधिक समय तक तप करो ॥४८-४९॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुतः ।

जगामनत्वात्ब्रह्माशिवश्चशिवदायकः ॥५०॥

महाविराट् लोमकूपे ब्रह्माण्डगोलके जले ।

स बभूव विराट् क्षुद्रोविराडंशेनसाम्प्रतम् ॥५१॥

शयामो युवा पीतवासाःशयानो जलतल्पके ।

ईपद्मास्यः प्रमन्नास्योविश्वरूपीजनार्दनः । ५२॥

तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः ।

संभूय पद्मदण्डञ्च वभ्राम युगलक्षकः ॥५३॥

नान्त जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः ।

नाभिस्य च पद्मस्यचिन्तामापपितामहः ॥५४॥

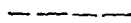
स्वस्थान पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् ।
 ततो ददर्श क्षद्र त ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥१५॥
 ध्यान जनतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते ।
 यल्लोमकूपे ब्रह्माण्ड तञ्च तत् परमीश्वरम् ॥१६॥
 श्रीनृष्णञ्चापि गोलोक गोपगोपोत्तमन्वितम् ।
 त सस्तूय वरप्रापतत नृष्टिचकारम् ॥१७॥

विधि का मुक्त जगती का नाथ यह कहकर विरत हो गये थे । फिर
 ब्रह्मा और शिव के देने वाले शिव जनकी प्रणाम करने चले गये थे ॥१५॥
 महा विराट के लोम के छिद्र में ब्रह्माण्ड गोलोक जन में सब विराट् क
 प्रथ में वह क्षद्र विराट् हुआ था ॥१६॥ स्वयं वाले वाला पौत चस्त्र
 धारी, जल की गम्या पर टायन करता हुआ था जितने मुक्त पर खोड़ी सी
 हाथ्य की रेखा थी और वह प्रसन्न सब एवं विश्व स्पी जनार्दन थे ॥१७॥
 उनमें नाभिरहित कयस में कयस से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा हुए थे । ब्रह्मा
 ने जन्म ग्रहण करने पृथ का लक्ष करने वाला होता हुआ वह उस पथ के
 दण्ड पर ध्यान कर रहा था ॥१७॥ बट् पथ में जन्म पाने वाला पथ
 नाभ क दण्ड का मन्त तक नहीं गया था । नाभि में उत्पन्न पथ का भी
 मन्त नहीं मिला तो वह विता यह परम चिन्ता को प्राप्त हुए थे ॥१५॥
 बट् फिर ध्यान स्थान पर आ गया और वह श्रीवृष्ण क चरण कमल का
 ध्यान करने लगा था । इगरे पञ्चाक्षु ध्यान क द्वारा दिव्य चक्षु में उनने
 उम क्षुद्र का दर्शन किया था । १५॥ वह जन्म की शरणा पर ध्यान कर रहे
 थे और ब्रह्माण्ड गोलोक में भावत जिसका लोम छिद्र में ब्रह्माण्ड की और
 पर ईश्वर उसको देना था ॥१६॥ वरुं फिर उमा श्रीवृष्ण का भी दर्शन
 किया था और गाय गोपिका से मन्मन्त्र गोचोक को भी दिया । फिर उमने
 उमका स्तवन किया और वर प्राप्त किया था । इसका स्तनकर उमने नृष्टि
 की थी ॥१७॥

६ यभयुर्ब्रह्मण पुना मानसा सनवादन ।
 ततो रद्रा वपावाञ्च शिवार्थिकादनस्तृत्वा ॥१८॥

वभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः ।
 चतुर्भुजश्च भगवान्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥५९॥
 क्षुद्रस्य नाभिपदमे च ब्रह्म विश्वं ससर्ज सः ।
 स्वर्गमर्त्यञ्चपातालत्रिलोकंसचराचरम् ॥६०॥
 एवंसर्वलौमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च ।
 प्रतिविश्वे क्षुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥
 इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसङ्कीर्तनं शुभम् ।
 सुखदंमोक्षदंसारंभियः श्रोतुमिच्छसि ॥६२॥

फिर सृजन करने के समय ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादि हुए थे । इसके पश्चात् कपाल से रुद्र हुये थे जो शिव के त्रंश स्वरूप और एकादश कहे गये हैं ॥५८॥ क्षुद्र के वाम पार्श्व से पाता अर्थात् पालन करने वाले विष्णु हुये थे जो चार भुजाओं वाले श्वेत द्वीप के निवास करने वाले भगवान् थे ॥५९॥ क्षुद्र के नाभिपदम में उसने ब्रह्मविश्व का सृजन किया था । स्वर्ग-मर्त्य-पाताल चराचर से युक्त तीनों लोकों का सृजन किया था ॥६०॥ इस प्रकार से प्रत्येक लोम कूप में विश्व है और प्रत्येक विश्व में क्षुद्र विराट् है तथा ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि है ॥६१॥ हे वत्स ! यह इस प्रकार से मैंने परम शुभ श्रीकृष्ण का संकीर्तन करके तुमको बताया है जोकि अति सुख का प्रदान करने वाला और मोक्ष का दाता सार रूप है । अब आगे तुम मुझ से और क्या सुनना चाहते हो ? सो मुझसे कहो ॥६२॥



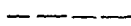
१५ - सवस्वतीपूजाविधानं सन्नश्च ।

गणेशजननीदुर्गारावा लक्ष्मीःनरस्वती ।
 सावित्रीवसृष्टिःत्रिधौ प्रकृतिःपञ्चधास्मृता ॥१॥
 आसीत् पूजा प्रसिद्धाच्च प्रभावः परमाद्भुतः ।
 सुधोपमञ्च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥२॥

प्रकृत्यशा कलायाश्च तासाञ्च चरितशुभम् ।
 नर्वदयामिते ब्रह्मन् सावधान निगामय ॥३॥
 वाणी वसुन्धरागङ्गा पष्ठी मङ्गलचण्डिका ।
 तुलाशीतगसा निद्राम्बाहाम्बराच दक्षिणा ॥४॥
 तेजसा मत्स्यमास्नाश्च रूपा च गुरोर्न च ॥५॥
 साक्षपमासाञ्चरित पुण्यद श्रुनिसुन्दरम् ।
 जावकर्मविराकञ्च तच्च वदयामि सुन्दरम् ॥६॥
 श्रादी सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ।
 यत्प्रसादा-मुनिश्रष्ट मूर्त्यो भवति पण्डित ॥७॥
 इमं श्रद्धाय न सरस्वती की पूजा का विधान श्री मन्त्र का
 निरूपण किया गया है नारायण ने कहा गणेश की माता दुर्गा—राधा-
 लक्ष्मी-सरस्वती श्री मावित्री य इमं मूर्ति की विधि म पाँच प्रकार
 की प्रकृति बनाई गई हैं ॥१॥ उन्नी पूजा प्रसिद्ध थी श्री उसका
 प्रभावपरम श्रद्धुत या श्री इनका चरित तो मुषा क समान परम मधुर
 एव ममस्त मङ्गलो का कारण स्वरूप या ॥२॥ य प्रति क श्रद्ध श्री बना
 के श्रद्ध य श्री उनका चरित श्रद्धन्त शुभ है । हे ब्रह्मन् ! मैं यह सब तुमको
 बताऊँगा श्रद्ध प्रति सावधान होकर इमक श्रद्धा करो ॥३॥ वाणी-
 बभ्रुपरा गङ्गा पष्ठी मंगल चण्डिका-मुनमी-मनया निद्रा-म्बाहा स्वधा-दक्षिणा
 ये सब तेज रा रूप लावण्य मे श्री गुणगण म मने ही समान है ॥४॥ ५॥
 सभा से इनक चरित का सुनो जो पुण्य प्रदान करन वाला श्री श्रवण
 करा म सुन्दर है । जीवो के कर्मों के विपाक को भी बताता हूँ जो परम
 सुन्दर है श्री ज्ञानन क योग्य है ॥६॥ सबक यदि म सरस्वती की पूजा
 श्राद्ध्या न विशेष रूप से निमित्त की है । हे मनि श्रष्ट । जिस सरस्वती
 के प्रसाद से मूर्त्त मनुष्य भी महा पण्डित हो जाया करता है ॥७॥
 श्रद्धा नारद वदयामि काण्वशा वाक्त्रपद्वन्मि ।
 जगमानु सरस्वत्या पूजाविश्वमविनाम ॥८॥
 माधस्यशुक्लञ्चन्या विद्यारम्भदिनऽपि च ।
 पूर्वोत्थि मयमन्-वानवालि मनन शुचि ॥९॥

वभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः ।
 चतुर्भुजश्च भगवान्श्वेतद्वीपनिवासकृत ॥५९॥
 क्षुद्रस्य नाभिपदमे च ब्रह्म विश्वं ससर्ज सः ।
 स्वर्गमर्त्यञ्चपातालंत्रिलोकंसचराचरम् ॥६०॥
 एवंसर्वलौमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च ।
 प्रतिविश्वे क्षुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥
 इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसङ्कीर्तनं शुभम् ।
 सुखदंमोक्षदंसारंभियः श्रोतुमिच्छसि ॥६२॥

फिर सृजन करने के समय ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादि हुए थे । इसके पश्चात् कपाल से रुद्र हुये थे जो शिव के अंश स्वरूप और एकादश कहे गये हैं ॥५९॥ क्षुद्र के वाम पार्श्व से पाता अर्थात् पालन करने वाले विष्णु हुये थे जो चार भुजाओं वाले श्वेत द्वीप के निवास करने वाले भगवान् थे ॥५९॥ क्षुद्र के नाभिपद में उसने ब्रह्मविश्व का सृजन किया था । स्वर्ग-मर्त्य-पाताल चराचर से युक्त तीनों लोकों का सृजन किया था ॥६०॥ इस प्रकार से प्रत्येक लोम कूप में विश्व है और प्रत्येक विश्व में क्षुद्र विराट् है तथा ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि हैं ॥६१॥ हे वत्स ! यह इस प्रकार से मैंने परम शुभ श्रीकृष्ण का संकीर्तन करके तुमको बताया है जोकि अति सुख का प्रदान करने वाला और मोक्ष का दाता सार रूप है । अब आगे तुम सुभ से और क्या सुनना चाहते हो ? सो मुझसे कहो ॥६२॥



१५ - सवस्वतीपूजाविधानं सञ्चश्च ।

गणेशजननीदुर्गारावा लक्ष्मीःसरस्वती ।
 सावित्रीवसुष्टिर्विधौ प्रकृतिःपञ्चधास्मृता ॥१॥
 आसीत् पूजा प्रसिद्धाच प्रभावः परमानुतः ।
 सुधोपमञ्च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥२॥

प्रकृत्यशा कलायाश्च तासाञ्च चरितशुभम् ।
 सर्ववक्ष्यामि ते ब्रह्मन् सावधान निशामथ ॥३॥
 वाणी वसुन्धरागङ्गा पृथ्वी मङ्गलचण्डिका ।
 तुलसीमनसा निद्रास्वाहास्वधाच दक्षिणा ॥४॥
 तेजसा मत्समास्नाश्च स्पर्शा च गुणेन च ॥५॥
 सक्षपमासाञ्चरित पुण्यद श्रुतिसुन्दरम् ।
 जादकर्मविनाकञ्च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥६॥
 आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ।
 यत्प्रसादा-मुनिश्रेष्ठ मूर्ध्नि भवति पण्डित ॥७॥

इस अध्याय में सरस्वती की पूजा का विधान और मन्त्र का निरूपण किया गया है। नारायण ने कहा गणेश की माता दुर्गा—राधा-लक्ष्मी-भरम्वती और सावित्री ये इस मूर्ति की विधि में पाँच प्रकार की प्रकृति बताई गई हैं ॥१॥ उनकी पूजा प्रसिद्ध थी और उसका प्रभावपरम अद्भुत था और इनका चरित तो सुधा के समान परम मधुर एव समस्त मङ्गलो का कारण स्वरूप था ॥२॥ ये प्रकृति के अश और कला के अश थे और उनका चरित प्रत्यन्त शुभ है। हे ब्रह्मन् ! मैं यह सब तुमको बताऊँगा अब प्रति सावधान होकर इसका श्रवण करो ॥३॥ वाणी-वसुधरा गंगा पृथ्वी मंगल चण्डिका-तुलसी-मनसा निद्रा-स्वहा-स्वधा-दक्षिणा ये सब तेज से रूप लावण्य से श्री गुरुगण से मेरे ही समान हैं ॥४-५॥ सक्षेप से इनके चरित को सुनो जो पुण्य प्रदान करने वाला और श्रवण करने में सुन्दर है। जीवों के कर्मों के विपाक को भी बताता हूँ जो परम सुन्दर है और जानने में योग्य है ॥६॥ सबके आदि में सरस्वती की पूजा श्रीकृष्ण न विदोष रूप में निमित्त की है। हे मनि श्रेष्ठ ! जिस सरस्वती के प्रसाद से मूर्ध्नि मनुष्य भी महा पण्डित हो जाया करता है ॥७॥

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वजाबोक्त्रपद्धतिम् ।
 जगन्मातु सरस्वत्या पूजाविधिभमन्विनाम् ॥८॥
 माघस्यगुरुपञ्चम्या विद्यारम्भदिनेऽपि च ।
 पूर्वोऽह्नि सयमकृत्वा तत्राह्नि सयत शुचि ॥९॥

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्व घटं संस्थाप्य भक्तिततः ।
 संपूज्य देवपट्कञ्च नैवेद्यादिभिरेवच ॥१०॥
 गणेशञ्चदिनेशञ्चवर्हि विष्णुं शिवंशिवाम् ।
 संपूज्य संयतोऽग्रेच ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥११॥
 ध्यानेनवक्ष्यमारोण ध्यात्वावाह्यघटेवृधः ।
 ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारेण पूजयेदन्नती ॥१२॥
 पूजोपयुक्तं नैवेद्यं यद्यद्वेदे निरूपितम् ।
 वक्ष्यामिसाम्प्रतं किञ्चिदयथाधीतं यथागमम् ॥१३॥
 नवनीतं दधिक्षीरं लाजाश्र तिललड्डुकम् ।
 इक्ष्मिक्षरसं गुल्लवर्णं पक्कगुडं मधु ॥१४॥
 स्वस्तिकंशंकरां गुल्लान्यस्याक्षतमक्षतम् ।
 अस्त्रिन्नगुल्लान्यस्य पृथुकं गुल्लमोदकम् ॥१५॥
 घृतसंन्यवत्संस्कारैर्हविष्यान्नञ्च व्यञ्जनैः ।
 यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥१६॥
 पिष्टकं स्वस्तिकम्यापि पक्करम्भाफलस्यच ।
 परमान्नञ्च नघृतमिष्टान्नञ्च सुधोपमम् ॥१७॥
 नारिकेलं तदुदकं केसर मूलमाद्रकम् ।
 पक्करम्भाफलं चारु श्रीफलं वदरीफलम् ॥
 कालदेशोज्ज्व पक्कफलं गुल्लं सुनस्कृतम् ॥१८॥
 सुगन्धिं गुल्लपुष्पञ्च सुगन्धिं गुल्लचन्दनम् ।
 नवीनगुल्लवस्त्रञ्च गङ्गञ्च सुमनोहरम् ॥
 माल्यञ्च गुल्लपुष्पाणां सुवल्हारञ्च भूपराम् ॥१९॥
 यद् दृष्टञ्च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम् ।
 तन्नित्योद्य महाभाग भ्रमभङ्गनकारणम् ॥२०॥

नारायण ने कहा—हे नारद ! काण्व शाखा में कही हुई पद्धति को तुमसे कहता हूँ, तुम उत्तका धरणा करो जोकि जगत् की माता

सरस्वती देवी की पूजा की विधि से समुक्त है । ८॥ माघमास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि के दिन में और विद्या का प्रारम्भ होने वाले दिन में भी दिन के पूर्वार्द्ध के समय में समय करके उस दिन में परम समय एवं पवित्र होवे ॥ ९॥ स्नान विधि का सम्पादन करके तथा नित्य कर्म को समाप्त करके भक्ति भाव के साथ घट की स्थापना करनी चाहिये । फिर छै देवों की शर्वा नैवेद्य आदि पूजापचारों के द्वारा करे ॥ १०॥ वे छै देवों के नाम ये हैं—गणेश-दिन के स्वामी सूर्य अग्नि देव-विष्णु-शिव और शिव की प्रिया गौरी इन छै देवों की सर्व प्रथम समर्चा करनी चाहिये । इनका पूजन करके अत्यन्त समय होते हुये फिर आग्ने प्रपत्ने अभीष्ट देव की पूजा करे ॥ ११॥ बुद्ध व्यक्ति का चाहिये कि आग्ने कहे जाने वाले देवता के ध्यान के द्वारा ध्यान करके घट में देवता का आवाहन करे और फिर दुबारा ध्यान करके पुन घटी को सोलह पूजा के उपचारों के द्वारा पूजा करनी चाहिये ॥ १२॥ नैवेद्य पूजा के उपयुक्त होना चाहिये जिसका वेद में भली भाँति निरूपण किया गया है । अब मैं बतलाता हूँ जो भी मैंने आगम के अनुसार थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है ॥ १३॥ नैवेद्यों में नक्षत्रीय दधि-क्षीर-लाजा (खील)- तिल केलङ्क ईस का रस-शुक्ल वर्ण से युक्त अन्य पदार्थ जोकि मिष्ट हो पनाया हुआ-गुड-मधु-स्वास्तिक शंकरा-शुक्ल धान्य का अक्षत (नट्टे हुये) अक्षत-अम्बिन्न शुक्ल धान्य का प्रथम शुक्ल मोहक-घृत और सैन्धव के ससवागे से हविठयाप्त-व्यञ्जो के द्रागजी गेहूँ के चून का पिष्टक जोकि घृत के द्वारा स-माग किया हुआ हो-स्वास्तिक का पिष्टक तथा पके हुये केला के फल का पिष्टक घृत के सहित परमाप्त-सुभा के समान मिष्टान्न नारियल और उसका जल-वे-शर-मूली-भदरख-पका हुआ केला का फल-सुन्दर श्री फल-वदरी फल (बेर)—काल और देश में होने वाले पके हुये फल जो शुक्ल और मली भाँति से सस्कार युक्त हो-इतने प्रकार के नैवेद्य बताये गये हैं । इनमें से यथाशक्ति और यथा साधन समर्पित करे ॥ १४-१८॥ सुगन्ध से युक्त सुक्कन वर्ण वाले पुष्प और सुन्दर गन्ध वाला सुक्कन चन्दन नवीन शुक्ल वस्त्र सुमनाहर शङ्ख - शुक्लवर्ण बाले पुष्पों की माला-शुक्ल हार-भूषण समर्पित करे ॥ १९॥ श्रुति में जो ध्यान

देखा गया है वही ध्यान प्रशस्त है और कानों को श्रवण करने में प्रिय भी होता है। हे महाभाग ! उसे भली भाँति समझ लो जोकि भ्रम के भञ्जन करने का कारण होता है ॥२०॥

सरस्वतीं शुक्लवर्णां मस्मितां सुमनोहराम् ।
 कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ॥२१॥
 वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहराम् ।
 रत्नसारेन्द्रनिर्माणवरभूपणभूपिताम् ॥२२॥
 सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ।
 वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः ॥२३॥
 एवं ध्यात्वा चमूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः ।
 संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दृण्डवद्भुवि ॥२४॥
 येषाञ्चंयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने ।
 विद्याग्भेच्च सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने ॥२५॥
 सर्वोपयुक्तो मूलश्च वैदिकाष्टाक्षरःपरः ।
 येषां येनोपदेशो वा तेषां च मूल एव च ॥
 सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च ॥२६॥
 श्रीं ह्रीं स्वरस्वत्यं स्वाहा ।
 लक्ष्मीमायादिकञ्चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥२७॥
 पुरा नागयणश्चैमं वाल्मीकाय कृपानिधिः ।
 प्रवदी जाल्हीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥२८॥

सरस्वती देवी शुक्ल वर्ण वाली हैं --उनका रूप सुमनोहर है। वह मन्दस्मित से युक्त हैं। उनका शरीर-करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभा जो भी होच कर देने वाला और पुष्ट श्री से युक्त है ॥२१॥ सरस्वती देवी ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि सुरगणों के द्वारा सुपूजित होने वाली हैं ऐसा उनका ध्यान करके प्रार्थना करे कि मुनीन्द्र-मनु और मानवों के द्वारा वन्दित उस देवी को भक्ति के साथ मैं वन्दना करता हूँ ॥२२-२३॥ इन से मूल मन्त्र के द्वारा ध्यान करके विचक्षण पूजक को समस्त पदार्थ उसको

समर्पित कर देना चाहिये । फिर कवच धारण कर अर्थात् कवच का पाठ करके भूमि में दण्ड की भाँति साष्टांग प्रणाम करना चाहिये ॥२४॥ हे मुने ! जिनकी यह इष्ट देवी है उनकी तो यह नित्य क्रिया है । सबका यह विद्यारम्भ के दिन में होनी चाहिये और वर्ष के अन्त में पञ्चमी के दिन होनी चाहिये ॥२५॥ सबका उपयुक्त मूल मन्त्र वैदिक अष्टाक्षर पर है । अथवा जिनको जिस मन्त्र का उपदेश दिया गया हो उनका वही मूल मन्त्र होता है । चतुर्थ्यन्त सरस्वती शब्द होना चाहिये जिसके अन्त में वह्नि जाया हो ॥२६॥ मन्त्र-“श्री ह्री सरस्वत्यै स्वाहा” यही होता है । लक्ष्मी मायादि का यही मन्त्र कल्पवृक्ष है । अर्थात् समस्त मन की इच्छाओं की पूर्ति करने वाला है ॥२७॥ पहिले नारायण ने जोकि कृपा की निधि हैं वात्मीक के लिये पुण्य के क्षेत्र भारत में गङ्गा के तट पर इस मन्त्र को दिया था ॥२८॥

भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्य्यपर्वणि ।

चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥२९॥

भृगवेच ददौ तुष्टो ब्रह्मा वदरिकाश्रमे ।

आस्तिकाय जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदमन्निधौ ॥३०॥

विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥३१॥

शिव कणादमुतये गौतमाय ददौ मुने ।

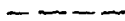
सूर्य्यश्च याजवल्क्याय तथा कात्यायनायच ॥३२॥

शैपः पाणिनयेचैव भरद्वाजाय धीमते ।

ददौ शाकटायनाय सतले वलिससदि ॥३३॥

दैत्य गृह भृगु ने शुरु के लिये सूर्य पर्व पर शुक्र के लिये दिया था और मारीच ने वाक्पति के लिये प्रसन्नता के साथ चन्द्र पर्व पर दिया था ॥२९॥ ब्रह्मा ने परम तुष्ट होकर वदरिकाश्रम में इसी मन्त्र की दीक्षा भृगु को दी थी । जगत्कारु ने क्षीर सागर के समीप आस्तिक के लिये इस मन्त्र का उपदेश दिया था ॥३०॥ विभाण्डक ने मेरु पर्वत पर धीमान् ऋष्यशृङ्ग के लिये इसी मन्त्र का उपदेश प्रदान किया था ॥३१॥ हे मुने ! शिव ने कणाद मुनि गौतम के लिये इस मन्त्र का उपदेश दिया था और

सूर्य ने याज्ञवल्क्य और कात्यायन को यही मन्त्र प्रदान किया था ॥३२॥
भगवान् शेष ने धीमान् पाणिनि को और भरद्वाज को इसका उपदेश दिया
था तथा बलि की संसद में नृत्तल लोक में शाकटायन को दिया था ॥३३॥



१६—याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवः ।

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् ।
महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥१॥
गुरुशापाच्च स मुनिर्हृतविद्यो बभूव ह ।
तदा जगाम दुःखार्त्तो रविस्थानञ्च पुण्यदम् ॥२॥
सप्राप्य तपसा सूर्य्यं कोणाकं दृष्टिगोचरे ।
तुष्टाव सूर्य्यं शोकेन रुगेद च पुनः पुनः ॥३॥
सूर्य्यस्तं पाटयामास वेदवेदाङ्गमीश्वरः ।
उवाच स्तुहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥४॥
तमित्युक्त्वा दीननाथोऽन्तर्हानंचकार सः ।
मुनिः स्नात्वा चतुष्टाव भक्तिन आत्मकन्धरः ॥५॥

इस अध्याय में याज्ञवल्क्य के द्वारा कहा हुआ वाणी देवी के स्तव
का निरूपण किया गया है । नारायण ने कहा—अब तुम वाग्देवता के
कवच का श्रवण करो जोकि समस्त वामनाओं के प्रदान करने वाला है ।
महा मुनि याज्ञवल्क्य ने इस मन्त्र के द्वारा पहिले उसकी स्तुति की थी
॥१॥ वह मुनि गुरु के शाप से हत विद्या वाला हो गया था । उस समय
वह अत्यन्त दुःख से आर्त्ता होकर पुण्य देने वाले सूर्य के स्थान को चला
गया था ॥२॥ तपस्या के द्वारा भगवान् सूर्य देव के पाम पहुँच कर
कोणाक के दृष्टि गोचर होने पर सूर्य देव का स्तवन किया था और शोक
से वारम्बार रुदन किया था ॥३॥ ईश्वर सूर्य देव ने उसको वेद-वेदाङ्गों को
को पढ़ाया था और कहा था कि स्मृति के हेतु के लिये अर्थात् स्मृति

बद्धन के वास्ते भक्ति से वाग्देवी का स्तवन करो ॥४॥ दीनो के स्वामी ने उससे यह कहकर वह फिर अन्तर्धान हो गये थे । और मुनि ने स्नान करके भक्ति - भाव से अपनी कन्धरा को नम्रकर क वाग्देवी सरस्वती की स्तुति की थी ॥५॥

‘कृपा कुरु जगन्मातमामिव हतचेतसम् ।
 गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्ट विद्याहीनञ्च दुःखितम् ॥६॥
 ज्ञान देहि स्मृतिदेहि विद्या विद्याधिदेवते ।
 प्रतिष्ठाकवितादेहि शक्तिशिष्यप्रवाधिकाम् ॥७॥
 ग्रन्थकृतं कशक्तिञ्च सत्शिष्यं सुप्रतिष्ठितम् ।
 प्रतिभासत्सभायाञ्चविवारक्षमता युभास ॥८॥
 लुप्तं सर्वं दैववशात्तवीभूतं पुन कुरु ।
 यथाङ्कुर भस्मनि च करोति देवता पुन ॥९॥
 ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी ।
 सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नम ॥१०॥
 यया विना जगत् सर्वं शश्वद्जीवन्मृतं सदा ।
 ज्ञानाधिदेवीयातस्यैमरस्वर्तं नमोनम ॥११॥
 यया विना जगत्सर्वं मृकमुन्मत्तवत् सदा ।
 वाग्धिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनम ॥१२॥
 हिमचन्दनकुन्दन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा ।
 वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरार्थं नमो नम ॥१३॥
 विसर्गविन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च ।
 तदधिष्ठात्री या देवी भारत्यै ते नमो नम ॥१४॥

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—हू जगत् की माता । हनचिन्त वाले मेरे ऊपर कृपा करा । मेरी गुरु के शाप से स्मृति का भ्रंश हो गया है और मैं विद्या से हीन तथा अत्यन्त दुःखित हूँ ॥६॥ हूँ विद्या की अधिदेवता । शाप मुझे ज्ञान प्रदान करो—स्मृति शक्ति दो और विद्या का

दान करो । प्रतिष्ठा दो—वदित्व शक्ति प्रदान करो जोकि शिष्यों की प्रबोधिका है ॥७॥ ग्रन्थ के रचना करने की शक्ति-सत् शिष्य जो कि नुप्रतिष्ठित हो, मत्पुरुषों की मभा में प्रतिभा और शुभ विचार करने की क्षमता को प्रदान करो ॥८॥ देव वग से जो सब कुछ लुप्त हो गया है उसे पुनः जनीभूत करो जिस प्रकार से देवता भस्म में पुनः अकुर कर देते हैं ॥९॥ जो ब्रह्म के स्वरूप वाली परमा ज्याति रूपिणी मनातनी है और समस्त विद्याओं की अधिष्ठात्री देवी है उन वाग्देवता मरस्वती के लिये मेरा बार-बार नमस्कार है ॥१०॥ जिस देवी के बिना समस्त जगत् सदा जीवित रहता हुआ भी मृत के समान है । जो परम ज्ञान की अधिदेवी है उस मरस्वती देवी के लिये बार-बार मेरा प्रणाम है ॥११॥ जिस वाग्देवी के बिना यह समस्त जगत् सदा मूक और एक उन्मत्त प्राणी की भाँति रहा करता है और वाणी की अधिष्ठात्री देवी है उन वाणी देवी के लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१२॥ हिम (वर्ष) चन्दन-कुन्द (एक श्वेत सुन्दर पुष्प का नाम) इन्दु (चन्द्र) कुमुद कमल (श्वेत पद्म) के महेश वरुणों की अधिदेवी जो मरस्वती देवी है उन प्रथम के लिये मेरा बार-बार-प्रणाम है ॥१३॥ जिसका अधिष्ठान विसर्ग-विन्दु और मानात्रो में होता है उसकी जो अधिष्ठात्री देवी है उन भारती तैरे लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१४॥

‘यया विनात्र संख्याकृत् संख्यां कर्त्तुं न शक्यते ।

कालस्र्यारवस्था या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥१५॥

व्यान्यस्वरूपा या देवी व्याख्याधिष्ठातृदेवता ।

भ्रमासिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥१६॥

स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिश्च द्विगतिस्वरूपिणी ।

प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः ॥१७॥

सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञान पप्रच्छ यत्र वै ।

वभूव जडवत् सोऽपि सिद्धान्तकर्त्तुमक्षमः ॥१८॥

तदा जगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ।

उवाच सततं स्तोत्रं वाणीमिति प्रजापतिम् ॥१९॥

स च तुष्टाव त्वा ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ।

चकारत्त्वत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम् ॥२०॥

जिम देवी के बिना सरया के करने वाला कोई भी सस्या करने को समर्थ नहीं होता है । जो बाल सस्या क स्वरूप वाली है, उन देवी के लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१५॥ व्याख्या के स्वरूप वाली या देवी व्याख्या की अविष्टात्री देवी है और जो भ्रमा के सिद्धान्त क रूप वाली है उस देवी के लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१६॥ जो स्मृति शक्ति-ज्ञान शक्ति और बुद्धि शक्ति के स्वरूप वाली है और जो प्रतिभा और कल्पना शक्ति के रूप वाली है, उस देवी के लिये मेरा बार-बार प्रणाम है । १७॥ जहाँ पर सनत्कुमार ने ब्रह्मा जी से ज्ञान पूछा था । वह भी सिद्धान्त करने में असमर्थ एक जड़ की भाँति हो गया था ॥१८॥ उस समय वह ब्रह्मा श्रीकृष्ण के पास गया था और भगवान् आत्मा ईश्वर श्रीकृष्ण ने प्रजापति से वाणी देवी के स्त्रोत्र का पाठ सतत करने के लिये कहा था ॥१९॥ उस ब्रह्मा ने फिर परमात्मा की आज्ञा से आपका स्तवन किया था और फिर उस ब्रह्मा ने आपके प्रसाद से उत्तम सिद्धान्त करने का सम्पन्न किया था ॥२०॥

। यदाप्रनन्त पप्रच्छ ज्ञानमेकं त्रमुन्वगः ।

। वभूव भूवत् माऽपि सिद्धान्तं कर्तुं मुक्षम ॥२१॥

तदा त्वाञ्च म तुष्टाव सजस्य कश्यपाज्ञया ।

। ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम् । २२॥

ध्यास पुराणसूत्रञ्च पप्रच्छ वाल्मिक यदा ।

मीनीभूतं स मस्मारत्वामेव जगदम्बिकाम् ॥२३॥

तदा चकार सिद्धान्तं लद्वरेण मुनीश्वरः ।

स प्राप निर्मलं ज्ञानं प्रसादध्वमकारणम् ॥२४॥

पुराणसूत्रं श्रुत्वा स ध्यासः कृष्णकुलोद्भवः ।

त्वां सिषेन्न दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे ॥

तदा त्वत्तां वरं प्राप्य स कवीन्द्रो वभूव ह ॥२५॥

तदा वेदविभागञ्च पुराणानि चकार ह ।
 यदा महेन्द्रो पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवाशिवम् ॥२६॥
 क्षणं त्वामेव सांचिन्त्य तस्यैजानं ददौ विभुः ।
 पप्रच्छशब्दशास्त्रञ्च महेन्द्रश्चवृहस्पतिम् ॥२७॥
 दिव्यं वर्षसहस्रञ्च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ।
 तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥
 उवाच शब्दशास्त्रञ्च तदर्थञ्च सुरेश्वरम् ॥२८॥

जिस समय वसुधरा ने अनन्त भगवान् ने एक ज्ञान को पूछा था उस समय वह अनन्त भी कोई मिद्धान्त का निर्णय करने के कार्य में असमर्थ होकर एक मूक (गूंगा) की भाँति हो गया था ॥२१॥ तब कव्यर मुनि की आज्ञा से श्रुति से सत्रस्त होकर आपकी स्तुति की थी और फिर भ्रम के भङ्ग कर देने वाले निर्मल सिद्धान्त को किया था ॥२२॥ जब व्यास महर्षि ने वाल्मीकि से पुराण सूत्र को पूछा था तब वह मोनी भूत हो गया था और जगत् की अम्बिका आपका ही उसने स्मरण किया था ॥२३॥ फिर उस मुनीश्वर ने आपके वर से मिद्धान्त किया था और प्रमाद के ध्वंस का कारण निमल ज्ञान प्राप्त किया था ॥२४॥ कृष्ण कुल में समुत्पन्न उस व्यास ने पुगाण सूत्र को सुनकर आपकी सेवा की थी और पुष्कर में शत वर्ष तक आपका निरन्तर ध्यान किया था । फिर वह उम समय आप से वरदान प्राप्त करके एक महान् कवीन्द्र हो गये थे ॥२५॥ फिर उस व्यास देव ने वेदों का विभाग किया था और पुराणों की रचना की थी । जब महेन्द्र ने शिवा के शिव से तत्त्व-ज्ञान को पूछा था तब उम विभु ने भी एक क्षण के लिये आपका ही संचिन्तन किया था और उसको विभु ने ज्ञान प्रदान किया था । महेन्द्र ने वृहस्पति से शब्द शास्त्र के विषय में पूछा था ॥२६-२७॥ उसने एक सहस्र दिव्य वर्ष तक पुष्कर में आपका चिन्तन किया था । उस समय आप से वरदान एक सहस्र दिव्य वर्ष में प्राप्त करके उसने सुगेश्वर को शब्द शास्त्र और उसका समुचित अर्थ कहा था ॥२८॥

अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीत मुनीश्वरै ॥
 ते च त्वा परिसचिन्त्य प्रवर्त्तन्ते सुरेश्वरि ॥२६॥
 त्व मस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानव ।
 दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभि ॥३०॥
 जडोभूत सहस्रास्य पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुख ।
 या स्तोतु किमह स्तोमितामेकाम्येनमानव । ३१॥
 इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धर ।
 प्रणामानिराहारो रुरोद च मुहुर्मुहु ॥३२॥
 तदा ज्योति स्वरूपामतिनाट्टाप्युवाच तम ।
 सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठञ्चजगामह ॥३३॥
 याज्ञवल्क्यकृत वाणास्तात्रय सयत पठेत् ।
 यत्र वीन्द्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत् । ३४॥
 म । मूर्खश्च दुर्मघो वपमेकञ्च य पठेत् ।
 म पण्डितश्च मेघावी सुकविश्च भवेद्भुवम ॥३५॥

हे सुरेश्वरि ! जिन्होंने शिष्यों का अध्यापन किया था और जिन
 मुनीश्वरों ने स्वयं अध्ययन किया था उन्होंने नली भाँति आपका परिचिन्तन
 करके ही कार्य में प्रवृत्ति की थी ॥२६॥ हे देवि ! आप मुनीन्द्र और मानवों
 के द्वारा अच्छी तरह स्तुति की गई है । देवा और दैत्यों के अधीश्वरों
 तथा ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि के द्वारा भी स्तुति हुई है ॥३०॥ जडो
 भूत इन्द्र पञ्चवक्त्र (शिव) और चतुर्मुख (ब्रह्मा) ने जिसकी स्तुति की
 थी— फिर मैं एक मुख वाला एक मुख से आपकी क्या स्तुति कर सकता
 हूँ ॥३१॥ याज्ञवल्क्य ने इतना कहकर भक्ति के भाव से अपनी कन्धरा
 को भका कर सरस्वती को प्रणाम किया था और निराहार होकर बार-बार
 रुदन किया था ॥३२॥ उस समय ज्योति के स्वरूप वाली वह उमके
 द्वारा न देखी गई होती हुई भी उससे बोली— 'तू अब बहुत अच्छा कवी-दु
 हो जा'— इस इतना कहकर वह फिर वैकुण्ठ लोक को चली गई थी
 ॥३३॥ इस याज्ञवल्क्य मुनि के द्वारा किये गये स्तोत्र को जो कोई सबत

होकर पाठ किया करता है वह निश्चय ही बहुत अच्छा कवीन्द्र-महा वाग्मी (अच्छा बोलने की शक्ति वाला) बृहस्पति के ही समान हो जाया करता है ॥३४॥ जो कोई महान् मूर्ख हो और दुर्मेध (बुद्धि रहित) हो वह एक वर्ष पर्यन्त इसका पाठ करे तो वह महा पण्डित - मेधावी और सुकवि निश्चय ही हो जायेगा ॥३५॥

— — —

१७—पृथिव्युपख्यानम् ।

हरेनिमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च ।
 तस्य पते प्राकृतिकः प्रलयः परितीर्तितः ॥१॥
 प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुन्धरा ।
 जलप्लुतानि विद्वानि सर्वे लानाङ्गराक्षिति ॥२॥
 वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति ।
 सृष्टेर्विधानसमये साविभूता कथं पुनः ॥३॥
 कथं वभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रयाजया ।
 तस्याश्च जन्मकथनं वदमङ्गलकारणम् ॥४॥
 सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णशक्ति श्रुतिः ।
 आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥५॥
 श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
 विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्द्धनम् ॥६॥
 ब्रह्मो केचिद्ब्रह्मन्तीति मधुकैटभमेदया ।
 वभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु ॥७॥

इस अध्याय में पृथिवी का उपाख्यान निरूपित किया गया है । नारद जी ने कहा — हरि के एक निमेषमात्र समय में ही ब्रह्मा का पात हो जाता है अर्थात् उसकी सम्पूर्ण दिव्य आयु एवं कार्यकाल समाप्त हो जाता है । उसके पात होने पर ही प्राकृतिक प्रलय कहा गया है ॥१॥ प्राकृत प्रलय होने

पर कहा गया है कि यह वसुंधरा घट्टट हा जाती है । समस्त विज्व
जन से छुत (मन) हा जाते है और सभी हरि मे लीन हो जाया करते हैं
॥१॥ यह वसुंधरा (पृथ्वी) उम समय तिरोमूना होकर कहीं रहती है
अर्थात् जब यह भूमि घट्टट्य हो जाती है तो उम समय कहीं बनी
जाकर स्थित रहती है ? फिर जब इस सृष्टि का विधान करने का अवसर
आना है तो उम समय यह पृथ्वी कैम अविभूत (प्रकट) हो
जाया करती है ? ॥३॥ वह पृथ्वी फिर किस प्रकार से घना मान्या और
यन् समस्त समुद्रय की आशय और जग वाती हा जाती है ? आप इसके
जन्म का कवन जाकि मङ्गल का कारण है वृथा करे बताइये ॥४॥
श्री नागायग प्रभु न रहा -सबकी आदि सृष्टि में सभी का जन्म धाकरा
से ही हुआ था—ऐसी श्रुति बहती है अथात् वह यही बताता है । समस्त
प्रलयो म आदिर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है—यह भी वेद का कवन
है ॥५॥ अब समस्तमङ्गलो का मङ्गल जो इस वसुधा का जन्म है वह आन
धवण करो । इसका अत्रण करना समस्त विघ्नो का नाश करने वाला—
पापों का प्रकाशक और पुण्यो के वर्धन करने वाला होता है ॥६॥ अथो (
बड़े आश्चर्य की बात है कि कुश्च विद्वान मयुर्कटभ नाम वाले दै-यो क
भेद मे इस पृथ्वी का स्वरूप हुआ था और यह इसी निघ घन्सा है—ऐसा
कहा करने हैं किन्तु अब आप लोग मुझसे इसके विपरीत मत का धवण
करो ॥७॥

ऊचतुस्ती पुग विष्णु तुष्टी युद्धं तेजमा ।
आवा जहि न यदोर्वीपयमासवृत्तित्तिच ॥८॥
तपोजीवनकालेन प्रत्यक्षा च भवेत् स्फुटम् ।
ततो वभूव मेदश्च मरणानन्तरतयो ॥९॥
मेदिनीनि च विस्थातेत्युक्त्वा यंस्तन्मत श्रुणु ।
जलश्रीता कृशा पूर्ववद्वित्तमेदसायन ॥१०॥
कथयामि च तज्जन्म भार्यरु सर्वमम्भतम् ।
पुराश्रुतञ्च श्रु-मुक्त धर्मवक्त्राञ्च पुक्करे ॥११॥

महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् ।
 मलोवभ्रुकालेनसर्वाङ्गव्यापकोध्रुवम् ॥१२॥
 स च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च ।
 कालेन महता तस्माद् वभूव वसुधा मुने ॥१३॥
 प्रत्येकं प्रतिलोम्नाञ्च रूपेषु सा स्थितास्थिरा ।
 आविर्भूता तिरोभूता सचलाचपुनःपुनः ॥१४॥

शुद्ध और तेज से सन्तुष्ट होने वाले वे दोनों विष्णु से बोले—आप दोनों का त्याग मत करो जहाँ यह पृथ्वी जल से संवृत है। उन दोनों जीवन काल में यह स्फुटतया प्रयत्न हो जायगी। फिर इसके अनन्तर दोनों का मरण के पश्चात् मेद हुआ था ॥५-६॥ इसी कारण से यह मे इम नाम से विख्यात हुई है—यह कहकर जिनके द्वारा यह मत हुआ, उ श्रवण करो। क्योंकि जो पहले भेद से वर्द्धित थी वह जल से घात हो कृश हो गई थी ॥१०॥ जब मैं उसका सार्थक और सर्व समस्त जन्म कहता जोकि मैंने पहिले श्रवण किया था—श्रुति (वेद) में जो कहा गया और धर्म के मुँह से पुष्कर में उसका श्रवण किया था ॥११॥ जल में यह महा विराट बहुत अधिक समय तक स्थित रहा तो कालविक्रय के कारण से निश्चय समस्त अङ्ग में व्यापक बहुत अधिक मल हो गया था ॥१२॥ वह मल उसके समस्त लामो के विवरों में प्रवेश कर गया था। हे मुने जब बहुत अधिक काल हो गया तो उसी से यह वसुधा हो गई थी ॥१३॥ प्रति लोमों की प्रत्येक रूपों में स्थित वह स्थिर हो गई थी वह प्रावि (प्रकट) और तिरोभूत (छिपी हुई) और सचल बार-बार हो गई थी ॥१४॥

आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलात् पर्युपस्थिता ।
 प्रलयेचतिरोभूता जलाभ्यन्तरवस्थिता ॥१५॥
 प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ।
 सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपमिता सती ॥१६॥
 हिमाद्रिमरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्राकंसंयुता ।
 ब्रह्मविष्णुशिवाद्यंश्च सुरैर्लोकैस्तथानया ॥१७॥

पुण्य तीर्थममायुक्ता पुण्यभारतसयुता ।
 काञ्चनीभूमिसयुक्ता सर्वदुःखसमन्विता ॥१८॥
 पाताला मप्त तदधस्तूदूर्ध्वं ब्रह्मलोककं ।
 ध्रुवलोकञ्च तत्रैव सर्वविश्वञ्च तत्र वै ॥१९॥
 एव सर्वाणि विश्वानि पृथिव्या निर्मितानि वै ।
 ऊर्ध्वं गोलोकवैकुण्ठी नित्यौ विश्वपरी च तौ ॥२०॥
 नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि च ।
 प्रलये प्राकृते ब्रह्मान् ब्रह्माणश्च निपातने ॥२१॥

सृष्टि के समय में उस जल से आविर्भूत होकर पृथ्वी स्थित हुई थी और प्रलय के काल जल के अन्दर अवस्थित होकर यह पृथिवी तिरोभूत हो गई थी ॥१९॥ प्रत्येक दिश्व में यह पृथ्वी पर्वत और वनो से युक्त होती है और सात मधुद्रो में समन्वित और सात द्वीपो के सहित सती होती है ॥१९॥ इस भूमि में हिमवान् और मेरु पर्वत हैं तथा चन्द्र सूर्य आदि ग्रहों से सयुक्त यह होती है । इसके साथ ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि सुरगण तथा लोक भी हाते हैं ॥१७॥ यह वसुन्धरा पुण्य तीर्थों से समायुक्त थी और इसमें परम पवित्र भारत देश भी था । यह काञ्चनी भूमि सयुक्त थी और समस्त दुर्गों में परिपूर्ण है ॥१८॥ इस भूमि के आधो भाग में सात पाताल हैं और ऊर्ध्व भाग में ब्रह्मलोक ध्रुवलोक और वहाँ पर ही सर्व विश्व है ॥१९॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण विश्व इस पृथ्वी में निर्मित है । ऊपर गोलोक और वैकुण्ठ लोक हैं जो नित्य हैं और वे दोनों विश्व पर हैं ॥२०॥ समस्त विश्व नश्वर (नाशवान्) और कृत्रिम होते हैं । हे ब्रह्मन् ! जिस समय में ब्रह्मा का निपातन होता है और प्राकृत प्रलय होता है उस समय में सभी विश्व भी नष्ट हो जाया करते हैं ॥२१॥

महाविराडादिसृष्टौ सृष्ट कृष्णेन चात्मना ।
 नित्ये स्थित म प्रलये वाष्ठाकागेश्वरं सह ॥२२॥
 क्षित्वाधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजितासुरं ।
 मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च ॥२३॥

विष्णोर्वराहस्य पत्नी सा श्रुतिसम्मता ।
 तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः ॥२४॥
 पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही ।
 वाराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥२५॥
 तस्याः पूजाविधानञ्च प्यधश्चोद्धरणक्रमम् ।
 मंगलं मङ्गलस्यापि जन्म व्यासं वद प्रभो ॥२६॥
 वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा सस्तुतः पुरा ।
 उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्ष रसातलात् ॥२७॥
 जले नां स्थापयामास पद्मपत्रं यथार्णवे ।
 तत्रैव निमंम ब्रह्मा सर्वविश्वं मनोहरम् ॥२८॥

आदि मृष्टि में परमात्मा कृष्ण ने महा विराट् का सृजन किया था । जब प्रलय का समय होता है, उस समय नित्य वह दिशा-आकाश और ईश्वर के साथ स्थित रहता है ॥२२॥ पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी सुरों के द्वारा वाराह में वह पूजित हुई थी और मनुओं के द्वारा-मुनियों से-विश्वों के द्वारा और गन्धव आदि के द्वारा भी पूजित होती है ॥२३॥ वह वराहरूप वाले विष्णु की पत्नी है जोकि श्रुति से सम्मत है । उसका पुत्र सुयश वाला मङ्गल तमन मंगल जानने के योग्य है ॥२४॥ देवपि नारद ने ने कहा—वाराह कल्प में यह मही देवों के द्वारा किस रूप से पूजी गई है और वाराह के द्वारा सबके साथ वारा ही पूजी गई थी जो कि सती सबका आश्रय है ॥२५॥ हे प्रभो ! उसकी पूजा का विधान और नीचे का उद्धरण क्रम तथा मंगल का मंगल जन्म भी विस्तार पूर्वक कहिये ॥२६॥ नारायण ने कहा—पहिले समय में ब्रह्मा के द्वारा वाराह में वराह का स्तवन किया गया था और उसने हिरण्याक्ष का वध करके रसातल से इस मही को उद्धार किया था ॥२७॥ फिर उस पृथ्वी को पद्म पत्र की भाँति सागर पर स्थापित कर दिया था । वहाँ पर ही ब्रह्मा ने मनोहर सर्व विश्व का निर्माण किया था ॥२८॥

सर्वाकारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता शुभम् ।
 मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च मानवादिभिः ॥३५॥
 अम्युवाचित्यागदिने गृहारम्भप्रवेशने ।
 वापीतडागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥३६॥
 तव पूजां करिष्यन्ति मद्वरेण सुरादयः ।
 मूढा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकञ्च ते ॥३७॥
 वहाभि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया ।
 लीलामात्रेण भगवन् विश्वञ्च सचराचरम् ॥३८॥
 मुक्तां शुक्तिं हरेरर्च्यां शिवलिङ्गं शिलान्तथा ।
 शङ्खं प्रदीपं रत्नञ्च माणिक्यंहीरकंमणिम् ॥३९॥
 यज्ञसूत्रञ्च पुष्पञ्च पुस्तकं तुलसीदलम् ।
 जपमालां पुष्पमालां कर्पूरञ्च सुवर्णकम् ॥४०॥
 गौरोचनां चन्दनञ्च शालग्रामजलन्तथा ।
 एतान् वोढुमशक्ताहं क्लिप्ता च भगवन् शृणु ॥४१॥

हे शुभे ! सब मुनि-मनु-देव-सिद्ध और मानव आदि के द्वारा शुभ पूर्वक भली भाँति समर्पित की हुई तुम अब सबका आधार हो जाओ ॥३५॥ यहाँ से आगे सुर आदि सब अम्युवाचि त्याग दिन में, गृहारम्भ में, गृह प्रवेश में, वापी और तडाग के आरम्भ में, गृह में और कृषि के काम में सर्वत्र मेरे वरदान से तेरी पूजा किया करोगे । जो मूढ़ तेरी पूजा भ्रम-मद वश किसी भी कारण से नहीं करेंगे वे निश्चय ही नरक में जायेंगे ॥३६-३७॥ वसुधा ने कहा—मैं आपकी आज्ञा से वाराह रूप सब का वहन न करूँगी । हे भगवन् ! मैं लीला मात्र से ही सचराचर विश्व का वहन करूँगी ॥३८॥ मुक्ता-शक्ति जोकि हरि की अर्चना के योग्य हैं, शिवलिङ्ग-शिला-शङ्ख-प्रदीप-रत्न-माणिक्य-हीरा-मणि - यज्ञ सूत्र - पुष्प - पुस्तक - तुलसी दल-जयमाला-पुष्पमाला - कर्पूर-सुवर्ण - गौरोचना-चन्दन-शालग्राम जल इन सबके वहन करने में असमर्थ हूँ । हे भगवान ! मैं क्लेश से युक्त सबके वहन करने से होऊँगी । यह मेरी प्रार्थना आप श्रवण करें ॥३९-४१॥

पृथिवी देवी की वराह ने पूजा की थी । इसके पश्चात् ब्रह्मा के द्वारा पृथ्वी का पूजन किया गया था और उसके बाद पहिले पृथु ने इसका अर्चन किया था ॥४७॥ इसके अनन्तर समस्त मुनीन्द्र-मनु-श्रीर नारद आदि के द्वारा पृथ्वी की अर्चना की गई थी । हे नारद ! उसका ध्यान-स्तवन और मन्त्र को मैं तुमसे कहता हूँ । तुम इसका श्रवण करो ॥४८॥ पहिले विष्णु ने—“ॐ ह्रीं श्रीं वां व सुवायै स्वाहा” —इस मन्त्र से पृथ्वी का पूजन किया था ॥४९॥

श्वेतचम्पकवर्णाभि शतचन्द्रसमप्रभाम् ।
 चन्दनोक्षिप्तसर्वांगी सर्वभूषणभूषिताम् ॥५०॥
 रत्नाधारां रत्नगर्भा रत्नाकरसमन्विताम् ।
 वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे ॥५१॥
 ध्यानेनानेन सा देवी सर्वेश्च पूजिता भवेत् ।
 स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेवच ॥५२॥
 यज्ञशूकरजाया च जयं देहि जयावहे ।
 जये जये जयाधारे जयशोले जयप्रदे ॥५३॥
 सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते ।
 सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे ॥५४॥
 सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे ।
 सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे ॥५५॥
 मंगले मंगलाधारे मंगल्यमंगलप्रदे ।
 मंगलार्थे मंगलांशे मंगलं देहि मे भवे ॥५६॥
 भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिरालपरायणे ॥
 भूमिप हृङ्गाल्पे भूमि देहि च भूमिद ॥५७॥
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं तां संपूज्य च यः पठेत् ।
 कोटि कोटि जन्मजन्मसभवेद्भूमिपेश्वरः ॥५८॥
 भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः ।
 भूमिदानहरात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥५९॥

करती जाती है मरिचक २२ से २५ ॥ ५२ ॥ मरिचक से जो गुण प्राप्त
 है। जो पृथ्वी देवी का प्रथम कर्तव्य है उस लीज का पाठ करना है वह
 जाती है। है मरिचक १ भाग मरिचक देव ॥ ५७ ॥ यह स्त्रीय मरिचक प्रथम
 शरीर मरिचक को प्रदाता है। काय मरिचक (मरु) क शरीर को
 प्रदान करे। ५६ ॥ है मरु । भाग मरिचक को प्रदान करने वाली को प्रदाता है
 करने वाली है। मरिचक मरिचक - मरिचक से युक्त है मरु । मरु काय
 भाग प्रदान करे, मरु को भाग दे शरीर मरु प्रदान मरु को प्रदान
 करने वाली है। है मरु । भाग प्रदान मरु को प्रदान करने वाली है ॥ ५५ ॥
 मरु मरु को प्रदान करने वाली है। काय से मरु मरु को प्रदान
 ॥ ५३-५४ ॥ भाग मरु को प्रदान करने वाली को भाग दे शरीर मरु से युक्त है
 वाली है। है मरु । है मरु । मरु मरु मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करे
 भाग मरु को प्रदान करे मरिचक से मरिचक है। मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान
 प्रदान करने वाली है मरु को भाग देकर वाली । है मरु मरिचक ।
 है मरु को भाग देकर वाली । है मरु को भाग देकर वाली । है मरु को
 को भाग देकर वाली । है मरु को भाग देकर वाली । है मरु को भाग देकर वाली ।
 करे मरु से युक्त है ॥ ५२ ॥ मरु से युक्त है मरु - मरु मरु
 है मरु । मरु मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान
 ॥ ५१ ॥ मरु मरु को प्रदान करने वाली से युक्त है मरु को प्रदान करने वाली है।
 मरिचक वाली, मरु मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली है।
 मरु को प्रदान करने वाली (मरु) से मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली
 मरु से मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली, मरु (मरु) से मरु
 मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान
 को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान
 पृथ्वी को प्रदान करने वाली से मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान

मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान
 मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान
 मरु को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान करने वाली को प्रदान

होता है वैसा ही पुण्य मनुष्य इस स्तोत्र के पाठ से प्राप्त किया करता है । भूमि के दान का हरण करने से जो पाप होता है उससे वह इसके पाठ करने से मुक्त हो जाता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥५९॥ जो भूमि में वीर्य के त्याग करने से पाप होता है उससे भूमि में दीपादि के स्थापन से उस पाप से मुक्त होता है और हे मुने ! प्राज्ञ पुरुष इस स्तोत्र के पाठ करने से भी मुक्त हो जाता है ॥६०॥ इस स्तोत्र के पाठ करने से मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ के पुण्य को प्राप्त करता है, इस में कुछ भी संशय नहीं है ॥६१॥

१८—गङ्गोपाख्यानम् ।

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानं अतीवसुमनोहरम् ।
 गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥
 भारतं भारतीशापाजगाम सुरेश्वरी ।
 विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीसती ॥२॥
 कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा ।
 तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदंशुभम् ॥३॥
 राजराजेश्वरः श्रीमान् सगरः सूर्यवंशजः ।
 तस्य भार्या च वैदर्भीशैव्या च द्वेमनोहरे ॥४॥
 सत्यस्वरूपः सत्येष्टः सत्यवाक् सत्यभावनः ।
 सत्यधर्मविचारज्ञः परं सत्ययुगोद्भव ॥५॥
 एककन्या चैकपुत्रो बभूव सुमनोहरः ।
 असमञ्जा इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्द्धनः ॥६॥
 अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी ।
 बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य च वरेण च ॥७॥

तपश्चकारासमञ्जा गङ्गानयनकारणम् ।

तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥

दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणम् ।

तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥१३॥

अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणम् ।

तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१४॥

एक सौ वर्ष पूरे समाप्त हो जाने पर इसने एक मांस के पिण्ड को प्रसूत किया था । उसे देख कर इसने शिव का ध्यान किया और यह बार-बार ऊँचे स्वर से रुदन करने लगी यी ॥५॥ उस समय भगवान शम्भु एक ब्राह्मण के रूप में उसके पास गये थे । उसने इस पिण्ड का संविभाजन कर साठ हजार खण्ड कर दिये थे ॥६॥ वे सब खण्ड महान बल और पराक्रम वाले पुत्र हो गये थे । जिनके शरीर ग्रीष्म काल के मध्याह्न समय के सूर्य के प्रभा से सनान प्रभा से युक्त थे ॥१०॥ वे सभी पुत्र कपिल ऋषि की कोप की दृष्टि से भस्मसात हो गये थे । यह सुनकर राजा ने रुदन किया था और इनके शोक से मरण को प्राप्त हो गया था ॥११॥ फिर असमञ्जा ने गंगा के यहाँ लाने के कारण तपस्या की थी । उसने एक लाख वर्ष तक तप किया था और अन्त में काल के योग से वह मरण को प्राप्त हो गया था ॥१२॥ उसका पुत्र दिलीप हुआ था । उसने भी गङ्गा को लाने के निमित्त तपस्या एक लाख वर्ष तक की थी । वह भी राजा अन्त में विफल ही रहकर लोकान्तर में चला गया था ॥१३॥ फिर इसका पुत्र अंशुमान नाम वाला हुआ था । इसने भी गंगा के यहाँ लाने के लिये एक लाख वर्ष तक तप किया था और अन्त में काल के योग से वह मर गया था ॥१४॥

भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः ।

वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥१५॥

तपः कृत्वा लक्षवर्षं गंगानयनकारणम् ।

ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१६॥

उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्ट्वा सुमनोहराम् ।
 कुर्वती स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥२३॥
 भारतं भारतीशापात् गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ।
 सगरस्यसुतान्सर्वान्पूतान्कुरुममाज्ञया ॥२४॥
 तत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्तिमममन्दिरम् ।
 विभ्रतो दिव्यमूर्त्तिन्तेदिव्यस्यन्दनगामिनः ॥२५॥
 मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः ।
 समुच्छिद्यकर्म भोगंकृतंजन्मनि जन्मनि ॥२६॥
 कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत् कृतं नृणाम् ।
 गंगायाःस्पर्शवातेनतन्नश्यतिश्रुतौश्रुतम् ॥२७॥
 स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ।
 मीषलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् ।
 शतकोटिजन्मपापं नश्यतीतिश्रुती श्रुतम् ॥२८॥

उस समय परमात्मा के स्मरण करने से गङ्गा वहाँ पर आ गई थीं और उसने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया था तथा उनके आगे करबद्ध होकर स्थित हो गई थी ॥२२॥ उस परम मनोहर स्वरूप वाली को देखकर भगवान ने उससे कहा था जो दिव्य पुरुष की स्तुति कर रही थी और पुलकों से अञ्चित शरीर वाली थीं ॥२३॥ श्रीकृष्ण बोले—हे सुरेश्वरि ! तुम भारती के शाप से शीघ्र ही भारत में चली जाओ । मेरी आज्ञा से समस्त राजा सगर के पुत्रों को पवित्र कर दो ॥२४॥ तेरे स्पर्श की हुई वायु से वे पवित्र होकर फिर मन्दिर में चले जायेंगे । वे तेरे स्पर्श मात्र से ही दिव्य मूर्त्ति धारण कर दिव्य स्पन्दन (रथ) के द्वारा गमन करने वाले होंगे ॥२५॥ इसके अनन्तर वे पार्षद होंगे जो सदा निरामय होकर रहेंगे । आपने जन्मों में किये हुये जो कर्मों के भोग हैं उनका सबका वे उच्छेदन कर देंगे ॥२६॥ भारत में करोड़ों जन्मों में जो पाप मनुष्यों के किये हुये हैं वे सम्पूर्ण गंगा के स्पर्श वाली वायु से ही नष्ट हो जाया करते हैं—ऐसा श्रुति (वेद) में सुना गया है । स्पर्शन और दर्शन से देवी का दश गुना पुण्य होता है ॥२७॥

आवश्यक है और इस समय राजेन्द्र की तपस्या से भी वहाँ जाना है किन्तु वहाँ पर पापी लोग मुझे जो भी कोई पापों को देंगे वे पाप मेरे कैसे नष्ट होंगे ? हे प्रभो ! इसका भी कृपाकर कोई उपाय मुझे बता दीजिये ॥३२-३३॥ मेरी भारत में कितने समय तक स्थिति रहेगी और फिर वहाँ से मैं किस समय पुनः विष्णु के परम पद को प्राप्त करूँगी ? ॥३४॥ मेरा जो भी कुछ अन्य इच्छित मनोरथ है उसे प्राप्त सर्वज्ञ सभी जानते हैं । आप तो सबके अन्तरात्मा में स्थित रहने वाले हैं और सर्वज्ञ हैं । हे प्रभो ! इस उपाय को भी बताने की कृपा करें ॥३५॥

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि ।
 पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदोर्भवत्यति ॥३६॥
 ममैवांशसमुद्रश्च त्वञ्च लक्ष्मीस्वरूपिणी :
 विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमो गुणवान् भुवि ॥३७॥
 यावलयः सन्ति नद्यश्च भागत्याद्याश्च भारतं ।
 सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरने ॥३८॥
 अद्य प्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम् ।
 वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥३९॥
 नित्यं वारिण्यिना सार्द्धं करिष्यसिरहोरतिम् ।
 त्वमेवरसिक्कादेवोरसिकेन्द्रेणसयुता ॥४०॥
 त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रंणभगीरथकृतेन च ।
 भारतस्थानजना सर्वपूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥४१॥
 कौथुमोक्तेनध्यानेनध्यात्वात्त्वां पूजयिष्यति ।
 यः स्तीतिप्रणमेद्वित्यंसोऽश्वमेधफलंभेत् ॥४२॥
 गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानांशतैरपि ।
 मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंसगच्छति ॥४३॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे गंगे ! हे सुरेश्वरि ! मैं तेरे समस्त वाञ्छित को जानता हूँ । यह तेरा पति रुद्र रूप लवणोद हो जायगा । यह समुद्र

देवपि नारद ने कहा—किस ध्यान से, किस स्तोत्र से और कौनसी पूजा के क्रम से राजा ने पूजा की थी, हे देवों के ज्ञाता विद्वानों में परम श्रेष्ठ ! इसे बताने की कृपा कीजिये ॥४४॥ श्रीनारायण बोले—स्नान करके-नित्य कर्म सम्पादन करके और धुले हुये शुद्ध दो वस्त्र धारण करके, छै देवों का प्रति संयत हो भक्तिभाव के साथ भली भाँति पूजा करे । उन छै देवों में गरुडेश सूर्य देव-अग्नि-विष्णु-शिव और गौरी ये होते हैं । वही इसके पूजन करने का अधिकारी होता है ॥४६॥ गरुडेश का पूजन विष्णों का विनाश करने के लिये, सूर्य का यजन निष्पाप होने के लिये, अग्नि का अर्चन अपनी शुद्धि के वास्ते और भगवान विष्णु की पूजा मुक्ति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को अर्चना करनी चाहिये ॥४७॥ ज्ञान के ईश शिव का पूजन ज्ञान प्राप्त करने के लिये करे । प्राज्ञ पुरुष इन सब की प्राप्ति किया करता है । इसके विपरीत अन्यथा अर्थात् विरुद्ध फल मिलता है ॥४८॥ हे नारद ! कौथुम के द्वारा कथित ध्यान के द्वारा इसका ध्यान किया था । उसे तत्त्व से तुम श्रवण करो । कौथुमोक्त ध्यान समस्त पापों का नाश करने वाला होता है ॥४९॥ हे नारद ! और कौथुम के द्वारा कहा हुआ स्तोत्र जोकि ब्रह्मा और विष्णु का सम्वाद है मैं उसे बतलाऊँगा । यह परम पुण्य का प्रदान करने वाला तथा पापों का हनन करने वाला है ॥५०॥

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्प्रभो ।
 विष्णोः विष्णुपदीस्तोत्रं पापधनं पुण्यकारणम् ॥५१॥
 शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गद्रवोद्भवाम् ।
 राधांगद्रवसम्भूतां तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५२॥
 यज्जन्मसृष्टेरादौच गोलोके रासमण्डले ।
 सन्निधाने शङ्करस्य तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५३॥
 गोवैर्गोपीभिराकीर्णेशुभे राधामहोत्सवे ।
 कार्तिकीपूर्णिमाजातां तांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥५४॥

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये त्र्यङ्गुणा ततः ।
 आवृता चन्द्रलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६१॥
 पट्टिपहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः ।
 आवृता सूर्यलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६२॥
 लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्येचपङ्गुणा ततः ।
 आवृता सत्यलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६३॥
 दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ।
 आवृता या तपोलोकं तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६४॥

जो फिर बीस लाख योजन के विस्तार वाली है और दीर्घता में उससे भी पचगुनी है तथा शिवलोक को समावृत किये हुये है, उस गंगा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६१॥ जो छह योजन वाली है और दीर्घता में दश गुनी है तथा इन्द्र लोक में मन्दाकिनी नाम वाली है, उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६२॥ जो एक लाख योजन विस्तार वाली और दीर्घता में सतगुनी है तथा ध्रुव लोक को आवृत करने वाली है, उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६३॥ जो एक लाख योजनों के विस्तार से युक्त है और दीर्घता में पङ्गुणा है एवं चन्द्र लोक को आवृत करने वाली है उस गंगा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६४॥ जो देवी साठ हजार योजन के विस्तार से सन्वित है एवं दीर्घता में दशगुनी है तथा सूर्य लोक को आवृत करने वाली है, उस गंगा को प्रणाम करता हूँ ॥६५॥ जो एक लाख योजन के विस्तार से मयुत एवं दीर्घता में छह गुणी है और सत्य लोक को आवृत करने वाली है, उस गंगा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६६॥ जो देवी दस लाख योजन के विस्तार से विस्तीर्ण है और दीर्घता में पचगुनी है तथा तपोलोक को समावृत किये हुये है, उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६७॥

नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संयुज्य च मुरेश्वरोन ।

अश्वमेधफलं नित्यं लभते ताव सशयः ॥६८॥

कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्यःतपस्विनी ।
 केनवानपमासाचसप्रापप्रकृतेः परम् ॥२॥
 मनुश्चदक्षमार्वणिःपुण्यवान्त्रैःपुण्यवःशुचिः ।
 यशस्वी कीर्त्तिमांश्चैवविष्णोरशसमुद्भवः । ३॥
 तत्पुत्रो धर्मसार्वणिर्धर्मिष्ठो वैष्णवःशुचिः ।
 तत्पुत्रो विष्णुमार्वणिर्वैष्णवश्चजितन्द्रियः ॥४॥
 तत्पुत्रा देवमार्वणिः विष्णुव्रतपरायणः ।
 तत्पुत्रो राजसार्वणिः महाविष्णुपरायणः ॥५॥
 वृषध्वश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः ।
 यस्याश्रमे स्वयं शम्भुरासीद्दैवयुगत्रयम् ॥६॥
 पुत्रादपि परस्नेहो नृपे तरिमन् त्रिवस्य च ।
 न च नारायणामेनेनचलदयीं सरस्वतीम् ॥७॥

इस अध्याय में तुलसी देवी के उपाख्यान का निरूपण किया जा
 है । देवर्षि नारद ने कहा— तुलसी साध्वी नारायण की । य कैसे ई थी
 यह कहाँ समुत्पन्न हुई थी और पूर्व जन्म में इसका निवास कहाँ पर था
 ॥१॥ यह तुलसी किसके कुल में उद्भूत हुई थी और परम तपस्विनी क
 किसकी कन्या थी । इनने कौन सा ऐसा अद्भूत तप किया था जिसके प्रस
 से इसने प्रकृति से भी पर की प्राप्ति की थी ॥२॥ भगवान नारायण ने
 कहा—परम वैष्णव, महा पुण्य वाला और अग्नि शुचि दक्ष सार्वणि मनु था
 जो बहुत ही यशस्वी-कीर्त्तिमान् तथा विष्णु के अंश से उत्पन्न होते वा
 था ॥३॥ इस का पुत्र धर्म सार्वणि हुआ था जो परम धार्मिक-वैष्णव और
 शुचि था । इसका पुत्र परम वैष्णव एव जिनेन्द्रिय विष्णु सार्वणि नाम
 वाला था ॥४॥ विष्णु सार्वणि का पुत्र विष्णु व्रत परायण देव सार्वणि
 हुआ था । इसका पुत्र राज सार्वणि हुआ था जो महान् विष्णु परायण
 हुआ था ॥५॥ इसका पुत्र वृषध्वज हुआ । यह वृषध्वज विष्णु का परायण भव
 था जिसके आक्षम में साक्षात् स्वयं शम्भु तीन दैवयुगों तक रहे थे ॥६॥
 भगवान् शिव का उस राजा में पुत्र से भी अधिक स्नेह था , उस राजा ने
 भी नारायण-लक्ष्मी और सरस्वती किसी को भी नहीं माना था ॥७॥

तालु भाग शुष्क हो गये ॥१३॥ वे सब उस समय परम भयभीत होकर सर्वेश्वर नारायण की शरण में गये थे । उन सबने वहाँ पहुँच कर मस्तक से नारायण का प्रणाम किया था और बार-बार सब उनका स्तवन करने लगे थे और उस समय तबने भगवान् हरि से अपने भय का कारण निवेदन कर दिया था ॥१४॥

नारायणश्च कृपया तेभ्यो हि अभयं ददौ ।

स्थिरा भवतहेभोताभयकिवोभयि स्थिते । १५॥

स्मरन्ति येयत्रतत्रमाविपत्तौ भयान्विताः ।

तांस्तत्रगतवारक्षामिचक्रहस्तस्त्वरावितः । १६॥

पाताहं जगतां देवाः कर्ताहं सततं सदा ।

रूढाच्च ब्रह्मरूपेण सहसा शिवरूपतः ॥१७॥

शिवोऽहत्त्वमहञ्चापि सूर्योऽह् शिगुणात्मकः ।

विधायनानारूपञ्च करोमि सृष्टिपालनम् । १८॥

यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः ।

अद्यप्रभृति वो नास्ति मद्वरात् शङ्कराद्भयम् ॥१९॥

भगवान् नारायण ने कृपा करके उन सबको अभय प्रदान किया था । नारायण ने कहा—आप सब लोग स्थिर हो जाइये । मेरे स्थित होने पर आपको क्यों भय हो रहा है ॥१५॥ जो भी जहाँ कहीं पर मेरा स्मरण किया करते हैं जबकि किसी विपत्ति ने ग्रस्त होकर भय सन्निवृत हो जाया करते हैं तो मैं हाथ में चक्र धारण कर बड़ी शीघ्रता से युक्त हो वहीं पर जाकर उनकी रक्षा किया करता हूँ ॥ १६॥ हे देवों ! मैं जगत्तां का सदा पालन करने वाला हूँ और ब्रह्मा क रूपा सृजन करने वाला तथा शिव के रूप में संहार करने वाला हूँ ॥१७॥ मैं शिव हूँ, मैं तू हूँ और मैं सूर्य हूँ, इस तरह त्रिगुणात्मक हूँ । मैं नाम-रूपा को धारण करके सृष्टि पालन करता हूँ ॥१८॥ तुम लोग सब जाओ । आपको अब कहीं से भी भय नहीं होगा । आज से लेकर मेरे वरदान से शङ्कर से कोई भय नहीं है ॥१९॥

इये नृत्य एवं गान को देखने वाले-प्रसन्नता मन्द मुस्कान वाले, परमात्मा, ईश्वर और भक्तों के ऊपर अनुग्रह से युक्त विग्रह वाले थे ॥२४-२५॥ ऐसे सुन्दर स्वरूप वाले नारायण को महादेव ने प्रणाम किया और ब्रह्मा को भी प्रणाम किया था । भय से परम भीत सूर्य ने भक्ति से चन्द्र शेखर को प्रणाम किया था ॥२६॥ कश्यप ऋषि ने परम भक्ति भाव से उनको प्रणाम किया था तथा उनका स्तवन किया था । फिर शिव ने नारायण की स्तुति करके सुखासन पर अपनी रिथति की थी ॥२७॥

सुखासनेसुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम् ।
 श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्पदै ॥२८॥
 अक्रोधसत्त्वसंसर्गात् प्रसन्नं सस्मितंमुदा ।
 स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम् ॥२९॥
 तमुवाच प्रसन्नात्मा प्रसन्नं सुरसंसदि ।
 पीयूषतुल्यं मधुरं वचनं सुनमोहरम् ॥३०॥
 अत्यन्तमुपहास्यञ्चशिवप्रश्नं शिवेशिवम् ।
 लौकिकं वैदिकं प्रश्नं त्वांपृच्छामितथापिशम् ॥३१॥
 तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
 सम्पत्प्रश्नं तपःप्रश्नमयोग्यं त्वाञ्च साम्प्रतम् ॥३२॥
 ज्ञानाधिदेवे सर्गज्ञे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा ।
 निरापदि विपत्प्रश्नमलं मृत्युञ्जये हरे ॥३३॥
 त्वामेव वाग्धनं प्रश्नमलं स्वाश्रयमागमे ।
 आगतोऽसिकथं त्रस्त इत्येवं वद कारणम् ॥३४॥

उस समय सुखप्रद आसन पर सुख पूर्वक संस्थित-विश्रान्त-विष्णु पार्श्वदों के द्वारा श्वेत चमरों की वायु से सेवित सत्व के संसर्ग से क्रोध रहित-प्रसन्न और आनन्द से मन्द मुस्कान वाले पांच मुखों से विभु, पर नारायण की स्तुति करने वाले चन्द्र शेखर से सुरों के संसद में प्रसन्न आत्मा वाले भगवान् अमृत के तुल्य मधुर-मनोहर वचन बोले थे ॥२८-३०॥ श्री भगवान् ने कहा—यह अत्यन्त ही उपहास के योग्य है कि शिव में भी शिव

श्री महादेव ने कहा—वृषभान राजा भूत परम भक्त है श्री
 बड़े प्राण से भी शक्ति प्राप्त है। उसका इस संप्रति ने प्राप्त है
 भूरे भयभीत करण का कारण है ॥१५॥ वृत्त वरु भूरे भक्त के कारण
 कारण शक्ति से संप्रति की शक्ति समुचित हो गया है। बड़े बड़े
 प्राण से भी शक्ति प्राप्त है ॥१६॥ शक्ति का कारण है

श्रीदेवस्त्य भूरेभ ॥१६॥ श्रीशक्तिदेवता ॥१६॥
 कि भू भक्तस्य शक्तिरा त-भू शक्ति जगत्प्रदा ।
 देवैर्गर्भितशक्तिभयतः सर्वमङ्गलदाया ॥१७॥
 शक्तिदेव शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ।
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥१८॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥१९॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२०॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२१॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२२॥

शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२३॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२४॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२५॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२६॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२७॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२८॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥२९॥
 शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः शक्तिराजः ॥३०॥

कर लेते हैं, चाहे वाणी से या ध्यान से किसी तरह से शरणापन्न हो गये वे तो फिर निरापद हो जाया करते हैं और उनके द्वारा तो निश्चङ्क रूप से जरा एवं मृत्यु जीत लिये जाते हैं ॥३७॥ जो आपके चरण कमल में साक्षात् रूप से शरणापन्न हो जावें उनके विषय में तो मैं क्या कहूँ, वे तो निश्चिन्त रूप से पूर्णतया निर्भय हो ही जाते हैं। हरि की तो स्मृति ही अभय देने वाली और सदा समस्त मंगलों की दात्री हुआ करती है ॥३८॥ अब मेरे भक्त का क्या हाल होगा। हे जगत के प्रभो! मुझे यही वता देने की कृपा करें क्योंकि इस समय सूर्य के शाप के कारण यह तो विचारा श्री हत एवं मूढ हो गया है। इसका कल्याण कैसे होगा ? ॥३९॥

कालोऽतियातो देवेन युगानामकर्षितः ।

वैकुण्ठे घटिकाद्धेन शीघ्रं ययौ नृपालयम् ॥४०॥

वृषध्वजो मृतः कालाद् दुर्निवार्यात् ।

हंसध्वजश्च तत् पुत्रो मृतःसोऽपि श्रिया हतः ॥४१॥

तत् पुत्रो च महाभागी धर्मध्वजकुशध्वजौ ।

हतश्रियो सूर्यशापात्तौ च परमवैष्णवौ ॥४२॥

राज्यभ्रष्टौश्रियाभ्रष्टौ कमलातापसावुभौ ।

तयोश्चभार्य्ययोर्लक्ष्मीः कलयाचजनिप्यात ॥४३॥

सम्पद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठो भविष्यतः ।

मृतस्ते सेवकःशम्भो गच्छयूयञ्च गच्छत ॥४४॥

इत्युक्त्वाच सलक्ष्मीकः सभातोऽत्यन्तरं गतः ।

देवाजग्मुश्च संहृष्टाः स्वाश्रमं परममुदा ।

शिवञ्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमं ययौ ॥४५॥

श्री भगवान् ने कहा—देव के द्वारा इक्कीस युगों का काल निकल चुका है। वैकुण्ठ में आधी घड़ी से नृपालय को शीघ्र चला गया था ॥४०॥ राजा वृषध्वज काल से मर गया था क्योंकि यह काल तो दुर्निवार्य और सुदारुण होता है। उसका पुत्र हंसध्वज हुआ था वह भी श्री से हत होकर मृत हो गया था ॥४१॥ उसके दो पुत्र हुये थे जिनका नाम धर्मध्वज

समासमात्रो मयि निराकारो भवति । तस्मिन् स्थिते मयि त्रिरात्रो भवति । तस्मिन् स्थिते मयि त्रिरात्रो भवति । तस्मिन् स्थिते मयि त्रिरात्रो भवति । तस्मिन् स्थिते मयि त्रिरात्रो भवति ।

॥७॥ श्री २१कार च विद्यायां च ॥७॥
एकमन्वन्तरं च पुनरुच्यते ।
सर्वत्र च तत्रैव च तत्रैव च ।
॥८॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥८॥
॥९॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥९॥
॥१०॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१०॥
॥११॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥११॥
॥१२॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१२॥
॥१३॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१३॥
॥१४॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१४॥
॥१५॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१५॥
॥१६॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१६॥
॥१७॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१७॥
॥१८॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१८॥
॥१९॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥१९॥
॥२०॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२०॥

२०-वेदव्याख्यानम् ।

॥२१॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२१॥
॥२२॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२२॥
॥२३॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२३॥
॥२४॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२४॥
॥२५॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२५॥
॥२६॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२६॥
॥२७॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२७॥
॥२८॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२८॥
॥२९॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥२९॥
॥३०॥ तस्मात्तत्रैव च तत्रैव च ॥३०॥

प्राप्त कर लिया था ॥ १ ॥ श्री महालक्ष्मी के वरदान से उन दोनों ने पृथ्वीश के पद प्राप्त कर लिये थे । वे दोनों घन-म्पत्ति वाले और पुत्र-पौत्र आदि वाले हो गये थे ॥२॥ कृशध्वज की पत्नी मती मालावती देवी थी । उसने समय पर कमला के अश स्वहृदिणी सती का प्रसव किया था और वह भूमि में स्थित होने मात्र से ही ज्ञान से युक्त हो गई थी और उसने स्पष्ट वेद ध्वनि की थी और फिर सूति ॥ गृह म खंडा हो गई थी ॥ :-४॥ उत्पन्न होते ही जिस कन्या ने वेदों की ध्वनि की थी इसी कारण से मनीषी गण उसको वेदवती-इस नाम से कहते हैं । ५ जन्म ग्रहण करते ही वह तपस्या करने लगे वन में चली गई थी । पवने उसका वन में जाने के लिये बड़े दहन म निषेध किया था किन्तु वह नारायण परायण हो गई थी ॥६॥ इस प्रकार से एक मन्वन्तर पर्यन्त पुष्कर में उसने तपस्विनी रहकर तप किया था । वह तपस्या यद्यपि अत्यन्त उग्र थी किन्तु उसने लीला से ही पूर्ण की थी ॥७॥

तथापि पुष्टा न कि नष्टा नवयौवनसंयुता ।
 शुश्राव त्वे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम् ॥८॥
 जन्मान्तरे ते भर्ता च भविष्यति हरिः स्वयम् ।
 ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुन्दरि ॥९॥
 इति श्रुत्वा तु सा रुष्टा चकार चपूनस्तपः ।
 अतीवनिर्जनस्थाने पर्वतं गन्धमादने ॥१०॥
 नत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वास्य समुवाससा ।
 ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥११॥
 दृष्ट्वा सातिथिभक्त्या चपाद्यं तस्मै ददौ किल ।
 सुस्वादुफलमूलञ्च जलञ्चापि सुशीतलम् ॥१२॥
 तच्च भुक्त्वा सपापिच्छो वास तत्समीपतः ।
 चकार प्रश्रमितीतांकात् कल्याणि चैति च ॥१३॥

ऐसी उग्र तपस्या करने पर भी वह परिपुष्ट रही थी और किसी प्रकार से क्लेश युक्त नहीं हुई । नवीन यौवन से समन्वित उसने आकाश

उस बरा रोहा, पीत एवं उन्नत पयोधर वाली, शरत्काल के विकसित पद्म के समान मुख वाली, स्मित से युक्त, सुन्दर दाँनों वाली सती उमको देखकर वह कृपण काम बाण से पीड़ित हो गया था और मूर्च्छा हो प्राप्त हो गया था । फिर उसने हाथ से उसे खींचकर उसके साथ श्रृंगार करने को वह उद्यत हो गया ॥१४-१५॥ उस समय उस सती ने कोप पूरा अपनी दृष्टि से उसे स्तम्भित कर दिया था और उस सती ने शाप दिया था । सवान्धव तू मेरे प्राप्त करने को विलङ्घन कर रहा है और तू ने मेरा स्पर्श किया है । काम वासना से तू ने मुझे छू लिया है । मैं विसर्जन करती हूँ, अब तू देख ! वह रावण उस समय ऐसा जड़ हाथ-पैरों से हो गया था कि कुछ भी बोलने में समर्थ नहीं था ॥१६-१७॥ उस काल में केवल मन से ही उसने उस समय पद्ममुखी पद्म लोचना देवी की स्तुति की थी । वह देवी उसकी स्तुति से प्रसन्न हो गई और फिर उसने उसको प्रकृत रूप वाली कर दिया था ॥१८॥ पर यह कहकर उसने योग से देह का त्याग कर दिया था । रावण ने उसको गंगा में विनष्टित करके फिर वह अपने गृह को चला गया था ॥१९॥ रावण ने मन में सोचा-हो हो ! यह क्या अद्भुत दृश्य मैंने देखा है और मैंने इस समय क्या कुकृत्य कर डाला है, ऐसा चिन्तन एवं स्मरण करके वह रावण बार बार रुदन करने लगा ॥२०॥ कुछ काल के बाद वह साध्वी राजा जनक की पुत्री हुई थी और उसका शुभ नाम सीता देवी विख्यात हुआ था जिसके लिये रावण नारा गया था ॥२१॥

महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मनः ।

लेभे रामञ्च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥२२॥

संप्राप्य तपसाराध्य स्वामिनञ्च जगत्पतिम् ।

सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी ॥२३॥

जानिस्मरा च स्मरति तपसश्च क्रमं पुरा ।

सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखञ्चापि सुखं लभेत् ॥२४॥

नानाप्रकारविभवञ्चकार सुचिरं सती ।

सम्प्राप्य सुकुमारतमतीजनयौवनम् २५

ग्रीष्म ऋतु का अन्त में शनिवार २५ अगस्त १९५६
के दिन में प्रथम बार प्रयोग के लिए कृष्ण लोहा का
उपयोग किया गया। इस दिन का तापमान ३५°C था।
२६ अगस्त को प्रथम बार प्रयोग के लिए कृष्ण लोहा
का उपयोग किया गया। इस दिन का तापमान ३५°C था।
२७ अगस्त को प्रथम बार प्रयोग के लिए कृष्ण लोहा
का उपयोग किया गया। इस दिन का तापमान ३५°C था।
२८ अगस्त को प्रथम बार प्रयोग के लिए कृष्ण लोहा
का उपयोग किया गया। इस दिन का तापमान ३५°C था।
२९ अगस्त को प्रथम बार प्रयोग के लिए कृष्ण लोहा
का उपयोग किया गया। इस दिन का तापमान ३५°C था।
३० अगस्त को प्रथम बार प्रयोग के लिए कृष्ण लोहा
का उपयोग किया गया। इस दिन का तापमान ३५°C था।

दास्यामि सीतां तुभ्यञ्च परीक्षासमये पुनः :
 देवः प्रस्थापितोऽहञ्च नच प्रिवो हुताशनः ॥२२॥
 रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम् ।
 स्वीचकार च स्वच्छन्दं हृदयेन विदूयता ॥२३॥
 वह्नियोगिन सीताया मायासीताञ्चकार ह ।
 तत्तुल्यगुणरूपां तां ददौ र माय नारद ॥२४॥
 सीतांगृहीत्वा स ययौगोप्यं वक्नुनिपेध्य च ।
 लक्ष्मणो नैव वुवुधे गोप्यमन्थस्य का कथा ॥२५॥

श्रीराम को दुःखित देखकर वह भी बहुत दुःखित हुआ था। सत्य परायण वह कुछ सत्य सत्येष्ट बोला ॥२२॥ अग्नि ने कहा— हे भगवन् ! मेरा वचन श्रवण कीजिये जो कि काल के वश से इस समय उन्नस्थित हो गया है। यह आपकी सती सीता के अपहरण का समय समुपस्थित हो रहा है? यह दैव तो दुःख से निवारण करने के योग्य होता है और दैव से अधिक कोई भी बल नहीं होता है अर्थात् वह सबसे प्रबलतम होता है। अब आप इस मुझसे समुत्पन्न जानकी को मुझ में रवत्त अपने समीप में इसी छाया मूर्तिवाली सीता को रखिये तथा उसी की रक्षा करो ॥२०-२१॥ मैं इस सीता को परीक्षा करने के समय तुमको फिर दे दूँगा। मुझ आपकी सेवा में देवों ने भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ प्रत्युत साक्षात् अग्नि हूँ ॥२२॥ श्रीराम ने उसके वचन को श्रवण कर लक्ष्मण से भी प्रकाशित नहीं किया था और विदूयमान हृदय से स्वतन्त्रता पूर्वक स्वीकार कर लिया था ॥२३॥ अग्नि ने योग के द्वारा सीता से एक माया की पीता बना दी थी। हे नारद ! वह उसी के समान गुण गन और रूप लावण्य वाली थी। उस को श्रीराम को दिया था ॥२४॥ उस वस्तुविक्र सती सीता को ग्रहण कर वह अग्नि देव चला गया था और इस रहस्य की बात को गोप्य रखने के लिये एवं किनी से कहने का निषेध करने को कह कर गया था। इस घटना को लक्ष्मण भी नहीं जानते थे अन्य की तो बात ही क्या है ॥२५॥

सुनकर कंठ लक्ष्मण की रीत की संज्ञित संचित के लिये साक्षात्
 था ॥ ४२ ॥ इतर उच शीलै स्त्री के लक्ष्मणो—इस विचित्र वचन की
 का शरीर प्राण करके फिर शक्ति संचित करके १७ ॥ सुनकर शक्ति क नाम से संशय
 कर पर ज्ञान-विज्ञान नाम वाले शरीरों का यह कि शक्ति या ज्ञानिक वही
 सिद्धि प्राप्त से वृद्धि लोक की चला गया था ॥ १८-२० ॥ वृद्धि क शक्ति
 धर्म संचित के रूप का योग करके कि ज्ञान करके शक्ति शरीर रोगों के
 सुख से उचारा कि ॥ १ ॥ फिर उचने सुवन संचित की वृद्धि करके उचनी
 'ज्ञानमय'—इस प्रकार का शब्द संचित नाम से संचित से कि मय, सुधर्म
 रूप मय संशय के शरीर उचने मारने की उचने के लिये २ चला गया था ॥ ३० ॥
 शान्ति की शक्ति के लिये लक्ष्मण की निर्ज्वल करके सुधर्म चला वैशिक
 प्राप्त करने के लिये चल करके की शक्ति कि मय था ॥ ३१ ॥ उच वच संचित
 इसी संचित से सुवन का सुख चला था ॥ शीलै से उचनी
 शीलै से प्रत्यक्ष लक्ष्मणो रत्नसिद्धि ॥ ४२ ॥
 सुधर्म शक्ति-वृद्धि शीलै से कि मय ॥
 सुधर्म शीलै लक्ष्मणो से शीलै ॥ ४१ ॥
 शीलै सुनकर शीलै संशय शीलै ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ४० ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३९ ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३८ ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३७ ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३६ ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३५ ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३४ ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३३ ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३२ ॥
 शीलै लक्ष्मणो सुधर्म शीलै लक्ष्मणो ॥ ३१ ॥

गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः ।
 सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया ॥४३॥
 विपसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् ।
 तूर्णञ्च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नव ददर्शसः ॥४४॥
 मूर्च्छां सम्प्राप्य सुचिरं विललाप भृशं पुनः ।
 पुनर्वभ्राम गहने तदन्वेपणपूर्वकम् ॥४५॥
 काले संप्राप्य तद्वात्तां पश्चिद्द्वारा नदीतटे ।
 सहायं वानरं कृत्वा ववन्व सागरं हरिः ॥४६॥
 लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च ।
 सवान्धवं रावणञ्च सीतां सम्प्रापदुःखिताम् ॥४७॥
 ताञ्च वह्निपरीक्षाञ्च कारयामास सत्वरम् ।
 हुताशनस्तत्रकाले वास्तवीं जानकीं ददौ ॥४८॥
 उवाच द्याया वह्निञ्च रामञ्च वितयान्विता ।
 कर्षिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे ॥४९॥

लक्ष्मण के राम के निकट चले जाने पर दुर्निवारण रावण सीता
 का अग्रहरण करके अपनी लीला से लङ्का में चला गया था ॥४३॥ श्रीराम
 ने वन में लक्ष्मण को आया हुआ देखकर बड़ा विपाद किया था । और यह
 फिर शीघ्र ही आश्रम में गये और वहाँ उन्होंने सीता को नहीं देखा था
 ॥४४॥ बहुत समय तक मूर्च्छा को प्राप्त करके फिर अत्यन्त श्रीराम ने
 विलाप किया था इसके पश्चात् उस गहन वन में सीता के
 अन्वेपण के लिये इधर - उधर खूब भ्रमण किया था ॥४५॥ उन्हीं
 अवसर पर वही तट पर एक पक्षी (जटायु) के द्वारा उनकी बात अर्थात्
 रावण के द्वारा सीता को लंका में ले जाने का समाचार प्राप्त करके
 वानरों की सहायता लेकर हरि ने सागर में नेत्रु बाँध दिया था ॥४६॥
 रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम ने लंका में पहुँचकर अपने सायक के द्वारा वन्धु-
 वान्धवों के सहित रावण का वध किया था और फिर परम दुःखित सीता
 की प्राप्ति की थी ॥४७॥ फिर उनकी शीघ्र ही अग्नि-परीक्षा कराई थी ।
 अग्नि ने उसी समय में वास्तविक जानकी को श्रीराम के लिये दे दिया

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद ।
 रूपयौवनसम्पन्नः छाया च बहुचिन्तिता ॥५६॥
 रामान्योराज्ञया तप्त्वा ययाचे शङ्करं वरम् ।
 कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनःपुनः ॥५७॥
 पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन ।
 पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारञ्चकार सा ॥५८॥
 शिवस्तत्प्रार्थनं श्रुत्वा सस्मितो रसिकेश्वरः ।
 प्रिये तव प्रियाः पञ्च भवन्तीति वरंददौ ॥५९॥
 तेन सा पाण्डवानाञ्च वभूव कामिनी प्रिया ।
 इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवंशृणु ॥६०॥
 अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम् ।
 विभीषणाय तां लकां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः ॥६१॥
 एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यञ्च भरिते ।
 जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्द्धं वैकुण्ठमेव च । ६२॥
 कमलांशु वेदवती कमलायां विवेश सा ।
 कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम् ॥६३॥
 सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च ।
 सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता ॥६४॥
 कुशध्वजसुताख्यानमुक्तं संक्षेपतस्तव ।
 धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते ॥६५॥

नारायण ने कहा—हे नारद ! लङ्का में वास्तवी सीता ने राम को प्राप्त किया था । उस समय रूप यौवन से सम्पन्न छाया बहुत चिन्तित हो गई थी ॥ ५६ ॥ राम और अग्नि की आज्ञा से तप करके उसने शङ्कर को वर की याचना की थी । वह बहुत ही काम से आतुर हो गई थी और बार-बार पति के लिये व्यग्र होकर प्रार्थना कर रही थी ॥ ५७ ॥ उसने शङ्कर से प्रार्थना की—हे त्रिलोचन ! मुझे पति दो—पति को प्रदान करो—मुझे मेरा पति देने की कृपा करो । इस तरह से पाँचवार 'पति दा'

नरानार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनांदातुमक्षमाः ।

तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदन्तिपुरावदः ॥५॥

सा च भूमिपटनात्रण याग्यास्त्रीप्रकृतिर्यथा ।

सर्वनिपिह्या तपसे जगाम वदरीवनम् ॥६॥

तत्र देवाद्दलक्षञ्च चकार परमन्तपः ।

मम नारायणम्यामी भवितेति च निश्चिता ॥७॥

इम अध्याय में धर्मध्वज की पत्नी माधवी में तुलसी के जन्म का निरूपण किया जाता है । नारायण ने कहा—राजा धर्मध्वज की पत्नी माधवी—इस शुभ नाम से विश्रुत हुई थी । उस राम ने गन्ध मादन पर्वत पर नृप के साथ रमण किया था ॥१॥ उन सती ने तुरन्त ही गर्भ कर लिया था और सती ने दिव्य सौ वर्ष तक उसे उदर में रखा था । वह दिनों दिन श्री गर्भा और श्री युता हो गई थी । २। शुभ क्षण में-शुभ दिन में-शुभ योग से नमन्वित परम शुभ लग्न में-शुभना में-शुभ स्वामी ग्रह से युक्त होने पर कार्तिकी पूर्णिमा में और पद्म जसितवार के दिन में उसके पद्मा (लक्ष्मी) के अंश रूपा सुमनोहर पद्मिनी का प्रसव किया था ॥ ३-४ ॥ नर और नारी उसको देख कर उसकी तुलना देने में असमर्थ हो गये थे । इस लिये पुरावेन्ता लोग उसको तुलसी इस नाम से कहते हैं ॥ ५ ॥ और वह जैसे ही भूमि में स्थित हुई थी वैसे ही प्रकृति के समान योग्य स्त्री हो गई थी । इसको सबने निषेध किया था तो भी यह तप करने के लिये वदरी वन को चली गई थी ॥६॥ वहाँ पर इसने दिव्य एक लाख वर्ष तक परम तप किया था । उसने यह निश्चय कर लिया था कि मेरे साक्षात् नारायण पति हीदेंगे ॥ ७ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतनाः शीते तोयावस्था च प्रावृषि ।

श्मशानस्या वृष्टिधारां सहन्तीति दिवानिशम् ॥८॥

विशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा ।

त्रिगत्सहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विनी ॥९॥

अहं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ।
 कृष्णप्रिया किङ्करी च तदंशा तत्सखी प्रिया ॥१५॥
 गोविन्देन सहासक्तामृतृप्तां माञ्च मूर्च्छिताम् ।
 रासेश्वरीसमागत्य ददर्श रासमण्डले ॥१६॥
 गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रूपान्विता ।
 याहित्वं मानवीयोनिमित्येवञ्चपितामह ॥१७॥
 मामुवाच स गोविन्दो मदंशं त्वं चतुर्भुजम् ।
 लभिष्यसितपस्तप्त्वाभारते ब्रह्मणोवरात् ॥१८॥
 इत्येवमुक्त्वादेवेशोऽप्यन्तर्धानंचकारसः ।
 देव्या भियातनुं त्यक्त्वा लब्ध्वं जन्ममयाभुवि ॥१९॥
 अहं नारायण कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् ।
 साम्प्रतं लब्धुमिच्छामि वरमेवञ्च दहि मे ॥२०॥

मैं तुलसी नाम वाली गोपिका हूँ । पहिले मैं गोलोक-वाम में स्थित रहा करती थी । मैं कृष्ण की प्रिया-उनकी सेविका दासी-उन्हीं की अंश वाली और उनकी प्यारी सखी थी ॥ १५ ॥ मैं गोविन्द के साथ आसक्त थी । मुझको अतृप्त और मूर्च्छित दशा वाली रास मण्डल में रासेश्वरी ने आकर देखा था ॥ १६ ॥ उस रासेश्वरी देवी ने गोविन्द को भर्त्सित किया था अर्थात् डांट दिया था और रोप में भरकर मुझे शाप दिया था । हे पितामह ! उस देवी ने मुझे यह शाप दिया था कि तू मानवी योनि में चली जा, फिर गोविन्द ने मुझसे कहा कि तू मेरे अंश चतुर्भुज को प्राप्त करेगी । भारत में तप करके ब्रह्मा के वरदान से ऐसा सुअवसर तुझे प्राप्त होगा ॥ १७-१८ ॥ इतना कहकर वह देवेश अन्तर्हित हो गये थे । मैंने इस के उपरान्त देवी श्री रासेश्वरी के भय से उस शरीर का त्याग कर दिया था और इस भूमण्डल में जन्म ग्रहण किया था ॥ १९ ॥ अब मैं परम सुन्दर विग्रह वाले अति शान्त स्वरूप नारायण को अपना कान्त बनाना चाहती हूँ । इसी प्रकार का वरदान आप कृपा करके मुझे देवें ॥ २० ॥

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः ।

तदंशश्चातितेजस्वी ललाभ जन्म भारते ॥२१॥

इसके पीछे परम शान्त नारायण जो अपने ज्ञान के रूप में प्राप्त करेगा ॥ २५ ॥ नारायण के ज्ञान से ही दैवयोग से कला के द्वारा तू विश्व पावनी परम पवित्र वृक्ष के स्वरूप वाली होगी ॥ २६ ॥ उस दशा में भी तू समस्त पुष्पों में प्रधान और विष्णु की प्राण से भी अधिक प्रिया होवेगी । तेरे बिना सबकी पूजा विफल रहा करेगी ॥ २७ ॥ वृन्दावन में तू वृक्ष रूप वाली हावेगी, इस लिये नाम से वृन्दावना यह भी कही जायगी । तेरे पत्रों से अर्थात् तुलसी के पत्र या दलों के द्वारा गांध और गोपिका माधव की पूजा करेगी ॥ २८ ॥ वृक्षों की आद्यदेवी के रूप से निरन्तर कृष्ण के साथ जोकि गांध वेश में होंगे, स्दृष्टदत्ता विहार किया करेगी—यह मेरा वरदान है । इसके प्रभाव से ऐसा ही होगा ॥ २९ ॥ इस प्रकार के ब्रह्मा जी के वचन को श्रवण करके वह तुलसी देवी बहुत प्रसन्न हुई थी और मुस्कान युक्त हो गई । फिर उसने ब्रह्मा को प्रणाम किया और उनसे कुछ बोली थी ॥ ३० ॥

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे ।
 सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे ॥ ३१ ॥
 अतृप्ताहञ्च गोविन्दे दैवात् शृङ्गारभङ्गतः ।
 गोविन्दस्यैव वचनात् प्रार्थयामि चतुर्भुजम् ॥ ३२ ॥
 तत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम् ।
 ध्रुवमेवं लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय ॥ ३३ ॥
 गूहाण राधिकामन्त्रं ददामि पोङ्गाक्षरम् ।
 तस्याश्च प्राणतुल्यात्वं मद्दरेण भविष्यसि ॥ ३४ ॥
 शृङ्गारयुवयोगोप्यमाजास्यति चराधिका ।
 राधासमात्वं शुभगा गोविन्दस्य भविष्यसि ॥ ३५ ॥

तुलसी देवी ने कहा— हे तात ! जैसी मेरी इच्छा दो भुजाओं वाले श्याम सुन्दर कृष्ण के लिये है वैसी चार भुजाओं वाले में नहीं है । यह मैं आप से पूर्ण सत्य कहती हूँ ॥ ३१ ॥ दैववश शृङ्गार के भङ्ग हो जाने के कारण मैं गोविन्द में तृप्त न हो सकी थी । अब मैं गोविन्द के ही वचनों

धूम करके क विषय नया प्रवेश करने की विधि के काम को भी उद्देश्य
 राधा कथन की कि पर है विद्या या ॥२३॥ इसके प्रतिफल समस्त परमा-
 मय की दृष्टि है कर जगत् के धारा से उसके विषय राधिका की न शरीर
 धारा को न इस प्रकार से कहकर शरीर देवी का सोलह अध्यायी वाल

तत्त्वं मनीषु तत्र पुरुषवन्दनवर्तिने ॥२२॥
 शैवेषां पीत्वा च सर्वतोऽपि योगवत्तु चकार सा ।
 सिद्धं कृते नराणाञ्च ईशानोऽपि सुखमैतन्मम ॥२१॥
 प्रसन्नमानसोऽपि तदात्र तपस कृतम् ।
 सुखं च महिमानं यद्विद्वेषु सुदुर्लभम् ॥२०॥
 सिद्धं तपसि मान्दव वर प्राप यद्युत्तमम् ।
 वसुं सिद्धा सा देवी तप-पदाश्रयाप च ॥१९॥
 दिव्यं शिवशेषञ्च पूजान्त्वं चकार सा ।
 गजाप परम मान्यं यद्विद्वेषु दुर्लभम् ॥१८॥
 सा च शशिपदज्ञेन पुरुषं वदति काम्यम् ।
 परं सुप्रसिद्धं कृत्वा सीतलं शिवोऽप्युच्यते ॥१७॥
 सर्वगोविन्दान्त्वं पुरन्दरयतिविक्रमम् ।
 मानन्दं तु जगद्धिता स्त्रियन्त्वं कवचपरम् ॥१६॥
 देवैश्चैवैव तदादेवैश्च दंयाञ्छि पौड्याक्षितम् ।

॥१६-१७॥

जान पावनी । फिर राधा के ही समान व गौतम की सुभगा ही जायगी
 फिर वृष दानी का जो श्रुत्यार है जो कि अत्यन्त गीत्य है, उसे राधिका नेही
 प्रभाव से मरे परवान के द्वारा व उसकी प्राण वृत्त प्रिया ही जायगी ।
 राधिका के मन की मुक्त से प्रवेश करके जिसकी कि मु मुक्त ही देवी हैं । इसके
 उपा कर । ३३॥ शशि ने कहा—अच्छा, ऐसा ही है जो मु पाड्याक्षर
 भाग थी राधा का जो वरा भय ही रहा है उसके मुक्त करके की
 से उम सुदुर्लभ गौतम की उम प्रकार से निरवय ही प्राप्त करने । अब
 की भावा से सर्वमूल नी प्राणना कर रही हैं ॥२०॥ उसके ही प्रसाद से

किया था और अन्त में परम शुभ आशीर्वाद देकर वह अन्तर्धान हो गये थे ॥३७॥ इसके अनन्तर उस तुलसी देवी ने परम पुण्यतम क्षेत्र वदरिकाश्रम में उस ब्रह्मा के द्वारा उपदिष्ट परम मन्त्र का जाप किया था जो कि पूर्व जन्म का इष्ट था ॥३८॥ उस तुलसी देवी ने दिव्य वारह वर्ष पर्यन्त वहाँ पूजाचरणा की थी। वह इसके अनुपम प्रभाव से देवी पूर्ण सिद्ध हो गई थी और उसके प्रत्यादेश को प्राप्त किया था । ॥३९॥ अपनी उग्र तपस्या के सिद्ध हो जाने पर तथा मन्त्र के सुसिद्ध होने पर, जैसा जो कुछ भी वह मन में चाहती थी वही उमने अभीष्ट वर प्राप्त कर लिया था । फिर उस तुलसी देवी ने उस महान भाग वाले का पूर्ण भोग प्राप्त कर लिया था जो कि विश्वों में महान कठिन है ॥४०॥ फिर परम प्रसन्न मन वाली उस तुलसी देवी ने उग्रतम तप का जो महान परिश्रम एवं खेद था उसका त्याग कर दिया था । जब मनुष्यों को किये हुए परिश्रम का फल सिद्ध हो जाया करता है तो वह तपस्या आदि का अत्यन्त दुख भी एक प्रकार का उत्तम सुख साती ही जाया करता है ॥४१॥ फिर उसमें भोगकर या खाकर-पीकर परम सन्तुष्ट होते हुये शयन किया था जो कि शय्या पुष्प चन्दन चर्चित एवं अन्य भी मत्तोरम थी । उसी पर शयन किया था । ॥४२॥

२२-तुलस्या सह शङ्खचूडस्य मेलनं कथोपकथनञ्च ।

तुलसी परितुष्टा च सुखापहृष्टमानसा ।
 नवयौवनसम्पन्ना प्रशंसन्ती वराङ्गना ॥१॥
 चिक्षेप पञ्चबाणञ्च पञ्चबाणश्च तां प्रति ।
 पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचर्चिता ॥२॥
 क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्त्रां सुखावहाम् ।
 क्षणं सा दाहन प्राप क्षणं प्राप प्रमत्तताम् ॥३॥

॥८॥ शिवयोगेन कथितं सर्वकर्मफलम् ॥८॥
 ॥९॥ अथ शिवयोगो नाम ॥९॥
 ॥१०॥ अथ शिवयोगो नाम ॥१०॥
 ॥११॥ अथ शिवयोगो नाम ॥११॥

॥ ३ ॥ ॥ १ ॥ ॥ १ ॥

शिवयोगेन कथितं सर्वकर्मफलम् ॥८॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥९॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥१०॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥११॥

॥१२॥ अथ शिवयोगो नाम ॥१२॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥१३॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥१४॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥१५॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥१६॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥१७॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥१८॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥१९॥
 अथ शिवयोगो नाम ॥२०॥

रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् ।

रत्न कुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥१६॥

पारिजातकुमुदानां माल्यवस्तुष्व मन्मथम् ।

कस्तूरीकुङ्कुमयुतं सुगन्धिवन्दनान्वितम् ॥१७॥

सा दृष्ट्वा मन्मथेन तं मुखनाच्छाद्य वामसा ।

सस्मिन्मन्मथं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनःपुनः ॥१८॥

बभूवामिन्नमस्की नवसङ्गमनञ्जिना ।

कामुकी काञ्चनगोम पीडिता पुलान्विता ॥१९॥

दृष्ट्वा तां ललितां गम्यां मुञ्जीनां मुन्दरिणीम् ।

उवाच तत्प्रमथे च मधुरं नामुवाचसः ॥२०॥

का त्वमत्र कस्य कन्या अन्ये मान्ये सुशोपिताम् ।

का त्वं मानिनि वल्याग्नि सर्वकलत्राग्नाद्यिनि ॥२१॥

हे मुने ! परम नदीन थीवन के सम्पर्क काम देव के समान प्रजा वाले प्राते हये शङ्ख चूड़ को तुलसी ने देखा था । वह शङ्ख चूड़ श्वेत चम्पक के वर्णों की आभा वाला था तथा रत्नों के सुपरणों ने विभूषित और शरत की पूर्णिमा के चन्द्र के तुल्य मुख वाला और शरत्काल के विकसित कमलके सदृश नेत्रों वाला था । १६-१७॥ शङ्खचूड़ उत्तम रत्नों के द्वारा निम्न विमान से बँटा हुआ था—अतीव सुन्दर था जिसके गण्डस्थल पर रत्नों के बने हुए दो कुण्डल विराजमान थे ॥१६॥ वह उस समय पारिजात के पुष्पों की मालाओं से समलकृत था तथा मन्दस्मिन् से समन्वित मुख वाला—कस्तूरी और कुङ्कुम से युक्त सुगन्धित चन्दन से चर्चित अङ्गों वाला था । १७॥ ऐसे शङ्ख चूड़ को तुलसी ने अपने सन्निकट में स्थित देखा तो उसने वस्त्र से अपना मुख ढक लिया था । वह कामुकी उस समय काम वाग् से पीड़ित होकर पुलकों से अङ्घ्रित अङ्ग वाली हो गई थी ॥ १८ ॥ वह तुलसी उस शङ्ख चूड़ को मन्द स्मिन् पूर्वक कटाक्षों के सहित बार २ देखती जा रही थी और काम देव के वाणों से परम पीड़ित हो रही थी ॥ १९ ॥ वह शङ्ख चूड़ अति सुन्दरी परम ललित सुन्दर दाँतों वाली—अत्यन्त सुन्दर शील स्वभाव वाली सती को देखकर उसी के कनीय उद्हरण का था और वह फिर उससे परम

धर्मध्वज राजा की पुत्री हूँ। इस समय मैं यहाँ तपोवन में तप करने-
तपस्विनी होकर स्थित हूँ। आप कौन हैं? अब आप सुख पूर्वक यहाँ से जाइयें
॥ १८ ॥ किसी भी कामिनी से जोकि सत्कुल में समुत्पन्न हुई हों, एकान्त
में ऐसी सती स्वाध्वी से कोई भी सत्कुल में समुत्पन्न पुरुष कुछ भी नहीं
पूछा करता है—ऐसा ही श्रुति में सुना गया है ॥ १९ ॥ जो लम्पट होता है
और असूत्कुल में पैदा हुआ हो तथा धर्म शास्त्र से रहित हो तथा जिस ने श्रुति
का अर्थ कभी नहीं सुना हो, वही कामी इस तरह कामिनी की इच्छा किया
करता है ॥२०॥ वह कामिनी आरम्भ में तो बड़ी मधुर दिखाई दिया करती
है किन्तु अन्त में पुरुष को समाप्त करने वाली होती है। वह विष के कूम्भ के
आकार वाली होती है जिसके मुख पर अमृत हुआ करता है ॥ २१ ॥

त्वयायत्कथितं देविनच सर्वमलोककम् ।

किञ्चित्तत्यमलीकञ्चकिञ्चिन्मत्तानिशामय ॥२२॥

निर्मितं द्विविधं यात्रा स्त्रीरूपसर्वमोहनम् ।

कृत्याह्वं वास्त्वञ्च प्रशस्यञ्चाप्रशंसितम् ॥२३॥

लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिकम् ।

सृष्टिसूत्रस्वरूपञ्चाप्यार्थं स्रष्टा तत् तु विनिर्मितम् ॥२४॥

एतासामंशरूपं यत् स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम् ।

तत् प्रशंस्यं यशोह्वं नवंभगलकारगम् ॥२५॥

सत्त्वप्रधानं यद्द्रूपं तच्च गुह्यं स्वभावतः ।

तदुत्तमञ्च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम् ॥२६॥

तद् वास्तुवञ्च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः ।

रजोरूपं तमोरूपं कृत्यासु द्विविधं स्मृतम् ॥२७॥

स्यानाभावात् क्षणाभावान्मव्यवृत्तेरभावतः ।

देहकृतेन रोगेण सत्संसर्गेण सुन्दरि ॥२८॥

बहुगोष्ठावृत्तेनैव रिपुराजभयेन च ।

रजोह्वस्य साध्वीत्वमेतेनैवोपजायते ॥२९॥

सङ्ख्येय न करो—हे देवि ! शपते वा कर्तव्यी इव वपय करो हे वरु
 सुव शपस्य नही है । वपय कर्तुं ना सत्य है शौर कौष्ठ प्रिया है—महै सुव
 शपय सुसि शपस्य करिये ॥ २२ ॥ वि शपते न ववका सीहेव करने वाला
 स्त्री का ही प्रकार का रूप निर्माते किया है । एक ही इमका इत्या रूप है
 शौर इंसरा वास्तविक है । एक इमका रूप शपस क योग्य
 शौर है शौर इंसरा शपसविव रूप हीरा है ॥ २३ ॥ लक्ष्मी-
 शरवती-वर्णा-गान्धी शौर रंगिका शक्ति मव इंस सुन्दर की मी
 इत्येव एव शाल विनिर्मित है ॥ २४ ॥ इन सबक शप रूप जो स्त्री का रूप
 है मव वास्तविक करो गया है । वरु शपस के योग्य-यस के कृता गला शौर
 शपस मङ्गली का करिये हीरा है ॥ २६ ॥ सत्य की मशरत वाला जो
 रूप है वरु इत्यस्य से ही सुख हीरा है शौर वरु विरवा म उतम-माली कर
 एव शपस हीरा है ॥ २६ ॥ वही वास्तविक कर जानने क योग्य है—
 एषा मनीषी गण कहते है । वा कथ्या है उतम रवा रूप शौर इत्येव दो
 प्रकार के वराये गये है ॥ २७ ॥ हे सुन्दरी ! रवी खण्डी का सावलीव
 शौर खान के शपस से ममय के न निने से ममय वृत्ति के शपस से शपस
 किरी मिलाने वाल के न हीने से—इह क वरुय शौर रीग से तथा सत्येपी
 क शपते से—वृद्ध गीला वरु हीने से एव गला के मय से ही इमका करता
 है । इन सब करिये के हीन म रवी रूप वान्धी का सावलीव बना रहै।
 हे प्रिया का मही रते सकता है ॥ २८ - २९ ॥

इव मयमखण्ड शपसि मनीषीयु ।
 तमोक्ष दुर्निवायमयम तद् विदुर्वी वा ॥ ३० ॥
 न पुच्छति कुले जाल पण्डितश्च परस्त्रियम् ॥ ३१ ॥
 शपसि मयसमीपमायया शपसोऽप्युत्तमा ।
 शपसोऽप्युत्तमा नैतवामुदरीप्यनिश्रयते ॥ ३२ ॥
 शपस्य मङ्गलैर्वै वदन्ति वरुकाः ।
 इत्येवमपि मपुत्र मनीषीपुत्रम् ॥ ३३ ॥
 मपुत्रा इत्येवमपि मपुत्र मनीषीपुत्रम् ॥ ३४ ॥

जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः ।

जातिस्मरात्वं तुलसी संसृता हरिणापुरा ॥३५॥

त्वमेव राधिकाकोपात् जातासि भारते भुवि ।

त्वां सम्भोवतुमिच्छुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः ॥३६॥

इत्येवमुक्त्वा स पुमान् विरराम महामुने ।

सस्मिता तुलसी हृष्टा प्रवक्ष्यन्नुपचक्रमे ॥३७॥

महा मनीषी लोग इसको मध्यम रूप कहा करते हैं । जो दूसरा तमो रूप होता है वह तो दुर्निवार्य ही होता है । उसे बुधगण परम अधम कहा करते हैं ॥ ३० ॥ यह ठीक है कि कोई भी सत्कूल में उत्पन्न होने वाला पुरुष तथा पण्डित पराई स्त्री से कुछ ताछ नहीं किया करता है । मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ ॥ ३१ ॥ किन्तु मैं तो इस समय ब्रह्मा जी की आज्ञा से ही आपके पास आ रहा हूँ और हे बोधने ! मैं अब गान्धर्व विवाह के द्वारा तुम्हको ग्रहण करूँगा ॥३२॥ मैं ही वह शख चूड़ हूँ जो देवों को विद्रुत कर देने वाला है । मैं इस समय तो विश्व में दनु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ परन्तु पहिले जन्म में मैं हरि के पुर में सुदामा था ॥ ३३ ॥ मैं हरि के आठ महा सखा गंपो में से हूँ और गोप-गोपी तथा पार्षदों में से प्रधान हूँ । इस समय तो अवश्य ही मैं दानवेन्द्र हूँ जो कि राधिका के शाप से ऐसा हो गया हूँ ॥३४॥ मैं जातिस्मर हूँ । मैं जानता हूँ कृष्ण मन्त्र के प्रभाव से ही यह ज्ञान है । आप भी जातिस्मरा हैं और आपका नाम तुलसी है जो पहिले सृष्टि में अत्यन्त ससृक्त थी ॥३५॥ आप भी राधिका के क्रोध से ही इस भूमि तल में उत्पन्न हुई हैं । मैं आपके साथ सम्भोग करने का इच्छुक हूँ । राधा के भय से फिर कोई अडचन नहीं है ॥३६॥ हे महामुने ! वह पुरुष इस प्रकार से कह कर विरत हो गया था । उस स्मितयुक्त तुलसी ने उसे देख कर अपना कहना आरम्भ किया था ॥३७॥

मूर्ध्ना ननाम तुलसा शङ्खचूडश्च नारद ।

उवाच तत्र देवे आशुच च तयोर्धितम् ॥३८॥

तथा सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः ।
 रम्यक्रीडालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः ॥
 एवं संवुभुजे राज्यं शङ्खचूडः प्रतापवान् ।
 एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरा बली ॥४४॥

देवानामसुराणाञ्च दानवानाञ्चशास्तिदः ॥४५॥
 गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानाञ्चशास्तिदः ॥४५॥
 हर्ताविकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा ॥४६॥

पूजाहोमादिक्रतेषां जहार विषयवलात् ।
 आश्रयचाधिकारञ्च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम् ॥४७॥
 निरुद्धमाः सुराः सर्वेचित्रपुत्तलिका यथा ॥४६॥

तेच सर्वेविपण्याश्च प्रजग्मुर्व्रह्मणः सभाम् ॥४८॥
 वृत्तान्तं कथयामासु रुरुदुश्च भृश मुहुः ।
 तदा ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं जगाम शङ्करालयम् ॥४९॥

सर्वं सकथयामासु विधाता चन्द्रशेखरम् ।
 ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्द्धं वैकुण्ठञ्चजगाम ह ॥५०॥

इस के अनन्तर उसके साथ वह दानव अपने आश्रम में आकर एक परम सुन्दर क्रीड़ा का स्थान निर्मित कर उसमें विहार किया करता था। इस प्रकार से उस प्रताप वाले शङ्खचूड ने राज्य का उपभोग किया था। उस बलवान राज राजेश्वर ने पूरे एक मन्वन्तर पयन्त राज्य का उपभोग किया था ॥ ४४ ॥ वह देवों-असुरों-दानवों-गन्धर्वों-किन्नरों और राक्षसों का निरन्तर शासन करता था ॥ ४५ ॥ देवगण तो उस समय छिने हुए अश्रुकार वाले होकर भिक्षुकों की तरह विचारे इधर-उधर भ्रमण किया करते थे ॥ ४६ ॥ इस प्रतापी शङ्खचूड ने उनकी पूजा तथा होम आदि सबका विषय बलात् हरण कर लिया था। उसने देवों का आश्रय स्थान-अधिकार-शस्त्र-अस्त्र और भूषण आदि सभी कूछ का अपहरण कर लिया था ॥४७॥ देवगण सब विचारे बिना उदम वाले एक चित्र पुत्तलिका की भाँति हो गये थे। वे सब बहुत ही विपाद से भरे हुए

देवगिभिः परिश्रुतां पार्षदेषु च ननु भोजः
 नागयगाम्बर्षेषु च नर्वैः क्षीन्तुमन्ने ॥१६॥
 एव विशिष्टं त दृष्ट्वा परिश्रुतां च निभूम् ।
 ब्रह्मादयः मुनाः नर्वैः प्रगम्य तुष्टुमन्त ॥१७॥
 पुलकाङ्कितनर्षाङ्गाः माश्रुतेषां नगदग्दाः ।
 भक्त्यापरनया नत्ताभीतानम्रात्प्रकन्धराः ॥१८॥
 पुटाङ्गलिभृतो भूत्वा विद्याना जगतामपि ।
 वृत्तान्तं कथयामान विनयेन हंरः पुरः ॥१९॥
 हरिम्नद्वचनं श्रुत्वा सर्वजः सर्वभाषवित् ।
 ग्रहस्योवाच ब्रह्मागं रहस्यञ्च ननोहरम् ॥२०॥

इस प्रकार में ब्रह्मा ने उर्षां नीलह द्वारा जो देखा था । देवों के साथ उन सब द्वारों को अतिक्रान्त करके ब्रह्मा जी ने हरि जी तथा में प्रवेन किया था ॥१५॥ वह नना देवगियों में और चार मुनाओं वाले पार्षदों से परिवृत थी । वे नमन् पार्षद नारायण के समान स्वल्प बाने, सब कांस्तुम गणियों से विभूषित थे ॥१६॥ हरि जी नना पूर्ण चन्द्र के मण्डल के तुल्य आकार वाली-र्षाकोर - परम ननोहर-उत्तम गणियों के द्वारा निर्माण वाली तथा हीराओं के नार उत्तम हीरों ने भूषित थी ॥१७॥ इस प्रकार की सनायों सनन्त पार्षद आदि में विशिष्ट - परिपूर्णनम - दिनु हरि जी देखकर ब्रह्मा आदि नगस्त देवों ने उनकी प्रणाम किया था और फिर स्तुति करने लगे थे ॥१८॥ सभी देवगण का नीर रोनाश्रित हो रहा था, उनके नेत्रों में अध्रुवारा वह रही थी । उनका कण्ठ गद्गद् था, वे सब भक्त परमभक्ति से युक्त थे, भीत हो रहे थे और विषय के भाव से सबकी कन्दरा नीचे की ओर झुकी हुई थी ॥१९॥ सब पुत्राञ्जलि युक्त होकर स्थित हो गये थे, जगतों की भी रचना करने वाले ब्रह्मा ने हरि के जाने यह देवों के विपाद का दूताना विनय पूर्वक कह मुनाथा था । नगवान द्वारा

पुण्य का कारण चरित है ॥६२॥ एक सुदामा नाम वाला मेरा परम श्रेष्ठ पार्णद गोप था । वह राधा के शाप के कारण से जोकि सुदारुण शाप था, दानव की योनि को प्राप्त हो गया था ॥६३॥ वहा पर मैं एक बार अपने आवास स्थान से रासमण्डल में गया था और मेरी प्राणों से भी अधिक प्रिया मानिनी राधा का उस समय मैंने त्याग कर दिया था ॥६४॥ उस राधिका देवी ने किसी सेविका के मुख के द्वारा मुझे विरजा के साथ संसक्त होने वाला जानकर वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गई थी और यह वहाँ आगई तथा मुझको वहाँ पर उसने देख लिया था ॥६५॥ वहाँ विरजा को नदी रूप वाली उसने देखा और मुझको तिरोहित (अप्रकट) देखा था । फिर वह क्रुद्ध होती हुई सखियों के साथ अपने आलय को आ गई थी ॥६६॥ उस देवी ने मुझको मन्दिर मे सुदामा के साथ पहिले देखा था । उसने मौनी भूत एव मुस्थिर मुझको अत्यन्त भर्त्सना दी थी ॥६७॥ यह सुनकर सुमहान सुदामा को क्रोध आ गया था । फिर उसने क्रोध से मेरी सन्निधि ही मे राधिका देवी को जोर से डाट-फटकार दी थी ॥६८॥ यह सुनकर वह कोप से युक्त लाल कमल के समान नेत्रों वाली मेरी संसद में सन्नस्त होती हुई उसने सुदामा को बहिष्कृत कर देने की आज्ञा दे दी थी ॥६९॥ एक लाख सखियों का समुदाय वहाँ उपस्थित खडा था जो बहुत ही दुर्निवार और तेज से उज्ज्वल था, उसने बार-बार बोलते हुये उसको शीघ्र ही वहाँ से बाहर कर दिया था ॥७०॥

सा च तद्वचनं श्रुत्वा समारुष्टा शशापतम् ।
याहि रे दानवीयोनिमित्येवंदारुणं वचः ॥७१॥
तं गच्छन्तं शपन्तश्च रुदन्तं मां प्रणाम्य च ।
वारयामास सा तुष्टा रुदन्ती कृपया पुनः ॥७२॥
हेवत्स ! तिष्ठमागच्छकयासीतिपुनः पुनः ।
समुच्चार्य्यंचतत्पश्चात्तज्जगामसाचविस्मिता ॥७३॥
गोप्यश्चरुदुःसर्वागोपाश्चेतिसूदुःखिताः ।
तेसर्वेराधिकाचापितत्पश्चाद्बोधितामया ॥७४॥

आपास्वित्त्यगोद्धनकरंवाशापस्थपानम् ।
 सुप्तमन्वेमिहैगच्छैयुवाचसा निवारिता ॥१५॥
 गालीकस्य क्षणोद्धनं चकमन्वन्तरं भवेत् ।
 पृथिव्या जगता धारतिरभुव वचनसंभवम् ॥१६॥
 स एव शङ्खैर्बुधैश्च पुनस्तत्रैव यात्पति ।
 महोदालिच्छो यगोशा-सर्वमयाविशारदः ॥१७ ।

उस राधिको देवो ने भयपन्न कल होकर उसके वचन सुनकर उसे
 धाम दिया था कि तू दानवी योनि में बला आ—इस तरह का वाक्य
 वचन उस शीप का था ॥१६ । आकाश कान बोलें रोते हैं बोलें बोलें
 उषको फिर मनुष्य होती है उस देवो ने रोना लिया था और मुझे प्रणाम
 करके क्षमा से परित्यक्त होकर रोती है वह देवो बोलो ॥१७॥ हे वसव ।
 धई रही, मन जाये, भव तू कहीं जा रहा है । ऐसा वाद-वाद करके
 वह विस्मय होती है इस के पदवाचन चर्चा गई थी ॥१३॥ उस समय
 समस्त गणियाँ और गीप सत्यन्त ही विषय होते हैं स्वन करने लगे थे । वे
 सभी और राधिको भी स्वन कर रहे थे और फिर मुझे उन्हें समझाया था
 ॥१५॥ यह शीप का पालन करके धासे क्षण से ही फिर यही आ जायेगा ।
 फिर वह देवो मुद्राया स वाणी से मुद्रापर्ण । तू यही आज्ञा—यह कहकर
 वह निवारित हुई थी ॥१५॥ गालीक का एक भाषा क्षण पृथिवी में एक
 भाषा-र होना है । हे जगती के धाम । इस प्रकार से यह वचन धाव ही है
 ॥१६॥ वह ही यह शाल्वड है । यह फिर वहा पर ही जायेगा । यह महोद
 धालि-यगोशा और संव प्रकार की मया का पुण पण्डित है ॥१७॥

मम शील गृहीत्वा च शीघ्र गच्छथ आरतम् ।
 शिव करीतुं सहितं मम शैलेनदानवम् ॥१८॥
 मधुव कवच कण्ठे मधुमक्षमक्षयम् ।
 विमलितानव शरवतेनमारिवजयित्वा ॥१९॥
 तत्र वसितुं स्थिते कण्ठे न काऽपि हिंसितुं क्षम ।
 तद्यथावाहिकिरेणामिषयक्ष्णैर्मधुव ॥२०॥

सतीत्वभगस्ततपत्या यत्र काले भविष्यति ।
 तत्रैवकालेतन्मृत्युरितिदतोवरस्त्वया ॥८१॥
 पश्चात् सा देहमुत्सृज्य भविष्यतिप्रियामम ।
 इत्युक्त्वाजगतांनाथोददौशूलंहरायच ॥८२॥

अब मेरा शूल ग्रहण करके शीघ्र भारत में जाओ, शिव मेरे शूल से दानव का संहार करे ॥७८॥ वह दानव मेरा ही सर्व मङ्गलों का मङ्गल नामक कवच कण्ठ में धारण करता है इसीलिये वह निरन्तर संसार का विजयी है ॥७९॥ हे ब्रह्मन् ! वहाँ उस कवच के कण्ठ में रहते हुये उसे कोई भी मारने में समर्थ नहीं हो सकता है । इन लिये उस की याचना विप्र के रूप वाला होकर मैं ही करूँगा ॥८०॥ उसकी पत्नी का जिस ही समय में सतीत्व का भङ्ग होगा, उसी समय उसकी मृत्यु होगी, ऐसा वर आपने उसे दिया है ॥८१॥ इसके पश्चात् वह देह को त्याग कर मेरी प्रिया हो जायेगी । इतना कहकर जगत् के नाथ ने हर के लिये अपना शूल दे दिया था ॥८२॥

२३-शिवेन सह शङ्खचूडस्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेरणाम्

ब्रह्मा शिवं सनियोज्य संहारे दानवस्य च ।
 जगाम स्वालय तूर्णं यथास्थानंमहामुने ॥१॥
 चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे ।
 तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥२॥
 दूतं कृत्वा पुष्पदन्तं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम् ।
 शीघ्रं प्रस्थापयानास शङ्खचूडान्तिकमुदा ॥३॥

मं रणे का समस्त वसन्त राजा की वसति के लिये गया हूँ । उसने यह
 था । फिर वह भीतर के द्वार पर पहुँच कर द्वारपाल से बोला था कि
 करके किसी ने भी रक्षित नहीं किया था अथवा बीच में ही रोका नहीं
 वह उपरान्त अन्दर घुस में बला गया था । उसे रणे का हँस रूप वाला शत्रु
 मुक था ॥५॥ उस घुस के भी द्वार थे । उन सब द्वारों का अधिकमण्डल बरके
 निमित्त एवं मण्डलों से खूब बन्दित था । इसका हूँ सब परिजनों से
 दोषों में उस से भी दुर्गता था । स्फटिक मण्डल के आकार वाली मण्डलों से
 वह आखण्ड का नगर था वही राजा के निवास के लिये था और
 था तथा ऊँच के मकान से भी अधिक उन्नत बना हुआ था ॥२॥ हे मूर्ख !
 उस नगर में शीघ्र ही बला गया था । यह महान् के नगर से भी उन्नत
 मण्डल था ॥३॥ यह भी उपरान्त अपने स्वामी की आज्ञा से शून्य
 बनाकर मण्डल था उस समय परम प्रसन्नता से शून्य बँड के निकट
 ही गया था ॥४॥ मण्डलों के स्वामी उपरान्त की मण्डल बँड बनाकर जोकि
 पूर के समीप मंडल पर ही पर देवा के निवास करने के लिये स्थित
 की बल गया था ॥५॥ अन्तर्गत नाम वाली के उन्नत मनी म बड के
 स्थि की राजा के शरीर में स्थित करके नारायण यथा स्थान अपने शत्रु
 मण्डल की वसति किया गया है । नारायण बाल—है नहीं मूल । * नो और
 इस शत्रु में स्थि के शत्रु आखण्ड क युद्ध के लिये उपरान्त की

रणस्थि सर्ववसन्त विनाशयविभक्तिरसं । ७॥
 गता मीःस्थानर द्वार द्वारपालमवाच ह ।
 न कश्च रक्षित शत्रुवा नृपक रणस्थि च । ३॥
 अतिक्रम्य नद्वार जगामाःस्थानर पुरम् ।
 सन्निभः परिजान् अक्ष दुर्गमिभः समिबवम् ॥५॥
 स्फटिकीकारमण्डलिभिर्मण्डलिभिरक्षितम् ।
 पञ्चशतवर्षात्सु रथ्य नद्वारिणो मुने ।
 महेन्द्रनगरीवृकट ऊर्वेःशत्रुनाधिकम् ॥४॥
 स चन्द्रवराजो शीघ्र यथा लनागर वरम् ।

कहकर दूत को आगे आने को बोला था और फिर वह आगे जाकर पहुँच गया तथा उसने परम सुन्दर शंखचूड़ को देखा था ॥६-७॥

स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह ।
 स गत्वा शंखचूड़न्तं ददर्श सुमनोहरम् ॥८॥
 सभामण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनस्थितम् ।
 मणीन्द्रखचितं चित्ररत्नदण्डसमन्वितम् ॥९॥
 रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तं शोभितं सदा ।
 भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्र मनोहरम् ॥१०॥
 सेवितं पार्षदगणैर्व्यंजनैः श्वेतचामरैः ।
 सुवेश सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥११॥
 माल्यानुलेपनं सूक्ष्मवस्त्रञ्च दधत् मुने ।
 दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेशं च त्रिकोटिभिः ॥१२॥
 शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रधारिभिः ।
 एवंभूतञ्च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सत्रिस्मयः ॥१३॥
 उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च ॥१४॥

वहाँ पर पुष्पदन्त ने देखा था कि शंखचूड़ सभा के मध्य में स्थित था । मध्य में एक स्वर्ण निर्मित सिंहासन पर वह बैठा था । वह सिंहासन बड़ी बड़ी उत्तम मणियों से जटित हो रहा था । बड़ा ही विचित्र बना हुआ था तथा रत्नों के दण्डों से युक्त था । वह राजा का आसन रत्नों के विरचित कृत्रिम पुष्पों से प्रशस्त था और सर्वदा शोभा से सम्पन्न रहा करता था । एक भृत्य के द्वारा मस्तक पर सुवर्ण का छत्र लगा हुआ था जोकि बहुत ही सुन्दर था ॥८-१०॥ इधर-उधर व्यंजन और श्वेत चामरों के द्वारा पार्षद गण उस राजेश्वर की सेवा कर रहे थे । राजा का बहुत सुन्दर वेश था, वह परम सुन्दर और रत्नों के भूषणों से समलङ्कृत था ॥११॥ हे मुने ! माल्य और अनुलेपनों से समन्वित तथा बहुत सूक्ष्म वस्त्र धारण करने वाला राजा उस पर स्थित था । तीन करोड़ सुन्दर वेशधारी

प्रकृत शेषवत् हैस दिग्गया धीर कदा किं कल प्रस कल शिव
 धरुं कथा कर मुक्तं वरा देन के योग्य होवे है ॥१८॥ वल के देस वचन को
 वनकी देव या निरिवर होकर युद्ध करे । अब वाकर धर्म से क्या कहेंगे ॥
 बरपर एक वर मूल के निकट विरजमान है ॥१७॥ या ही शिव देव
 प्रस्थापित कर दिया है । वह विजीवन देस समय चन्द्र भाग नदी के
 पर्वत गये है ॥१६॥ हरि ने विमान प्रदान कर शिव को प्राणक लिये
 भापने वनका छिन लिया है । देवगण पराङ्गत श्री हरि देवस्य के शरण में
 भाप प्रणम करे ॥१५॥ अब देवी को राज्य शीर शक्तिकार दे देवें वी
 हो हैं । हे यमी ! भागवान शङ्कर ने जो कर्म कहे है उसे मैं करेता हूँ,
 पुण्यवन ने कहा—हे राजा— मैं पुण्यवन नाम वाला शिव का

शिवचंद्रस्य वचन लक्ष्य यत् परित्यज्यम् ॥२०॥

स गतवीर्यो वं वरमलस्यमोदवरम् ।

प्रभातेऽह्निमिच्छामि त्वञ्च गच्छेत्सुखात् ॥१९॥

द्वैतस्य वचन श्रुत्वा शिवचंद्र प्रत्यय च ।

गतावस्थामिच्छामि त्वत्प्रभावम् वक्तुमर्हसि ॥१८॥

विषय देहि तेषाञ्च युद्धवाक्किरिविचरम् ।

चन्द्रभागानदीतीरे वरमलं विभाचन ॥१७॥

दत्त्वा विमानं हरिणो नव प्रस्थापितः शिवः ।

देवाञ्च शरणोपया देवेशो श्रीहरिः परे ॥१६॥

राज्यदेहि च देवानामिच्छाञ्च साध्यतम् ।

यदुक्तं शङ्करेणैव तर्ह्यशक्तिं निदीपय ॥१५॥

राजानं शिवचंद्रोऽह्निं पण्डितोऽपि च ।

धर्म गण धा ॥१२-१४॥

वचन शिवचंद्र से राम का बोलान कह दिया था जोकि शङ्कर के द्वारा
 शिवचंद्र शिवचंद्र को देवकर पुण्यवन बहुर हो विस्मय हो गया था ।
 श्री शरण किये हूँ मैं वहाँ अरण कर रहे हूँ । देस प्रकार के वचन
 शिव से शरी शीर पराङ्गत था । श्री करीब देवके शक्तिरत्न शय्य शक्ति

हूँ । अब तुम चले जाओ ॥१९॥ वह पुष्पदन्त शीघ्र ही आकर बट के मूल में स्थित शिव से शंखचूड़ के जो वचन कहे हुए थे उनको उसने कह दिया था ॥२०॥

हे प्राणनाथ हे बन्धो तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम् ।
 हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवनक्षणम् ॥२१॥
 भूङ्क्ष्व जन्मसमाधानं यद्वै मनसि वाञ्छितम् ।
 पश्यामि त्वां क्षणं किञ्चिच्छोचनाभ्यां पिपासिता ॥२२॥
 आन्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदग्धञ्च सन्ततम् ।
 दु स्वप्नञ्च मया दृष्टञ्चाद्यैव चरमे निशि ॥२३॥
 तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः ।
 उवाच वचनं प्राज्ञोहितं सत्यं यथोचितम् ॥२४॥
 कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिश्चये ।
 शुभं हर्षं सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम् ॥२५॥
 काले भवन्ति वृक्षाश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः ।
 क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः ॥२६॥
 ते सर्वं फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च ।
 भवन्ति काले भूतानि काले कालं प्रयान्ति च ॥२७॥
 काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि ॥२८॥

उस समय जबकि वह शंखचूड़ युद्ध के लिये जा रहा था, तुलसी उससे कहने लगी थी— हे प्राणनाथ ! हे बन्धो ! आप मेरे वक्षःस्थल पर क्षण भर के लिये स्थित हो जावे । हे प्राणों के अधिष्ठाता देव । मेरे जीवन क्षण भर के लिये रक्षित करें ॥२१॥ आप जन्म के समाधान का भोग करें । जोभी मन में इच्छित है मैं अपने प्यासे नेत्रों से आपको क्षण भर तक देखती हूँ ॥२२॥ मेरे प्राण आन्दोलन करते हैं और मेरा मन निरन्तर दग्ध हो रहा है । मैंने आज ही निशा के अन्तिम समय में एक बहुत ही बुरा स्वप्न देखा है । तुलसी के ऐसे वचन का श्रवण कर नृपेश्वर ने खा पीकर प्राज्ञ नृपेश्वर ने परम हित-सत्य और यथोचित वचन कहा था ॥२३-२४॥ शंख चूड़ ने

आने पर संहार किया करता है। इसी क्रम में ये सभी चला करते हैं ॥२९॥
 ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि का ईश्वर जो प्रकृति से भी पर है, सर्वेश
 पूर्ण अंश से सृष्टा-पाता और संहर्ता वह भी होता है ॥३०॥ वह प्रभु भी
 कान में ही प्रकृति का स्वेच्छा से निर्माण करता है और विश्वों में स्थित
 समस्त प्राकृतों का जो चर एवं अवर है निर्माण किया करता है ॥३१॥
 यह ब्रह्म स्तम्भ पर्यन्त समस्त कृत्रिम ही है। यह समस्त नागवान् काल
 आने पर नष्ट हो जाया करता है और कुछ भी नहीं करता है, ऐसा रहते
 हैं ॥३२॥ हे मुन्दरि ! त्रिगुण में भी परमत्य स्वरूप परब्रह्म राधा के
 ईश का भजन करो, वही सवता ईश है, सर्व रूप है—सबकी आत्मा है
 और अनन्त ईश्वर है ॥३३॥ जो जल से जल का सृजन करता है और
 जल से जल का पानन करता है तथा जल में ही जल का हरण किया
 करना है, उस कृष्ण का निरन्तर भजन करो ॥३४॥ जिसकी आज्ञा से यह
 वायु बहता करता है और शीघ्रगामी होता है प्रोण मर्वादा जिसके आदेश
 में यह सूर्य यथाक्षय तपता रहता है, उसका ही भजन करना चाहिये ॥३५॥
 जो अज्ञानी होते हैं वही शोक तथा विपत्ति के समय कातर हुआ करते
 हैं। पण्डित कभी नहीं होते हैं। पहिये की नेमि का जो ऊपर से नीचे
 और नीचे से ऊपर जाने-आने का क्रम होता है, जबकि पहिया घूमता है
 त, उसी क्रम से इस संसार में सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख
 आया-जाया करते हैं ॥३६॥



२४—शिवेन सह युद्धार्थं शङ्खचूडस्य कथोपकथनम् ।

श्रीकृष्णमनसाध्यात्वा राजा कृष्णपरायणः ।

ब्राह्मे मूर्ध्ने उत्थाय पुष्पतल्पान्वनोहरात् ॥१॥

रात्रिवापः परित्यज्य स्नान्त्वामङ्गववारिणा ।

धीतिचवासनीघृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम् ॥२॥]

॥५॥ अर्थात् रत्न शीर वा कर्षु मूर्त्ति, माण्डिक्य शीर हीरा उत्तमा शपने
 माण्डिक्य रत्न, उत्तम मण्डिक्य रत्न तथा सुवर्ण रत्न मन्दिरेषु
 हेनारत्न । उच्यते राजा न शक्तिशाली को शक्ति प्राप्त शीर नित्य को ही
 धन मुक्त-शान्ति देन मगल वस्तुओं का दर्शन किया ॥३॥ इसके पश्चात्
 एक शक्ति शीर शरीर देव को चन्दन किया था । फिर उत्तम दर्शन-
 कर उसी उज्ज्वल तिलक किया था ॥१-२॥ इसके उपरान्त उत्तम शिव-
 करके मगल जल से स्नान किया था । इसके अनन्तर शीर रत्न शरीर
 से वदे वस्त्र मूर्त्तियों से उठ गया था । फिर उत्तम दर्शन के पश्चात् राजा
 ने मन से शक्तिशाली का ध्यान किया शीर परम मनोहरे पुण्या शीर
 कथन का वर्णन किया गया है । नारायण ने कहे—ऊँचा परायण राजा
 देव शपथ म् पुष्ट क विषे शिवके साथ शिववन्द के कार्य-
 वदेवैश्वर्य शिविरात्मनसा शीरि स्मरते ॥६॥

शिववन्द शिवश्री वाद्यशालावन्दन चकार हे ।
 रत्न शीर सेनापतिवन्दन पुष्ट शीर शीर शीर ॥७॥
 ऊँचा सेनापतिवन्दन शीर शीर शीर ॥८॥
 शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली ॥९॥
 शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली ॥१०॥
 शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली ॥११॥
 शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली ॥१२॥
 शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली ॥१३॥
 शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तिशाली ॥१४॥

फिर उस राजा ने भृत्यों के द्वारा अपनी सेवा को एकत्रित किया; जिसमें तीन लाख अश्व और पाँच लाख हाथी थे ॥६॥ राजा की उम्र में दश हजार रथ, तीन करोड़ धनुषधारी तथा तीन-तीन करोड़ चर्भी एवं शूली थे ॥७॥ हे नारद ! उस दानवों के राजा ने अपनी परिमित सना बना ली थी और उस सेना में युद्ध शास्त्र का महा पण्डित एक सेनापति नियुक्त किया गया था ॥८॥ इस प्रकार से तीस अक्षीहिणी वह सेना थी । उसने फिर वाद्यभाण्ड का समूह किया था । मन से श्री हरि का वह स्मरण करता हुआ अपने शिबिर से बाहर आया था ॥९॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमारुराह सः ।

गुरुवर्गान् पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिकम् ॥१०॥

तत्र गत्वा शङ्खचूड़ो ददर्श चन्द्रशेखरम् ।

वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥११॥

कृत्वा योगासनं स्थित्वा मुद्रायुक्तञ्च सस्मितम् ।

शुद्धस्फटिकसङ्काशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१२॥

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ।

तप्तक्लाञ्चनवर्णाभं जटाजालाञ्च विभ्रतम् ॥१३॥

त्रिनेत्रं पंचवक्त्रं च नागप्रज्ञोपवीतिनम् ।

मृत्युञ्जयं मृत्युमृत्युं त्रिश्वमृत्युकरं परम् ॥१४॥

भक्त मृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोरमम् ।

तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥१५॥

राजा स्वयं रत्नों के द्वारा निर्मित विमान पर समाहूढ़ हुआ था । वह अपने गुरु वर्गों को आगे करके शङ्कर के समीप आ गया था ॥१०॥ वहाँ जाकर शङ्खचूड़ ने भगवान् चन्द्रशेखर को देखा था जो एक वट के मूल के पास स्थित थे और करोड़ सूर्यों के समान प्रभा वाले थे । उस समय भगवान् शंकर योगासन लगा कर मुद्रा से युक्त मन्द मुस्कान से समन्वित

10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100

- 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100

101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200

में एक दनु नाम धारिणी परम साध्वी कन्या थी जोकि सीभाग्य से वर्जित हुई थी । उस दनु के चालीस पुत्र थे जोकि तेज से अत्युज्ज्वल दानव हुये हैं ॥१८॥ उन्हीं चालीस पुत्रों में एक विप्रचित्ति था जो महान वन और पराक्रम से युक्त था । उसका पुत्र परम धार्मिक दम्भ था जो विष्णु का भक्त और जितेन्द्रिय हुआ था । १९। उसने पुष्कर में एक लाख वर्ष तक परम मन्त्र का जाप किया था । शुक्राचार्य को अपना गुरु बना कर परमात्मा श्रीकृष्ण के मन्त्र का जप किया था ॥२०॥ उस समय तुझे अपने पुत्र के रूप में प्राप्त किया था । पहिले तू आठ प्रमुख श्रीकृष्ण के गोपों में एक धार्मिक गोप और श्री-कृष्ण पार्षद था ॥२१॥

अधुना राधिकाशापात् भारते दानवेश्वरः ।

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं भ्रमं मेनेच वैष्णवः ॥ २२ ॥

सालोक्यसाष्टिसारूप्यसाम कर्ष्ययं हरेरपि ।

दीयमानं न गृह्णतिवैष्णवाः सेवनंविना ॥ २३ ॥

ब्रह्मात्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः ।

इन्द्रत्व वा कुवेरत्वं न मेने गणनासु च ॥ २४ ॥

कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये अमे ।

देहि राज्यञ्च देवानां मत्प्रीतिं कुरु भूमिप ॥ २५ ॥

सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु स्वपदे ।

अलं आतृविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजा ॥ २६ ॥

यानिकानिचपापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

ज्ञातद्रोहस्यपापस्यकलां नाहंन्तिषोडशीम् ॥ २७ ॥

स्वसम्पदाञ्च हानिञ्च यदि राजेन्द्र मन्यसे ।

सर्वाविस्थासु समता केषां याति च सर्वदा ॥ २८ ॥

इस समय श्री राधिका के शाप से ही तू भारत में दानवों का राजा हुआ है । जो वैष्णव होता है वह तो आब्रह्म स्तम्भ पर्यन्त सब को भ्रम ही मानता है ॥२२॥ वह वैष्णव सालोक्य-साष्टि-सारूप्य-सामीप्य

इयं ते महती लज्जा स्पृष्ट्वास्माभिः सहाधुना ।
 ततोऽधिकाचसमरं कीर्त्तिहानिः पराजये ॥ ३५ ॥
 शङ्खचूडवचः श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः ।
 यथोचितं सुमधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥ ३६ ॥

शंखचूड ने कहा—हे नाथ ! आपने जो कुछ भी कहा है वह सब अक्षरशः सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है । तो भी कुछ यथार्थ बात मेरे द्वारा निवेदन की गई हुई का आप श्रवण करने की कृपा करें ॥२६॥ आपने जो अभी-अभी यह कहा है कि ज्ञाति वालों से द्रोह करना एक महान पाप होता है तो यह बात इये बला उसका सर्वस्व लेकर कहाँ प्रस्थापित हो गया था ? मैंने तो समस्त ऐश्वर्य विक्रम के द्वारा प्राप्त किया है । गदा पर तो सुतल से भी वह समुद्धार करने को समर्थ नहीं हो सकता था ॥३०-३१॥ देवों ने भाई के साथ हिरण्याक्ष को कैसे मार दिया था ? और शुम्भ आदि अमुर देवों ने क्यों मार दिये थे ? ॥३२॥ पहिले समुद्र मन्थन के समय देवों ने अमृत का भक्षण कर लिया था । हम सभी उस मन्थन के बलेश को भोगने वाले थे । उसमें हम सभी तो फल प्राप्त करने के पात्र थे ॥३३॥ परमात्मा श्री कृष्ण का यह विश्व एक क्रीड़ा गे का आधार है । वह जिस किसी के लिये उसका ऐश्वर्य दे दिया करते हैं, यह देवों और दानवों का वाद सदा ही होने वाला है और नैमित्तिक है । उनका पागलपन और जग और हमारा जय-पराजय समय पर क्रम से होता रहता है ॥ इसलिये हमारे इस विरोध में आपका गमन नष्फल ही है क्योंकि आपका तो सब से समान सम्बन्ध है । आप ईश्वर और महान् आत्मा वाले सबके बन्धु हैं ॥३४-३६॥

युष्माभिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंश समुद्भवैः ।
 का लज्जा महती राजन्नेकीर्त्तिर्वा पराजये ॥ ३७ ॥
 युद्धमादौ हरेरेव मधुना कंटभेन च ।
 हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥ ३८ ॥

वे कोई भी तेरे समान नहीं थे ॥४३॥ हे राजन् ! तेरे साथ मेरे युद्ध में क्या बड़ी लज्जा की बात है ? मुझे तो इस मम्य सुरों के रक्षक हरि का भेजा मानो, अब तुम देवों देवों के राज्य को दे दो, इस धाणी के व्यय करने में क्या प्रयोजन की सिद्धि होगी अर्थात् इस तरह युक्ति-प्रत्युक्ति द्वारा विवाद करने से कोई भी लाभ नहीं होगा । तू मेरे साथ युद्ध कर, मेरा यह निश्चित वचन है । हे नारद ! शङ्कर इतना कहकर उस समय विराम को प्राप्त हो गये थे और शङ्खचूड़ अपने मन्त्रियों के साथ शीघ्रता से खड़ा हो गया था ॥४४॥

२५--शिवशङ्खचूड़युद्धम् ।

शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ।
 ययौ स्वयञ्च समरं सगरौः सहनारद ॥ १ ॥
 शङ्खचूड़ः शिव द्वष्ट्वा विमानादवरुह्य च ।
 ननाम परया भक्त्या दण्डवत् पतितो भुवि ॥ २ ॥
 तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः ।
 तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम् ॥ ३ ॥
 शिवदानवयोर्दुद्धं पूर्णमब्दं वभूव ह ।
 न वभुवतुर्ब्रह्मन्ननयोर्जयपराजयौ ॥ ४ ॥
 न्यस्तशस्त्रश्च भगवान् न्यस्तशस्त्रश्च दानवः ।
 रथस्थः शंखचूड़श्चवृपस्थोवृञ्भध्वजः ॥ ५ ॥
 दानवानाञ्च शतकमुद्वृत्तञ्च वभूव ह ।
 रणो ये ये मृताः शम्भुर्जीवियामास तान्विभुः ॥ ६ ॥
 ततो विष्णुर्महामायावृद्धब्राह्मणरूपधृक् ।
 आगत्य च रणस्माथानमुवाच दानवेश्वरम् ॥ ७ ॥

अथ शम्भुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति ।

ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वलम् ॥ १३ ॥

नारायणाधिष्ठिताग्रां ब्रह्माधिष्ठितमध्यगम् ।

शिवाधिष्ठितमूलञ्चकालाधिष्ठितधारकम् ॥ १४ ॥

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—हे राजेन्द्र ! मुझे वृद्ध ब्राह्मण के लिये भिक्षा दो क्योंकि आप तो समस्त सम्पदाओं के प्रदान करने वाले हैं । मेरे मन में जो भी कुछ इच्छित है, वही मुझे देने की कृपा करें ॥८॥ मैं निराहार हूँ - वृद्ध हूँ - तृपित हूँ और आतुर हूँ , मुझे ऐसी दशा वाले के पहिले भिक्षा दो, इसके पश्चात् मैं कहूँगा । पहिले अपना सत्य वचन मुझे दे दो कि मैं जो याचना करूँगा वह आप मुझे देंगे ॥ ९ ॥ राजेन्द्र शङ्खचूड़ ने प्रसन्न सुख और नेत्र वाला होकर उस वृद्ध ब्राह्मण से 'अ'—ऐसा कहा था अर्थात् तुम जो भी याचना करोगे उसे मैं तुमको निश्चित रूप से दूँगा, ऐसी स्वीकृति का वचन दिया था । तब वृद्ध ब्राह्मण ने कहा मैं तुम्हारे कवच की याचना करता हूँ ॥९-१०॥ यह श्रवण करके उस दानवों में श्रेष्ठ ने तुरन्त ही वह उत्तम कवच उसे दे दिया था । उस कवच को ग्रहण कर के हरि अपने दिव्य लोक को चले गये थे ॥११॥ इसके उपरान्त शङ्खचूड़ का रूप धारण करके वे तुलसी के समीप गये थे और वहाँ जाकर माया से उस में वीर्य का आधान कर दिया था ॥१२॥ इसके अनन्तर शम्भु ने दानव के प्रति हरि का दिया हुआ शूल ग्रहण किया था । वह शूल ग्रीष्म काल के मध्याह्न समय के मार्त्तण्ड शतक की प्रभा के समान उज्ज्वल था ॥१३॥ उसका अग्रभाग नारायण से अधिष्ठित था तथा मध्यभाग ब्रह्मा से अधिष्ठित था और शिव से अधिष्ठित उसकी धार थी ॥१४॥

किरणावलिसंयुक्तं प्रलयान्निशिखोपमम् ।

दुर्निवार्यञ्च दुर्द्वर्षमव्यथं वैरिघातकम् ॥ १५ ॥

॥१०॥ ॥११॥ ॥१२॥ ॥१३॥ ॥१४॥ ॥१५॥ ॥१६॥ ॥१७॥ ॥१८॥ ॥१९॥ ॥२०॥
 ॥२१॥ ॥२२॥ ॥२३॥ ॥२४॥ ॥२५॥ ॥२६॥ ॥२७॥ ॥२८॥ ॥२९॥ ॥३०॥
 ॥३१॥ ॥३२॥ ॥३३॥ ॥३४॥ ॥३५॥ ॥३६॥ ॥३७॥ ॥३८॥ ॥३९॥ ॥४०॥
 ॥४१॥ ॥४२॥ ॥४३॥ ॥४४॥ ॥४५॥ ॥४६॥ ॥४७॥ ॥४८॥ ॥४९॥ ॥५०॥
 ॥५१॥ ॥५२॥ ॥५३॥ ॥५४॥ ॥५५॥ ॥५६॥ ॥५७॥ ॥५८॥ ॥५९॥ ॥६०॥
 ॥६१॥ ॥६२॥ ॥६३॥ ॥६४॥ ॥६५॥ ॥६६॥ ॥६७॥ ॥६८॥ ॥६९॥ ॥७०॥
 ॥७१॥ ॥७२॥ ॥७३॥ ॥७४॥ ॥७५॥ ॥७६॥ ॥७७॥ ॥७८॥ ॥७९॥ ॥८०॥
 ॥८१॥ ॥८२॥ ॥८३॥ ॥८४॥ ॥८५॥ ॥८६॥ ॥८७॥ ॥८८॥ ॥८९॥ ॥९०॥
 ॥९१॥ ॥९२॥ ॥९३॥ ॥९४॥ ॥९५॥ ॥९६॥ ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः ।
 गोलोकादागतं यानमारुह्य तत् पुरं ययौ ॥ २० ॥
 गत्वा ननाम शिरसा राधामाधवयोर्मुने ।
 भक्तया तच्चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने वने ॥
 सुदामानं तौ च दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणी ॥ २३ ॥
 तदा च चक्रतुः क्रोडे स्त्रे हेन परिसप्लुतौ ।
 अथ शूलञ्च वेगेन प्रययौ शूलिन करम् ॥ २४ ॥
 शङ्करस्तेन शूलेन शूलपाणिर्वभुव सः ।
 स शिवस्तेन शूलेन दानवस्यास्थिजालकम् ॥ २५ ॥
 प्रेम्ण च प्रेरयामास लवणोदे च सागरे ।
 अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्वभुव ह ॥ २६ ॥
 नानाप्रकाररूपा च शश्वत् भूता सुरार्चने ।
 प्रशस्तंशङ्खतोयञ्चदवानां प्रीतिदं प०म् ॥ २७ ॥

उसी समय एक विमान गोलोक धाम से आया था जो उत्तम रत्नों से निर्मित था तथा करोड़ों गोपियों से वेष्टित था । उस यान पर वह समारुह होकर गोलोक में चला गया था ॥२२॥ हे मुने ! वहाँ पहुँच कर उसने राधा माधव के चरणों में शिर से प्रणाम किया था । भक्तिपूर्वक वृन्दावन के वन में रास में उनके चरण कमल की वन्दना की थी, वहाँ श्री राधा और माधव दोनों ने सुदामा को देखा तो परम प्रसन्नता प्राप्त की थी ॥२३॥ उस समय उन दोनों ने बड़े ही स्नेह के साथ उस सुदामा को अपनी गोद में बिठा लिया था और स्नेह से संपरिप्लुत हो गये थे इसके पश्चात् वह शूल वेग से शूली के हाथ में चला गया था ॥२४॥ उसी समय से उस शूल को हाथ में धारण करने से शंकर का नाम शूलपाणि हो गया था । उस शिव ने उस शूल से दानव के अस्थि जाल को प्रेम लवणोदधि सागर में प्रेरित कर दिया था । उन्हीं शंखचूड़ की अस्थियों से समुद्रों में शंख जाति की समुत्पत्ति हुई थी ॥२५-२६॥ वे शंख अनेक रूपों वाले थे जोकि निरन्तर देवों की अर्चना में परम पवित्र माने जाते हैं । शंख का जल परम प्रशस्त

आपको दया का समुद्र कहा करते हैं, वे मनुष्य भ्रान्त हैं—इसमें कुछ भी सशक नहीं है। आपने अपना ही भक्त परार्थ के लिये क्यों मार दिया था ? ॥३॥ हे दुर्वृत ! आप तो सर्वज्ञ कहे जाते हैं किन्तु आप पराई व्यथा को कुछ भी नहीं जानते हैं। इस लिये एक जन्म में आप अपने आप को ही मल गये ॥४॥ इतना कहकर वह महा साध्वी तुलसी हरि के चरणों ने गिर गई थी। वह बहुत अधिक रोई और शोक में आर्त्त होकर वार-वार अत्यन्त विलाप करने लगी थी ॥५॥ उस की करुणा को देखकर करुणामय तथा करुणा के सागर कमला के स्वामी नारायण ने उसका समझाने के लिये कहा था ॥६॥ श्री भगवान ने कहा—हे साध्वि ! तू ने भारत में मेरे प्रति प्राप्त करने के लिये बहुत समय तक तपस्या की थी और तुझे पत्नी के स्वरूप में पाने के लिये शंखचड़ने अत्यधिक समय तक तप किया था ॥७-८॥

कृत्वा त्वां कामिनीं कामी विजहार च तत् फलात् ।

अधुना दानुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥ ६ ॥

इदं शरीरं त्यक्तवा च दिव्यं देहं विधाय च ।

रासे मे रमया सार्द्धं त्वं रमा सद्यशीभव ॥ १० ॥

इदं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता ।

पूता सुपुण्यदा नृणं पुण्या भवतु भारते ॥ ११ ॥

तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्ति च ।

तुलसीकेशसम्भूता तुलसीति च विश्रुता ॥ १२ ॥

त्रिलोकेषु च पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने ।

प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥ १३ ॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम सन्निधौ ।

भवन्तु तुलसीवृक्षा वराः पुष्पेषु सन्दरि ॥ १४ ॥

गोलोके विरजा तीरे रासे वृन्दावने भुवि ।

भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥ १५ ॥

मददेश मदीराजा वसवकपतिमुने ।
वदियो वनहेला व मिनागोवि.खगोल. ॥१॥

२७—सावित्रीव्याख्यानम्

मदस्य दीर्घा का सावित्रीव्याख्यानम् ॥१॥
द्वेषे ॥१५-१३३॥ विनयी से नक क मुन म - सुपुत्र दने बाले पुण दश
मावली के वन म बडे पर पुण स्थानो म नम प्रनाम करने बाले से से बल
म तथा रज्य बरन के वन म - मावली, बरकी, कुं म निकाय शीर
बदर - री म - बरवान बरी मिका म - गहरी म - बरक वन
सावित्री मु पुला म खल विनयी से बस लेले ॥५॥ गो लोके से-मुर्गना क
हे सुनरी । कर्मा म - मरुती, म गवान म शीर बकुळ म से
शीर पना म यह मशाल क्य बा ती विनयी हे वरान हो जावनी ॥३३॥
विनयी माप से मरुत मप हे ॥२॥ लीला लोको म दशो क पुन म पुना ॥१॥
मरुत हे व मव पुव वंछ हो जावे दशो लिय विनयी के कथा से मरुत के
मरुत म मरुतो क सिद्ध पुण कर्मा शीर ॥१॥ ने से वी पर कथो के
मरुत हे । यह मरुकी पुम पवन - सुपुत्र के प्रदान करने व ली शीर
जा ॥१०॥ यह मरा शीर मरे मरा के मय से मरा के शीर का ल्याम कर मपना
सिद्ध देहे माल कर शीर से मरा हे ॥२॥ मव से मरा के पल देने का लिवर
मरा ने से माप विहरि लिय म । मव ने से मरा के पल देने का लिवर
मराव व म काशी से विनयी काशी बजाकर वव मरुत के पल
सावित्रीव्याख्यानम् ॥१॥
विनयीवकपले व पुणदेशे मपुण्डे ।
मव.वे वरवरन पुणस्थाने पुण्डे ॥३॥
मावली कलकी कुंदमलिका मावलीवने ।

आसीत्तस्य महाराज्ञी महिषीधर्मचारिणी ।
 मालतीतिचसाख्यातायथा लक्ष्मीर्गदाभृतः ॥२॥
 सा च राज्ञीमहासाध्वीवशिष्ठस्योपदेशतः ।
 चकाराराधनंभक्त्यासावित्र्याश्चैव नारद ॥३॥
 प्रत्यादेश न सा प्राप महिषी न ददर्श ताम् ।
 गृहं जगाम सा दुःखाद्दृष्टदयेनविदूयता ॥४॥
 राजा तां दुःखितां दृष्ट्वाबोधयित्वानयेनवै ।
 सावित्र्यास्तपसेभक्त्याजगामपुष्करंतदा ॥५॥
 तपश्चार तत्रैव संयतः शतवत्सरम् ।
 न ददर्श च सावित्रीं प्रत्यादेशो वभूव ह ॥६॥
 शुश्रावाकागवाणीञ्च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम् ।
 गायत्री दशलक्षञ्च जपं कुर्वीत नारद ॥७॥
 एतस्मिन्ननन्तरं तत्र प्रजगाम पंगशरः ।
 प्रणानाम नृपस्तञ्च मुनिर्नृपमुवाच ह ॥८॥

इस अध्याय में सावित्री के उपाख्यान का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा -- हे मुने ! भद्रदेश में महाराजा अश्वपति हुए थे । यह राजा शत्रुओं के तो बल के हरण करने वाले थे और मित्रों के दुःखों का नाश करने वाले हुए थे ॥१॥ उसकी महारानी धर्म का आचरण करने वाली महिषी मालती -- इस नाम से कही गई थी जोकि भगवान गदाधारी की पत्नी लक्ष्मी के तुल्य थी । २॥ हे नारद ! वह सती बहुत अधिक साध्वी थी । उसने वसिष्ठ मुनी के उपदेश से भक्ति - भाव के साथ अराधना की थी ॥३॥ उम महिषी ने कोई भी प्रत्यादेश प्राप्त नहीं किया था और उसने उस देवी का दर्शन भी नहीं किया था । इस लिये बड़े ही दुःख से विद्यमान हृदय से वह गृह को चली गई थी ॥४॥ राजा ने जब उसको परम दुःखित देखा तो नय की विधि से उसे समाभूया था और फिर वह उस समय भक्ति पूर्वक सावित्री देवी के तप करने के लिये पुष्कर को चला गया था ॥५॥ वहाँ पर उसने एक सौ वर्ष पर्यन्त निरंतर अति संयत होकर तप किया था । उसने सावित्री देवी का दर्शन तो प्राप्त नहीं

कर लोभे ॥१२॥ प्रवि-नित्य प्रतिदिन तीनों कालकी सन्ध्या करोगे । सदा पवित्र होकर प्रायःकाल में - मध्याह्न में और सायाह्न में सन्ध्या करनी ही चाहिए ॥१३॥ जो सन्ध्या से हीन होता है वह नित्य ही अपवित्र रहना है और समस्त कर्मों में क्रिया करने के अयोग्य होता है । जो कुछ भी वह दिन में कर्म करता है, उसके फल का वह भागी नहीं हुआ करता है ॥१४॥

इत्युक्त्वाचमुनिश्रेष्ठःसर्वं पूजाविधिक्रमम् ।

तामुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम् ॥१५॥

दत्त्वा सद्य नृपेन्द्राय प्रययी स्वालय मुनी ।

राजा सम्पूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च ॥१६॥

स्तुत्वाग्नेन सोऽश्वपतिः संपूज्य-विधिपूर्वकम् ।

ददर्शतत्रतां देवींमहाम्नांरकसमप्रभाम् ॥१७॥

उवाच-नातराजानप्रपन्ना सास्मितासती ।

यथामातास्त्रपुत्रञ्च द्योतयन्ती दिशस्त्वपा ॥१८॥

जानामिते महाराज यत्तेमनसिवर्त्तते ।

वाञ्छितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामिनिश्चितम् ॥१९॥

साध्वी कन्याभिलापञ्च करोति तव कामिनी ।

त्वप्रार्ययसि पुत्रञ्च भविष्यतिक्रमेणते ॥२०॥

इत्युक्त्वा सा महादेवी ब्रह्मलोकं जगाम ह ।

राजा जगामस्वगृहंनत्कन्याऽऽदीवभूवह ॥२१॥

इतना कह कर उस पराशर मुनि ने सावित्री देवी की सम्पूर्ण पूजा की विधि का क्रम और अभिप्सित ध्यान आदि उस राजा को कह दिया था ॥१५॥ इस तरह से मुनि ने नृपेन्द्र को सब दे दिया था और फिर वह अपने आश्रम को चले गये । राजा ने सावित्री देवी की अर्चना की थी और उसका दर्शन प्राप्त किया तथा उस सावित्री से वरदान पाने का लाभ भी प्राप्त किया था । १६। इस अध्याय में द्वितीय सावित्री का जन्म तथा विवाह

पश्चात्तां सुन्दरीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः ।

उवाच मधुर साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ॥२९॥

सावित्री देवी की धाराधना से वह कमला की एक कला हुई थी, इस लिये अश्वपति राजा ने उसका नाम सावित्री यह रखा था ॥२२॥ समय के निकलते हुए वह बढ़ कर दिनों दिन बड़ी हो गयी थी । वह रूप - यौवन से सम्पन्न शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला के तुल्य परम सुन्दरी थी ॥२३॥ उसने उस समय द्युमत्सेन के पुत्र को अपना पति वरण किया था, जिसका नाम सत्यवान था और वह अनेक गुण गए से सम्पन्न था ॥२४॥ राजा अश्वपति ने उस सावित्री को रत्नों के भूषणों से विभूषित कर के उस सत्यवान को दान कर दिया था । और वह यौतुक (दहेज) के साथ उसे ग्रहण करके घर को चला गया था ॥२५॥ एक वर्ष समाप्त होने पर सत्य विक्रम वाला सत्यवान अपने पिता की आज्ञा से फल काष्ठ के लिये प्रसन्नता पूर्वक गया ॥२६॥ दैवयोग से उसके पीछे ही सावित्री भी वहाँ चली गई थी । सत्यवान देव वश वृक्ष से गिर गया था और उसने अपने प्राणों को त्याग दिया था ॥२७॥ हे मुने ! यम ने वृद्ध अङ्गुष्ठ के समान उस जीव पुष्प को ग्रहण कर लिया था और वहाँ से गमन कर गया था । उसी के पीछे सती सावित्री गई थी ॥२८॥ संयमनी के पति यम ने उस सावित्री को पीछे आती हुई देखकर साधुओं में प्रवर श्रेष्ठ महान ने उस साध्वी से मधुर वचन कहा था ॥२९॥

अहो कथासिसावित्री गृहीत्वा मानुपीतनुम् ।

यदियास्यासिकान्तेन सार्द्धं देहतदात्यज ॥३०॥

गन्तुं मर्त्येण शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम् ।

देहञ्च यमलोकञ्च नश्वरनश्वरः सदा ॥३१॥

भक्तुं स्ते कालपूर्णश्च बभूव भारते सति ।

सेकर्मफलभोगार्थं सत्यवान् याति मद्गृहम् ॥३२॥

कर्मण जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।

मुञ्जं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते ॥३३॥

॥ १ ॥ ...
 ॥ २ ॥ ...
 ॥ ३ ॥ ...
 ॥ ४ ॥ ...
 ॥ ५ ॥ ...
 ॥ ६ ॥ ...
 ॥ ७ ॥ ...
 ॥ ८ ॥ ...
 ॥ ९ ॥ ...
 ॥ १० ॥ ...

॥ ११ ॥ ...
 ॥ १२ ॥ ...
 ॥ १३ ॥ ...
 ॥ १४ ॥ ...
 ॥ १५ ॥ ...
 ॥ १६ ॥ ...
 ॥ १७ ॥ ...
 ॥ १८ ॥ ...
 ॥ १९ ॥ ...
 ॥ २० ॥ ...

जीवात्मा अमरत्व को लाभ कर लेता है तथा अपने कर्मों के कारण भगवान विष्णु की सालोक्य आदि चार प्रकार की मुक्ति को प्राप्ति किया करता है एवं समस्त सिद्धियों का लाभ कर लेता है ॥३५॥ कर्मों के द्वारा ही ब्राह्मणत्व और अपने कर्म से मुक्तित्व यह जन्तु प्राप्त करता है तथा मनुष्य सुरत्व-मनुष्यत्व एवं राजेन्द्रत्व के पद का लाभ प्राप्त करता है ॥३६॥ कर्मों के प्रभाव से मुनीन्द्रत्व-तपस्वित्व-क्षत्रियत्व तथा वैश्यत्व के पदों को प्राप्त करता है । यह जीवात्मा कर्म से शूद्रत्व और अन्त्यजत्व को पाया करता है । कर्म ही प्रबल और सबकी प्राप्ति का चाहे बुरा हो या भला मुख्य साधन होता है । समस्त प्राणी इसी के द्वारा बद्ध हैं ॥३७॥ कर्म से वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है और निरामय गोलोक धाम को भी चला जाया करता है । कर्मों के अनुसार ही यहाँ यह चिरकाल तक जीवित रहने वाला तथा कर्म प्रभाव से क्षण की आयु वाला होता है ॥३८॥ कर्म से करोड़ों कल्पों की आयु हो जाती है और कर्म से ही क्षीण आयु वाला होता है । जीव का सञ्चार होने भर की भी आयु हुआ करती है तथा अपने कर्म से गर्भ में ही मृत्यु हो जाया करती है ॥३९॥ हे सुन्दरि ! मैं ने यह सम्पूर्ण तत्व इस प्रकार से तुमको बता दिया है । तुम्हारा यह स्वामी अपने कर्म के प्रभाव से मृत हो गया है । इसलिये हे वत्से ! तुम अपने घर सुख पूर्वक वापिस चली जाओ ॥४०॥



२८—कर्मविपाके सावित्री प्रश्नः ।

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता ।

तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥१॥

क्विकर्मंवाशुभं वम्मंराज्किवाऽशुभनृणाम् ।

कम्मं निर्मुलयन्त्येव केनवासाधवोजनाः ॥२॥

कम्मणां वीजरूपःकः कोवा कम्मफलप्रदः ।

क्वि कम्म उद्भवेत् केनकोवा तद्वेतुरेवच ॥३॥

॥२॥ ... ॥३॥ ...

... ॥३॥ ... ॥४॥ ... ॥५॥ ... ॥६॥ ... ॥७॥ ... ॥८॥ ... ॥९॥ ... ॥१०॥ ... ॥११॥ ... ॥१२॥ ... ॥१३॥ ... ॥१४॥ ... ॥१५॥ ... ॥१६॥ ... ॥१७॥ ... ॥१८॥ ... ॥१९॥ ... ॥२०॥ ...

हरिभक्तो नरो यश्च सच मुक्तः श्रुतौ श्रुतम् ।
 जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ॥६॥
 मुक्तिश्च द्विविधा साध्वि ! श्रुत्युक्ता सर्वसम्मता ।
 निर्वाणपददात्री च हरिभक्तिप्रदा नृणाम् ॥१०॥
 हरिभक्तिस्वरूपाञ्चमुक्तिवाञ्छन्निर्वाणवाः ।
 अन्ये निर्वाणरूपाञ्चमुक्तिमिच्छन्तिसाधवः ॥११॥
 कर्मणोबीजरूपश्च सन्ततं तत् फलप्रदः ।
 कर्मरूपश्च भगवान् श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥१२॥
 सोऽपि तद्धेतुरूपश्च कर्म तेन भवेत्सति ।
 जीवः कर्मफलं भुङ्क्ते आत्मा निर्लिप्त एवच । १३॥
 आत्मनः प्रतिविम्बश्च देही जीवः स एवच ।
 पाञ्चभौतिकरूपश्च देहो नश्वरएव च ॥१४॥

यमराज ने कहा—वेद के द्वारा विदित जो कर्म है वही परम मङ्गल में मानता हूँ । जो कर्म अद्वैदिक अर्थात् वेद के विरुद्ध या वेद से विहित नहीं है वही अशुभ होता है ॥७॥ बिना किसी हेतु के संकल्प से रहित सत्पुरुषों की जो विष्णु सेवा है वह कर्मों के निर्मूल करने के रूप वाली तथा हरि भक्ति के प्रदान करने वाली होती है ॥८॥ जो नर हरि का भक्त होता है वह मुक्त होता है । ऐसा श्रुति में श्रुत है । वह नर जन्म-व्याधि-मृत्यु-जरा-शोक-भीति आदि सब से वर्जित हो जाता है ॥६॥ हे साध्वि ! यह मुक्ति दो प्रकार की होती है जो श्रुति में कही गई है और सर्व सम्मत है तथा एक तो निर्वाण के पद को देने वाली मुक्ति होती है और दूसरी हरि की भक्ति प्रदान करने वाली है ॥१०॥ वैष्णव लोग हरि भक्ति प्रदा मुक्ति को ही चाहते हैं जोकि हरि की भक्ति के रूप वाली होती है । अन्य साधु लोग निर्वाण पद रूप वाली मुक्ति की इच्छा रखते हैं ॥११॥ कर्म का बीज रूप और उसका फल देने वाला कर्मरूप भगवान् श्री कृष्ण हैं जो प्रकृति से पर हैं ॥१२॥ हे सति ! वह भी उसका हेतु रूप है । उससे कर्म होना है । कर्मों के फल को जीव भोगता है और

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥३१-४॥ ॐ भद्रं कुरु तु भाग्यवाने ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥३१-५॥ ॐ भद्रं कुरु तु भाग्यवाने ॥

॥३१॥ मन्त्रेण शिवः शक्तिं प्रकटयति ।
 ॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥

॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥
 ॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥

॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥
 ॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥

॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥
 ॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥

॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥
 ॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥

॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥
 ॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥

॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥
 ॥ शक्तिरप्यशक्तिं प्रकटयति ॥

(पञ्चमः अक्षरः ॥ ३१ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३१ ॥ ॐ भद्रं कुरु तु भाग्यवाने ॥)

[ॐ नमो भगवते वासुदेवाय]

का बीज ज्ञान नाना प्रकार का होता है । विषयों के विभागों के भेद को बीज कहा गया है ॥१७॥ विवेचन के रूप वाली बुद्धि होती है । वह श्रुति में ज्ञान के दीपन करने वाली कही गई है । प्राण वायु के ही भेद हैं जोकि देह धारियों के बल स्वरूप होते हैं ॥१८॥ इन्द्रियों में प्रवर-ईश्वरों का समूह-कर्मों का प्रेरक और देहियों का दुनिवार्य निरूपण करने के योग्य और अदृश्यज्ञान का भेद ही मन कहा गया है ॥१९-२०॥ लोचन-श्रवण-घ्राण-त्वक् श्री जिह्वा आदि इन्द्रियाँ हैं । ये सब अङ्गियों के अङ्ग रूप हैं तथा समस्त कर्मों की प्रेरक होती हैं ॥२१॥ रिपु का रूप और मित्र का रूप सदा दुःख देने वाला तथा सुख देने वाला होता है । सूर्य-वायु और पृथिवी तथा वाणी आदि देवता कहे गये हैं ॥२२॥ देह आदि के धारण करने वाला जो प्राण है, वह ही जीव कहा गया है । परमात्मा पर ब्रह्म है जो निर्गुण एवं प्रकृति से पर होता है ॥२३॥ कारणों का कारण भगवान् स्वयं श्रीकृष्ण हैं । इस प्रकार से मीने आगम के अनुसार सब तुमको बता दिया है जोकि ज्ञानियों का ज्ञान रूप है । हे वत्से ! अब तुम सुख पूर्वक वापिस चली जाओ । २४॥

त्यक्त्वा क यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं बुधम् ।

यद् यत् करोमि प्रश्नञ्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥२५॥

कां कां योर्नियाति जीवः कर्मणा केन वा यम ।

केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकपितः ॥२६॥

केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्धरेः ।

केन वा कर्मणा रोगी चारोगी केन कर्मणा ॥२७॥

केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणः ।

केन वा कर्मणा दुःखी केनवाकर्मणा सुखी ॥२८॥

को वा कं नरकं याति कियन्तंतेषु तिष्ठति ।

पापिनां कर्मणा केनकोवाव्याधिःप्रजायते ॥

यद्यदस्ति मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२९॥

सावित्री ने कहा—मैं अपने स्वामी को और ज्ञान के सागर परम बुध आपका त्याग करके कहाँ जाऊँ ? मैं जो-जो प्रश्न करती हूँ, आप उसे बताने को योग्य होते हैं ॥२५॥ हे यमराज ! यह जीव किस कर्म से किस-

इस अध्याय में कर्मों के विपाक में कर्मों के अनुकूल स्थान में गनन करने का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा—सावित्री के इस वचन को गुरुकर यमराज को ब्रह्म आश्चर्य हुआ था । वह हँसा और फिर जीवों के कर्म वाक को बताना उसने आरम्भ किया था ॥१॥ यमराज ने कहा—
हे वत्से ! जब बारह वर्ष की कन्या अवस्था से होती है, किन्तु तेरा ज्ञान पूर्व विद्वान योगी और ज्ञानियों का सा है ॥२॥ हे शुभे ! पहिले राजा ने तप द्वारा सावित्री के वरदान से उसी के समान सावित्री की कला तुझे प्राप्त किया है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार से श्रीपति की गोद में श्री है, महादेव की गोद में भवानी है, श्रीकृष्ण के अङ्ग में राधा है उनी प्रकार से ग्रह्या के वक्ष-स्थल में सावित्री देवी है ॥४॥ धर्म के उर में जैसे मूर्तिमनु में शतरुपा-कर्दम में देवहूती-वसिष्ठ में अरुन्धती-कश्यप में अदिति-गौतम में अहल्या-महेन्द्र में शची-चन्द्र में रोहिणी-काम देव में रति-हुताशन में न्वाहा तथा पितृगण स्वधा और जिस तरह दिवा कर में संज्ञा है ॥५-७॥

वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा ।
यथा घरा वराहे च देवसेना च कार्तिके ॥८॥
सौभाग्या सुप्रिया त्वञ्च भव सत्यवति प्रिये ।
इति तुभ्यं वरं दत्तमपरञ्च यदीप्सितम् ॥
वृषु देवी महाभागे सर्वदास्याम निश्चितम् ॥९॥
सत्यवदौरसेनैव पुत्राणां शतकं मम ।
भविष्यति महाभाग वरमेतद् मदीप्सितम् ॥१०॥
मत्पितुः पुत्रशतकं स्वशुरस्य च चक्षुषी ।
राज्यलाभो भवत्वेव वरमेवं मदीप्सितम् ॥११॥
अन्ते सत्यवता साद्धं यास्यामि हरिमन्दिरम् ।
समतीते लक्षवर्षे देहीमं मे जगत्प्रभो ॥१२॥
जीवकर्मविपाकञ्च श्योतुं कोतूहलञ्च मे ।
विश्वविस्तारवीजञ्च तन्मे व्याख्यातुं मर्हसि ॥१३॥

1102 || 1103 || 1104 || 1105 || 1106 || 1107 || 1108 || 1109 || 1110 || 1111 || 1112 || 1113 || 1114 || 1115 || 1116 || 1117 || 1118 || 1119 || 1120 || 1121 || 1122 || 1123 || 1124 || 1125 || 1126 || 1127 || 1128 || 1129 || 1130 || 1131 || 1132 || 1133 || 1134 || 1135 || 1136 || 1137 || 1138 || 1139 || 1140 || 1141 || 1142 || 1143 || 1144 || 1145 || 1146 || 1147 || 1148 || 1149 || 1150 || 1151 || 1152 || 1153 || 1154 || 1155 || 1156 || 1157 || 1158 || 1159 || 1160 || 1161 || 1162 || 1163 || 1164 || 1165 || 1166 || 1167 || 1168 || 1169 || 1170 || 1171 || 1172 || 1173 || 1174 || 1175 || 1176 || 1177 || 1178 || 1179 || 1180 || 1181 || 1182 || 1183 || 1184 || 1185 || 1186 || 1187 || 1188 || 1189 || 1190 || 1191 || 1192 || 1193 || 1194 || 1195 || 1196 || 1197 || 1198 || 1199 || 1200 ||

1123 || 1124 || 1125 || 1126 || 1127 || 1128 || 1129 || 1130 || 1131 || 1132 || 1133 || 1134 || 1135 || 1136 || 1137 || 1138 || 1139 || 1140 || 1141 || 1142 || 1143 || 1144 || 1145 || 1146 || 1147 || 1148 || 1149 || 1150 || 1151 || 1152 || 1153 || 1154 || 1155 || 1156 || 1157 || 1158 || 1159 || 1160 || 1161 || 1162 || 1163 || 1164 || 1165 || 1166 || 1167 || 1168 || 1169 || 1170 || 1171 || 1172 || 1173 || 1174 || 1175 || 1176 || 1177 || 1178 || 1179 || 1180 || 1181 || 1182 || 1183 || 1184 || 1185 || 1186 || 1187 || 1188 || 1189 || 1190 || 1191 || 1192 || 1193 || 1194 || 1195 || 1196 || 1197 || 1198 || 1199 || 1200 ||

दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम् ।

अन्धादयश्चङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा ॥२१॥

यमराज ने कहा—हे साध्वि ! यह सब तेरे मन में रहने वाला मनोरथ होगा । अब मैं जीवों के कर्मों का विपाक बताता हूँ, उसका श्रवण कर ॥१४॥ इस पुण्य के क्षेत्र भारत में सर्वत्र शुभ और अशुभ कर्मों का जन्म होता है जिसे नर भोगते हैं अन्यत्र नहीं भोगा जाता है ॥१५॥ सुर-दैत्य-दानव-गन्धर्व-राक्षस आदि और नर कर्मों के जनक हैं, सब समजीवी नहीं हैं ॥१६॥ समस्त योनियों में विशिष्ट जीव ही कर्म का भोग किया करते हैं । विशेष रूप से ये मानव ही समस्त योनियों में भ्रमण किया करते हैं ॥१७॥ शुभ और अशुभ पूर्व जन्मों में अर्जित किया हुआ कर्म भोगते हैं । शुभ कर्म से मानव स्वर्ग आदि में जाते हैं ॥१८॥ जब कोई अशुभ कर्म होते हैं तो उनके कारण वे नरकादि में भ्रमण करते हैं । कर्मों का निर्मूलन होने पर मुक्ति होती है जोकि दो प्रकार की मानी गई है ॥ १९ ॥ एक निर्वाण रूप वाली मुक्ति है और दूसरी परमात्मा कृष्ण की सेवा के स्वरूप वाली है । आकर्म से जीव रोगी होता है और शुभ कर्म से वह रोग रहित रहता है ॥ २० ॥ कुत्सित कर्म के प्रभाव से ही अन्धे और अङ्ग हीन होते हैं । दार्ढ्यजीवी तथा क्षीण आयु वाले-सुखी-और दुखी सब कर्म से ही हुआ करते हैं ॥२१॥

सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेनकर्मणा ।

सामान्यकथितं सर्वं विशेषं शृणुसुन्दरि ॥२२॥

सुदुर्लभ सुभोग्यञ्च पुराणो च श्रुतष्वपि ॥२३॥

दुर्लभा मानवीजातिः सर्वजातिषु भारते ।

सर्वाभ्योत्राह्वणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ॥२४॥

विष्णुभक्तोद्विजश्चैवगरीयान् भारतेततः ।

निष्कामश्च सकामश्च वैष्णवोद्विविधःसति ॥२५॥

सकामश्च प्रधानश्च निष्कामो भवतएवच ।

कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ॥२६॥

किमाकाराणिकुडानि कति तेषां सितानि च ।
 केनरूपेण तत्रैव तिष्ठन्ति पापिनःसदा ॥ ५ ॥
 स्वदेहे भस्मसाद्भूते यान्तिलोकान्तरं नरा ।
 केन देहेन वा भोगभुञ्जते वा शुभाशुभम् ॥ ६ ॥
 सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति ।
 देहो वा किंविधोब्रह्मन् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥
 सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् ।
 कथां कथितुमारभे गुरुं नत्वा च नारद ॥ ८ ॥

दस अध्याय मे यम और सावित्री के सम्वाद का वर्णन किया जाता है । सावित्री ने कहा—हे महाभाग ! आप तो वेदों और वेदाङ्गों के पारङ्गत महा महापण्डित है । हे धर्मराज ! आप अनेक पुराण और इतिहास तथा पञ्चरात्र का प्रदर्शन करने वाले हैं ॥१॥ इन सब में मारभूत-सबका डण्ड-सर्व सम्मत और कर्मों के छेदन करने वाला मनुष्यों का सुख देने वाला तथा प्रशस्त हो एवं यज्ञ प्रदायक-धर्म का देने वाला और समस्त मङ्गलों का भी मंगल हो जिससे वे सब भव (ससार) की दुःखद यातना को नहीं प्राप्त करते हैं -- कुण्डों को न देगते हैं और न उनमें पडते हैं और जिससे जन्म आदि नहीं होते हैं, वही कम है सुवृत् ! मुझे अब आप कृपाकर बताइये ॥२-३-४॥ ये काण्ड किस आकर वाले और कितने हैं और पापी लोग वहां पर किस रूप से पदा रहा करने हैं ? ॥५॥ इस आने देह के भस्मसात हो जाने पर नर फिर किस देश में ग्रन्थ लोक को जाया करते हैं तथा शुभ और अशुभ कर्म का फल भोगते हैं ! ॥६॥ अधिक समय तक कर्मों के भोग से यह देह नष्ट क्यों नहीं होना है? ब्रह्मन् ! वह देह भी किस प्रकार का होता है ? आप यह सब बताने के योग्य होते हैं ॥७॥ हे नारद ! धर्मराज ने सावित्री के इन वचनों को सुन कर हरि का स्मरण करते हुए गुरु का प्रणाम करके कथा को कहना आरम्भ किया था ॥८॥

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु सहितासु च ।

पुराणेष्वितिहासेषु पञ्चरात्रादिकेषु च ॥ ९ ॥

॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः अष्टाध्याय्योऽष्टमोऽध्यायः ॥

॥ १ ॥ अथ कृष्ण उवाच ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ २ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ ३ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ ४ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ ५ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ ६ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ ७ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ ८ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ ९ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १० ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥

॥ ११ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १२ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १३ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १४ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १५ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १६ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १७ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १८ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ १९ ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥
॥ २० ॥ अहो भवति भवति ॥ अहो भवति भवति ॥

प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च ।

न यान्तितेचघोराञ्च मम समयमनी पुरीम् ॥ १६ ॥

त्रिसन्ध्यप्ता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः ।

सधर्मनिरताःशान्ता नयान्तियममन्दिरम् ॥ १७ ॥

जो गृहस्थ हरि का व्रत करते हैं जोकि कर्मों के भोगने वाले है श्रीर जो हरि के तीर्थों में स्नान करते है तथा हरि वासर में भोजन नहीं किया करते हैं - नित्य ही हरि को प्रणाम करते हैं - हरि की अर्चा करते हैं एवं उन्हें पूजते है, वे मेरी घोर समयमनी पुरी को नहीं जाया करते हैं ॥१५-१६॥ तीनों बाली सन्ध्या के द्वारा पवित्र प्रीर शुद्धाचार से जो सदा समन्वित रहते है -- अपने धर्म में निरत रहने वाले -- शान्त हैं, वे मेरे मन्दिर को नहीं जाया करते हैं ॥१७॥

३१—श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ।

हरिभक्तिं देहि मह्यं सारभूतां सुदुर्लभाम् ।

त्वत्तः सर्वं श्रुतं देव नावशिष्टोऽधुना मम ॥ १ ॥

किञ्चित् कथयमेधर्मं श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ।

पुंसां लक्षोद्धारवीजं नरकार्णवितारणम् ॥ २ ॥

कारणां मुक्तिसाराणां सर्वाशुभनिवारणम् ।

पावनकर्मवृक्षाणां कुतपापीघहारणम् ॥ ३ ॥

मुक्तयः कतिधा सन्ति किं वा तासाञ्च लक्षणम् ।

हरिभक्तैर्मूर्तिभेदं निपेकस्यापि लक्षणम् ॥ ४ ॥

तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिविधिनिर्मिता ।

किं तज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदांवर ॥ ५ ॥

सर्वदानमनशनं तीर्थस्नानं व्रतं तपः ।

ग्रज्ञानज्ञानदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशोम् ॥ ६ ॥

॥ ११ ॥ ब्रह्मसूत्रस्य आरम्भः ॥
 ॥ १० ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ९ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ८ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ७ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ६ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ५ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ४ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ३ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ २ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ १ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥

॥ १० ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ९ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ८ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ७ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ६ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ५ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ४ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ ३ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ २ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥
 ॥ १ ॥ अथ ब्रह्मसूत्रम् ॥

कार्तिकेय पण्मुखेन नापिवक्तुमलं ध्रुवम् ।
 न गणेशः समर्थश्चयोगीन्द्राणांगुरोगुरुः ॥ १२ ॥
 सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वारएव च ।
 कलामात्रयद्गुणानां नविदन्तिबुधाश्चये ॥ १३ ॥
 सरस्वती च यत्नेन नालं यद्गुणवर्णने ।
 सनतकुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः ॥ १४ ॥

यमराज ने कहा—मैंने पहले सब प्रकार का वरदान दे दिया था, जो
 तेरे मन में इच्छित था । अब मेरे वरदान से तुझे हे वरते ! श्री हरि की
 भक्ति प्राप्त होंगे ॥८॥ हे कल्याणि ! अब तू श्रीकृष्ण के गुणों का कीर्तन
 सुनना चाहती है जोकि बताने वालों और प्रश्न करने वालों तथा सुनने
 वालों के कुल को तारने वाला है ॥९॥ यह कृष्ण-गुण इतना अनंत है कि
 शेष अपने सहस्र मुखों से भी बताने में समर्थ नहीं होते हैं — मृत्युञ्जय शिव
 पांच मुख वाले भी बताने में समर्थ नहीं हैं । चार वेदों के विधाता और
 समस्त जगत्‌ओं के रचियता चार-मुख वाले ब्रह्मा चारों मुखोंसे कहने की
 क्षमता नहीं रखते हैं एवं सर्ववेत्ता विष्णु भी असमर्थ हैं ॥१०॥११॥
 स्वामि कार्तिकेय छे मुख से नहीं कह सकते हैं तथा योगीन्द्रों के गुरुओं के
 गुरु गणेश भी समर्थ नहीं है ॥१२॥ समस्त शास्त्रों के सारभूत चार वेद ही
 होते हैं । जो बुध हैं वे तो जिनके गुणों की एक कला भी नहीं जानते
 ॥१३॥ वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती भी यत्नों के द्वारा जिसके गुणों
 के वर्णन में समर्थ नहीं है । सनतकुमार-धर्म-सनक आदि भी क्षमता नहीं
 रखते हैं ॥१४॥

सनन्दः कपिलः सूर्योयेऽन्ये च ब्रह्मणःसुताः ।
 विचक्षणा न यद्वक्तुं केवान्येजडबुद्धयः ॥ १५ ॥
 न यद्वक्तुं क्षमाःसिद्धामुनीन्द्रायोगिनस्तथा ।
 केवान्ये च वयं केवा भगवद्गुणवर्णने ॥ १६ ॥
 ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजंब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
 अतिसाध्यंस्वभक्तानांतदन्येषांसुदुर्लभम् ॥ १७ ॥

तदा मां कथयामास पितायद्गुणकीर्त्तनम् ।
 यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम् ॥२४॥
 तद्गुणं स न जानाति तदन्यस्यचक्राकथा ।
 यथाकाशो नजानाति स्वान्तमेववरानने ॥२५॥
 सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वकारणकारणम् ।
 सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यःसर्ववित्सर्वरूपघृक् ॥२६॥
 नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः ।
 निरङ्कुशश्च निःशङ्कोनिर्गुणश्च निराश्रयः ॥२७॥
 निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः ।
 तादृकाराश्चप्रकृतिस्तद्विकाराश्चप्राकृताः ॥२८॥
 स्वयं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः ।
 रूपं विधत्ते ऽरूपश्च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२९॥

धर्म ने सूर्य को पुष्कर में उनके गुण-गण कह कर सुनाये थे ।
 जिसकी आराधना करके मेरे पिता ने तप के द्वारा हे सति ! मुझे प्राप्त
 किया था ॥२२॥ हे सुन्नते पहिले तो मैं भी अपने विषय को ग्रहण नहीं
 करता था और वैराग्य से युक्त होकर तपस्या करने को जाने की इच्छा
 करता था ॥२३॥ तब मेरे पिता सूर्य ने इनके गुणों का कीर्त्तन कहा था ।
 जैसा आगम कहता है उसी के अनुसार उसे मैं बताता हूँ । यह अत्यन्त दुर्गम
 है, इसको समझ ले ॥२४-२५॥ उनके गुण इतने अनन्त हैं कि उन्हें वे
 स्वयं भी नहीं जानते हैं फिर और की तो बात ही क्या है ? हे बरुनने !
 जिस तरह आकाश स्वान्त को ही नहीं जानता है ॥२५॥ भगवान् सब के
 अन्तरात्मा हैं और सब के कारणों के भी कारण स्वरूप हैं । वह सर्वेश्वर हैं
 सब के-आदि में रहने वाले हैं-सभी कुछ के ज्ञाता हैं और सबका रूप धारण
 करने वाले हैं ॥२६॥ नित्य रूप वाले-नित्य देह वाले नित्य आनन्द से युक्त
 --निरकृति -- निरङ्कुश --निःशङ्क-- निराश्रय और निर्गुण है । वे निर्लिप्त
 --सब के साक्षी --सबके आधार और परात्पर हैं । उसी का विकार यह
 प्रकृति है और उसके विकार रूप प्राकृत हैं ॥२७-२८॥ यह प्रभाव स्वयं

रहा करते हैं । मैं भी जिसके भय से धर्म और अधर्म के विषय में नियमों के करने वाला हूँ ॥३४-३५॥

चक्षुर्निमीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः ।
 प्रलये प्राकृताः सर्वे देवाद्याश्च चराचराः ॥३६॥
 लीनाघातरि घाता च श्रीकृष्णनाभिपङ्कजे ।
 विष्णुःक्षीरोदशायी च वैकुण्ठेयश्चतुर्भुजः ॥३७॥
 विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः ।
 रुद्राद्याभैरवाद्याश्च यावन्तश्च शिवानुगाः ॥३८॥
 शिवाधारे शिवेलीना ज्ञानानन्देसनातने ।
 ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चात्मनः ॥३९॥
 तस्य ज्ञानविलीनश्च वभूव च क्षणं हरेः ।
 दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः शंभुशक्तयः ॥४०॥
 सा च कृष्णस्य बुद्धी च बुद्ध्याधिष्ठातृदेवता ।
 नारायणांगःस्कन्दश्चर्लानावक्ष ; सितस्यच ॥४१॥
 श्रीकृष्णांशश्च तद्वाहो देवाधीशो गणेश्वरः ।
 पद्मांशाचापिपद्मायां सा राधायाञ्च सुव्रते ॥४२॥

उस महान पुरुष के नेत्रों के मूँदने में प्राकृतिक लय होता है । प्रलय काल में देव आदि सभी चराचर प्राकृत घाता में लीन हो जाते हैं और वह घाता श्रीकृष्ण के नाभि के कमल में लीन हो जाता है । क्षीर सागर में शयन करने वाले विष्णु जो वैकुण्ठ लोक में ग्यार भुजा वाले स्थित रहते हैं वह भी परमात्मा श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व में विलीन हो जाते हैं । रुद्र प्रादि और भैरव आदि जितने भी शिव के अनुयायी हैं, वे सब शिव (नङ्गल) के आधार-ज्ञानानन्द-सनातन शिव में लीन हो जाते हैं । जोकि महान आत्मा एवं महान देव कृष्ण के ज्ञान के अधि देव हैं ॥३६॥३७॥३८॥३९॥ उस हरि का क्षण भर केलिये ज्ञान का विलय हो जाता है । महामाया दुर्गा में समस्त शक्तियाँ विलीन हो जाती हैं ॥४०॥ वह दुर्गा कृष्ण की बुद्धि में बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है । जिसके वक्षःस्थल में नारायण का अंश स्कन्द

हैं और भक्ति सेवा के विवर्द्धन करने वाली होती है ॥४७॥ भक्ति और मुक्ति इन दोनों का यही भेद होता है । अब निषेध का लक्षण श्रवण करो । किये हुए कर्मों का निषेध और भोग को बृद्ध लोग जानते हैं ॥४८॥ उसका खण्डन शुभ का देने वाला श्रीकृष्ण का सेवन पर होता है । हे साध्वि ! यह लोक और वेदों का सार स्वरूप तत्त्व ज्ञान है ॥४९॥

विघ्नघ्नं शुभदं चोदतं गच्छवत्सेयथासुखम् ।

इत्युक्तवासूर्य्यपुत्रश्चजीवयित्वाचतत्पतिम् ॥५०॥

तस्यै शुभाशिपं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः ।

दृष्ट्वा यमञ्चगच्छन्तं सावित्री तं प्रणम्य च ॥५१॥

रुरोद चरणोधृत्वा सद्विच्छेदोऽतिदुःखदः ।

सावित्रीरोदनं दृष्ट्वा यम एव कृपानिधिः ॥

तामित्युवाच सन्तुष्टो रुरोद चापि नारद ॥५२॥

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ।

अन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवनं शुभे ॥५३॥

गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतंकुरु ।

द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम् ॥५४॥

ज्यैष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां सावित्र्याश्चव्रतंशुभम् ।

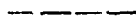
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्याव्रतंशुभम् ॥५५॥

द्व्यष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्येवं पक्षमेव च ।

करोति परया भक्त्या सा याति च हरेः पदम् ॥५६॥

जो विघ्न देने वाला है वह शुभ देने वाला कहा गया है । हे वत्से ! अब तू मुख पूर्वक वापिस जा । यह कहकर सूर्य के पुत्र यमराज ने उसके पति को जीवित कर दिया था और उसको शुभ आशीर्वाद देकर वह जाने को उद्यत हो गया । जब सावित्री ने देखा कि यमराज जा रहे हैं तो उसने उनको प्रणाम किया था । वह उनके चरणों में अपना शिर रखकर रोने लगी थी कि सत्पुरुष का विच्छेद (वियोग) अत्यन्त दुःखदायी होता है । हे

चली आई थी ॥५८॥ हे नारद ! उस सावित्री ने यह समस्त वृत्तान्त यथा
क्रम अपने स्वामी सत्यवान से तथा अन्य बान्धवों से कह दिया था ।
सावित्री के पिता ने पुत्रों की प्राप्ति की थी—उसके श्वशुर ने अपने नेत्रों को
प्राप्त किया और सावित्री ने यमराज के वरदान से श्रेष्ठ पुत्रों की प्राप्ति
की थी ॥६०॥ फिर उसने एक लाख वर्ष पर्यन्त पुण्य क्षेत्र भारत में पूर्ण
सुख का उपभोग करके वह गतिव्रता अपने स्वामी सत्यवान के साथ ही
अन्त में गोलोक में चली गई थी ॥६१॥ वह साविता की आधिदेवी थी
और मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवता थी और वेदों की भी वह सावित्री आधि
देवी थी । अतएव सावित्री-इण नाम से वह प्रसिद्ध हुई थी ॥६२॥



३२—लक्ष्म्युपाख्यानम् ।

श्रीकृष्णस्यात्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः ।
सावित्री यमसंवादे श्रुतं सुनिर्मलं यशः ॥१॥
तद्गुणोत्कीर्त्तनं सत्यं मङ्गलानाञ्चमङ्गलम् ।
अधुनाश्रौतुमिच्छामिलक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर ॥२॥
केनादो पूजिता सापि किम्भूता केन वा पुरा ।
तद्गुणोत्कीर्त्तनं सत्यं वद वेदविदांवर ॥३॥
सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन् कृष्णस्य परमात्मनः ।
देवी वामांशसंभूता बभूव रासमण्डले ॥४॥
अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला ।
यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयोवना । ५॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा ।
शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाप्रच्छादनानना ॥६॥

दक्षिणांशश्च द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः ।
 चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौपुरा ॥१२॥
 लक्ष्यतेदृश्यतेविश्वंस्निग्धदृष्ट्या ययानिशम् ।
 देवीप्याचमहती महालक्ष्मीश्चसास्मृता ॥१३॥
 द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः ।
 गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः ॥१४॥

किन्तु रूप - वर्ण - तेज - वय - कान्ति - यश - वस्त्र - मूर्ति - भूषण - गुण - स्मित -
 वीक्षण - वचन - गमन - माधुर्य - मधुर - स्वर - नय - अनुनय इन सबसे दोनों ही एक
 समान रूप थे ॥८॥१॥ परमात्मा के वाम अंश वाली महालक्ष्मी हुई थी
 और दक्षिण अंश वाली राधिका थी । राधा ने आदि में दो भुजाओं वाले
 परात्पर का वरण किया था ॥१०॥ इसके अनन्तर महालक्ष्मी ने उस
 कमनीय के प्राप्त करने की कामना की थी । श्री कृष्ण भी उसके गौरव से
 दो रूप वाले हो गये थे ॥११॥ जो दक्षिणांश उनका था वह तो दो भुजाओं
 वाला हुआ था और वामांश चार भुजाओं वाला हो गया था । पहिले दो भुजाओं
 वाले ने चतुर्भुज के लिये महालक्ष्मी को दे दिया था ॥१२॥ जिसके द्वारा
 निरन्तर यह सम्पूर्ण विश्व स्निग्ध दृष्टि से लक्षित होता है, देखा जाता है
 और जं देवियों महती (सबसे बड़ी) है इसलिये महालक्ष्मी इस शुभ नाम से
 यह कही गई है ॥१३॥ दो भुजाओं वाले राधिका के कान्त हैं और चतुर्भुज
 महालक्ष्मी के कान्त हैं । जो द्विभुज हैं वह गोप एव गोपिकाओं से आवृत्त
 हाकर गोलोक में स्थित थे ॥१४॥

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययी पद्मया सह ।
 सर्वांशेन समी तौड्वी कृष्णानारायणौ परौ ॥१५॥
 महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा वभूव सा ।
 वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा परा ॥१६॥
 शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता ।
 प्रेम्णा साच प्रधानाच सर्वाम्पु रमणीपुच ॥१७॥

माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥२३॥
 मणीन्द्रेषु च हारेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च ।
 वृक्षशाखासु रम्यासु नवमैत्रेषु वस्तुषु ॥२४॥
 बहुषुष्ठे पूजिता सादौ देवी नारायणेन च ।
 द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीयेशङ्करेण च ॥२५॥
 विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने ।
 स्वाम्भवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥२६॥
 ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवेत् ।
 गन्धर्वाद्यैश्च नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता ॥२७॥
 बुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजा च ब्रह्मणा ।
 भक्त्या च पक्षपर्वन्तं त्रिषु लोकेषु नारद ॥२८॥

इन प्रकार से लोक में इस महालक्ष्मी देवी के बहुत से स्थान होते हैं । यह नृपों में-नृपों की पत्नियों में-दिव्य स्वरूपा रमणियों में-ग्रहों में-सम्पूर्ण शक्तियों में-वस्त्रों में-स्थानों में और सुसंस्कृत आलयों में यह शोभा-सौन्दर्य रूप से विराजमान रहा करती है ॥२२॥

देवों की प्रतिमाओं में तथा मङ्गलार्थ संस्थापित घटों में माणिक्या मुक्ता-माल्य-मणीन्द्र-हार-क्षीर चन्दन-रम्य वृक्षों की शाखायें तथा नवीन मेष आदि सुन्दर वस्तुओं में वह देवी ही अपनी परमाकर्षक छटाओं से सर्वत्र विराजमान है ॥२३-२४॥ वह महालक्ष्मी देवी आदि में वैकुण्ठ वाम में नारायण के द्वारा पूजित हुई थी । फिर दूमरे ब्रह्मा के द्वारा भक्ति से और तीसरे शङ्कर के द्वारा समर्पित हुई थी । हे मुने ! क्षीर सागर में वह भारत में वह विष्णु के द्वारा पूजा की गई थी । इनके अतिरिक्त स्वाम्भुव मनु-मय और मानवेन्द्रों से-ऋषीन्द्र-मुनीन्द्र-सद्भि गण-गन्धर्वादि नाग आदि के द्वारा पाताल में पूजित की गई थी ॥२५॥ २६॥ ॥२७॥ भाद्रपद मास की बुक्ल अष्टमों में ब्रह्मा ने पूजा की थी । हे नारद ! एक पक्ष पर्वन्त तीनों लोकों में भक्ति के साथ देवी की पूजा की गई थी ॥२८॥

॥२॥ ॥३॥ ॥४॥ ॥५॥ ॥६॥ ॥७॥ ॥८॥ ॥९॥ ॥१०॥ ॥११॥ ॥१२॥ ॥१३॥ ॥१४॥ ॥१५॥ ॥१६॥ ॥१७॥ ॥१८॥ ॥१९॥ ॥२०॥ ॥२१॥ ॥२२॥ ॥२३॥ ॥२४॥ ॥२५॥ ॥२६॥ ॥२७॥ ॥२८॥ ॥२९॥ ॥३०॥ ॥३१॥ ॥३२॥ ॥३३॥ ॥३४॥ ॥३५॥ ॥३६॥ ॥३७॥ ॥३८॥ ॥३९॥ ॥४०॥ ॥४१॥ ॥४२॥ ॥४३॥ ॥४४॥ ॥४५॥ ॥४६॥ ॥४७॥ ॥४८॥ ॥४९॥ ॥५०॥ ॥५१॥ ॥५२॥ ॥५३॥ ॥५४॥ ॥५५॥ ॥५६॥ ॥५७॥ ॥५८॥ ॥५९॥ ॥६०॥ ॥६१॥ ॥६२॥ ॥६३॥ ॥६४॥ ॥६५॥ ॥६६॥ ॥६७॥ ॥६८॥ ॥६९॥ ॥७०॥ ॥७१॥ ॥७२॥ ॥७३॥ ॥७४॥ ॥७५॥ ॥७६॥ ॥७७॥ ॥७८॥ ॥७९॥ ॥८०॥ ॥८१॥ ॥८२॥ ॥८३॥ ॥८४॥ ॥८५॥ ॥८६॥ ॥८७॥ ॥८८॥ ॥८९॥ ॥९०॥ ॥९१॥ ॥९२॥ ॥९३॥ ॥९४॥ ॥९५॥ ॥९६॥ ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

[१००]

३३—इन्द्रं प्रति दुर्वाससःशापः ।

नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी ।
 वैकुण्ठाधिष्ठात्रीदेवी महालक्ष्मीः सनातनी ॥१॥
 कथं बभूवसादेवीपृथिव्यांसिन्धुकन्यका ।
 कित्तद्ध्यानंचकवचं सर्वंपूजाविधिक्रमम् ॥२॥
 पुरा केन स्नुतादी सा तन्मे व्याख्यानुमर्हसि ॥३॥
 पुरा दुर्वासः शापात् भ्रष्टश्रीकः पुरन्दरः ।
 बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोकञ्चनारद ॥४॥
 लक्ष्मीः स्वर्गादिकंत्यक्त्वारुष्टापरमदुःखिता ।
 गत्वालीनाचवैकुण्ठेमहालक्ष्म्याञ्चनारद ॥५॥
 तदा शोकाद्ययुर्देवा दुःखिता ब्रह्मणः सभाम् ।
 ब्रह्माणञ्च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥६॥
 वैकुण्ठ शरणापन्ना देवा नारायणे परे ।
 अतीवदैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥७॥

इस अध्याय में इन्द्र देव के प्रति दुर्वासा ऋषि के शाप का निरूपण किया जाता है । नारद ने कहा —वह देवी भगवान नारायण की प्रिया-श्रेष्ठ और वैकुण्ठ लोक की निवास करने वाली है । यह देवी वैकुण्ठ लोक की अधिष्ठात्री देवी है । यह सनातनी महा लक्ष्मी देवी है ॥१॥ पृथ्वी में वह देवी सिन्धु की कन्या कैसे हुई थी ? उस देवी का ध्यान क्या है । कब व और पूजाचन का क्रम क्या है ? सब से प्रथम पहिले किस के द्वारा इसको स्तुति की गई थी । आप इस सबकी व्याख्या करने के योग्य होते हैं ॥२॥३॥ भगवान नारायण ने कहा—हे नारद ! पहिले इन्द्र दुर्वासा ऋषि के शाप से अष्ट श्री हो गया था और यह मर्त्य लोक तथा देवा का समुदाय भी सब श्री से अष्ट हो गया था ॥४॥ हे नारद ! यह लक्ष्मी परम रुष्ट एवं दुःखित होकर स्वर्ग यदि का त्याग कर वैकुण्ठ में चली गई थी और महा लक्ष्मी जाकर लीन हो गई थी ॥५॥ उस समय में शोक से परम दुःखित

नारद ने कहा—हे ब्रह्मान ! पहिले ब्रह्म के वेत्ता मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा ने किस दोष से परम दलिष्ट इन्द्र को क्यों शाप दिया था ॥१२॥ नारायण ने कहा—पहिले समय में त्रैलोक्य का अधिपति इन्द्र मधुपान से प्रभक्त होकर कामुक ने एकान्त में रम्भा अप्सरा के साथ क्रीड़ा की थी ॥१३॥ उस अप्सरा रम्भा के साथ क्रीड़ा करके कामुकी के द्वारा चित्त हरण किये जाने वाला काम से उन्मथित चित्त वाला होकर उसी महारण्य में स्थित हो गया था ॥१४॥

कैलासशिखरं यान्तं वैकुण्ठादृषिपुङ्गवम् ।
 दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१५॥
 ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् ।
 प्रतप्तकाञ्चनाकारं जटाभार महोज्ज्वलम् ॥१६॥
 शुक्लयज्ञोपवीतञ्च चीरंदण्डकमण्डलुम् ।
 महोज्ज्वलञ्च तिलकं विभ्रतं वन्द्रसन्निभम् ॥१७॥
 ममन्वितं शिष्यवर्गैर्वेदेवेदाङ्गपारगैः ।
 दृष्ट्वा ननाम शिरसा सम्भ्रमात्तं पुरन्दरः ॥१८॥
 शिष्यवर्गञ्च भक्त्या च तुष्टावचमुदान्वितः ।
 मुनिनाचसशिष्येण तस्मै दत्तं शुभाशपम् ॥१९॥
 विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पञ्च सुमतोहरम् ।
 जरामृत्युरोगशोकहरं मोक्षकरं परम् ॥२०॥
 गक्रः पुष्पं गृहीत्वा चप्रमत्तो राजसम्पदा ।
 भ्रमेण स्थापयामास तदेवहस्तिमस्तके ॥२१॥
 तत्पुष्पं त्यक्तवन्तश्च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः ।
 तमुवाच महारुष्टः शशाप स रूपान्वितः ॥२२॥

एक बार इन्द्रदेव ने वैकुण्ठ लोक से कैलास के शिखर को जाते हुए ब्रह्म-तेज से देदीप्यमान ऋषियों में श्रेष्ठ दुर्वासा को देखा था ॥१५॥ उस समय दुर्वासा समर्थ ग्रीष्म काल के मध्याह्न समय में सहस्र सूर्य के समान प्रभा से युक्त थे । उनकी कान्ति उस समय तपे हुए स्वर्ण के

॥८१॥ ॥८२॥ ॥८३॥ ॥८४॥ ॥८५॥ ॥८६॥ ॥८७॥ ॥८८॥ ॥८९॥ ॥९०॥

॥९१॥ ॥९२॥ ॥९३॥ ॥९४॥ ॥९५॥ ॥९६॥ ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

॥१०१॥ ॥१०२॥ ॥१०३॥ ॥१०४॥ ॥१०५॥ ॥१०६॥ ॥१०७॥ ॥१०८॥ ॥१०९॥ ॥११०॥

॥१११॥ ॥११२॥ ॥११३॥ ॥११४॥ ॥११५॥ ॥११६॥ ॥११७॥ ॥११८॥ ॥११९॥ ॥१२०॥

॥१२१॥ ॥१२२॥ ॥१२३॥ ॥१२४॥ ॥१२५॥ ॥१२६॥ ॥१२७॥ ॥१२८॥ ॥१२९॥ ॥१३०॥

॥१३१॥ ॥१३२॥ ॥१३३॥ ॥१३४॥ ॥१३५॥ ॥१३६॥ ॥१३७॥ ॥१३८॥ ॥१३९॥ ॥१४०॥

॥१४१॥ ॥१४२॥ ॥१४३॥ ॥१४४॥ ॥१४५॥ ॥१४६॥ ॥१४७॥ ॥१४८॥ ॥१४९॥ ॥१५०॥

॥१५१॥ ॥१५२॥ ॥१५३॥ ॥१५४॥ ॥१५५॥ ॥१५६॥ ॥१५७॥ ॥१५८॥ ॥१५९॥ ॥१६०॥

॥१६१॥ ॥१६२॥ ॥१६३॥ ॥१६४॥ ॥१६५॥ ॥१६६॥ ॥१६७॥ ॥१६८॥ ॥१६९॥ ॥१७०॥

ज्ञात्वा भवन्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च ।

कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥२६॥

यस्मात् संस्थापितं पुष्पं गर्वेण हस्तिमस्तके ।

तस्माद् युष्मान् परित्यज्य धातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ॥३०॥

मुनि ने कहा :—अरे इन्द्र ! तू लक्ष्मी से इतना प्रमत्न हो गया है कि तू मेरा अपमान कर रहा है । मेरा दिया हुआ पुष्प तू ने हाथी के मस्तक पर रख दिया है ॥२३॥ विष्णु का निवेदित पुष्प नैवेद्य या जल अथवा फल कुछ भी हो उसे प्राप्त होते ही मुक्त करना चाहिए । उसके त्याग कर देने से मनुष्य ब्रह्म हत्यारा जैसा महापातकी हो जाया करता है ॥२४॥ जो व्यक्ति भाग्य वश प्राप्त विष्णु के शुभ नैवेद्य का त्याग कर देता है वह श्री-बुद्धि और ज्ञान इन तीनों से भ्रष्ट हो जाता है ॥२५॥ जो पुरुष विष्णु निवेदित पदार्थ के प्राप्त होने के साथ ही खा लेता है वह अपनी सौ पीढ़ियों का उद्धार करके स्वयं जीवन्मुक्त हो जाया करता है ॥२६॥ जो विष्णु के नैवेद्य का उपभोग करने वाला हो और नित्य ही हरि को प्रणाम करता है तथा जो विष्णु की पूजा और स्तवन भक्तिभाव से किया करता है वह विष्णु के ही समान हो जाता है ॥२७॥ जो कोई अज्ञान से भी विष्णु का निर्मल्य ग्रहण कर लेता है तो वह भी सात जन्मों में अर्जित किये हुए पाप से मुक्त हो जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२८॥ जो ज्ञान पूर्वक भक्ति से विष्णु के प्रसादी नैवेद्य को ग्रहण करता है वह एक करोड़ जन्मों में किये हुए पाप-समूहों से छुटकारा पा जाता है-इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है ॥२९॥ जिसके गर्व से हाथी के मस्तक पर पुष्प रख दिया है इसी कारण वह लक्ष्मी अथवा तुम्हारा त्याग करके हरि के स्थान को चली जावे ॥३०॥

मुनिस्थानाद्गृहं गत्वासददर्शामरावतीम् ।

दैत्यै रसुरसङ्घैश्च समाकीर्णा भयाकुलाम् ॥३१॥

II 11 | Ինչպիսիք են Երեսնականության
| Ինչպիսիք են Հոգևորականության Երեսնականությունը

11-ին 11-ի Երեսնականության լիակատար
Երեսնականություն (ճշմարիտ) Երեսնականություն (Երեսնական) Երեսնականություն Երեսնականության
1 Երեսնականության Երեսնականության 1 Երեսնականության Երեսնականություն Երեսնականություն
11 Երեսնականության Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն
1 Երեսնականության Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն
11 Երեսնականության Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն
1 Երեսնականության Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն
11 Երեսնականության Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն
1 Երեսնականության Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն
11 Երեսնականության Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն Երեսնականություն

- 1 11 | Ինչպիսիք են Երեսնականության Երեսնականությունը
- | Երեսնականության Երեսնականությունը
- 11 11 | Ինչպիսիք են Երեսնականության Երեսնականությունը
- | Երեսնականության Երեսնականությունը
- 11 11 11 | Ինչպիսիք են Երեսնականության Երեսնականությունը
- | Երեսնականության Երեսնականությունը
- 11 11 11 | Ինչպիսիք են Երեսնականության Երեսնականությունը
- | Երեսնականության Երեսնականությունը

दृष्ट्वा गुरुं जगत्त्रय तत्र तस्थौ सुरेश्वरः ।
 प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणामतः ॥३७॥
 प्रणाम्य चरणाभ्यंभोजे हरोदोच्चमुहुमुहुः ।
 वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मनापादिकं तथा ॥३८॥
 पुनर्वसो मया लब्धो ज्ञानप्राप्ति सुदुर्लभाम् ।
 वैरग्रस्ताश्च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥३९॥
 शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमतां वरः ।
 बृहस्पतिरुवाचेदं कोपरवतावतलोचनः ॥४०॥
 श्रुत्वा सर्वं सुरश्रेष्ठ मारोदीवचनं शृणु ।
 न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तिश्च कदाचन ॥४१॥
 सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरास्वप्नरूपिणी ।
 पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयंकर्तातयोरपि ॥४२॥

समस्त बन्धुवर्गों में बृहस्पति श्रेष्ठ थे तथा जानियों में अत्यन्त श्रेष्ठ-
 तम थे । वे अपने बन्धुवर्गों में सबसे बड़े थे और सुरों शत्रुओं के लिये
 अनिष्ट कारक थे ॥३६॥ वहाँ इन्द्र ने ध्यान-मग्न गुरु के दर्शन किये
 और वह वहीं स्थित हो गया था । एक पहर के अन्त में उठे हुए गुरु को
 देखकर उसने उनको प्रणाम किया था ॥३७॥ इन्द्र ने गुरु के चरणों में
 प्रणाम करके वह बार-बार रुदन करने लगा था तथा ब्राह्मण के शाप
 आदि का समस्त वृत्तान्त उनसे कह दिया था ॥३८॥ इन्द्र ने कहा कि
 फिर मैंने भी वर प्राप्त किया था कि सुदुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति और वैर-
 ग्रस्त अपनी पुरी को क्रम से प्राप्त करेगा ॥३९॥ बुद्धिमत्त और सत्पुरुषों
 में श्रेष्ठ बृहस्पति ने शिष्य के वचन का अर्थ किया और क्रमेणैव रक्त-
 नेत्रों वाले होकर यह बोले-॥४०॥ बृहस्पति ने कहा— हे सुर श्रेष्ठ !
 मैंने सब सुन लिया है-रुदन मत करो और मेरा वचन सुनो । नीति का
 ज्ञान पुरुष विपत्ति के समस्त में कभी भी कातर नहीं होता है ॥४१॥
 सम्पत्ति हो अथवा विपत्ति ये दोनों ही स्वप्न के रूप वाली हैं और

कर्मियों के जन्म के भोग अवशेष रह जाने पर उन सबका भारत में तथा अन्यत्र अनुरूप ही फल का लाभ होता है ॥४७॥ कर्म से ही ब्रह्म शाप होता है और कर्म से ही शुभ प्रार्थीवादि प्राप्त होता है । कर्म के अनुसार ही महालक्ष्मी और अन्य सभी कृद्ध्य कर्म के द्वारा ही मिला करता है । हे पुरन्दर ! एक करोड़ जन्म में अर्जित किया हुआ कर्म जीवियों के साथ-साथ पीछे चला करता है । वह छाया की-ही तरह रहता है कि जब तक उसका भोग नहीं होता है, वह कभी पीछा नहीं छोड़ता है ॥४८॥४९॥

कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् ।
 न्यूनताधिकता वापि भवेदेव हि कर्मणाम् ॥५०॥
 वस्तुदाने च वस्तूनां समं पुण्यं समे दिने ।
 दिनभेदे कोटिगुणसंख्यं वाधिकं ततः ॥५१॥
 समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सूर ।
 देशभेदे कोटिगुणसंख्यं वाधिकं ततः ॥५२॥
 समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च ।
 पात्रभेदे शतगुणसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥५३॥
 यथा फलन्ति शस्यानि न्यूनानि वाधिकानि च ।
 कृपकाराणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदेफलं तथा ॥५४॥
 सामान्यदिवसे विप्रे दानं समफलं भवेत् ।
 श्रमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणं भवेत् ॥
 चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तफलमेव च ॥५५॥

काल-देश और पात्र के भेद से कर्मों में कमी और अधिकता भी हुआ करती है ॥५०॥ वस्तुओं के दान में सामान्य दिनों में समान ही पुण्य होता है और उन्हीं वस्तुओं के दान में दिनों के भेद होने से करोड़गुना और इससे भी अधिक तथा असंख्य पुण्य हुआ करता है ॥५१॥ हे सुरेन्द्र । सामान्य देश में वस्तुओं के दान में साधारण एक समान ही पुण्य होता है किन्तु देश का भेद हो जाने पर उन्हीं वस्तुओं के दान में कोटि गुण

मधु मूदन का स्मरण करता है । शङ्कर ने कहा 'पति' में भी उसकी सम्पत्ति रहेगी ॥५६॥ इस प्रकार से यह सब कुछ कह करके बृहस्पति ने इन्द्र का भलि भाँति आलिङ्गन किया था और हे नारद ! उसे शुभ आशीर्वाद देकर अभीष्ट का ज्ञान करा दिया था ॥६०॥

३४-महालक्ष्म्युपाख्याने विष्णुभक्तस्य शुभकथनम्

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मन् जगाम ब्रह्मणः सभाम् ।
 बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वे सुरगणैःसह ॥१॥
 शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वाच कमलोद्भवम् ।
 प्रणोमुर्देवताः सर्वाः गुरुणा सह नारद ॥२॥
 वृत्तान्तकथयामास सुराचार्योविधिविभुम् ।
 प्रहस्योवाचतत् श्रुत्वामहेन्द्रकमलोद्भवः ॥३॥
 वत्समद्वंशजातोऽसिप्रपौत्रोमेविचक्षणः ।
 बृहस्पतिश्चशिष्यस्त्वसुराणामधिपःस्वयम् ॥४॥
 मातामहस्ते दक्षश्च विष्णुभक्तःप्रतापवान् ।
 कुलत्रयं यच्छुद्धञ्चकथं सोऽहङ्कृतोभवेत् ॥५॥
 मातापतिव्रता यस्य पिताशुद्धोजितेन्द्रिय ।
 मातामहोभातुल्यश्च कथं सोऽहङ्कृतोभवेत् ॥६॥
 ग्रहं शिवश्चशेषश्चविष्णुधर्मो महान् विराट् ।
 वयगदंशा भवेताश्च तत् पुष्पं न्यक्कृतत्वया ॥७॥
 शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च ।
 तत्र दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं सुर ॥८॥

इस अध्याय में महालक्ष्मी के उपाख्यान में विष्णु के भक्त का शुभकथन को निरूपित किया जाता है । नारायण ने कहा, हे ब्रह्मन् ! इन्द्र फिर हरि का स्मरण करके बृहस्पति को अपने आगे करके समस्त सुरगणों के साथ

इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैःसह ।

शोघ्रं जगाम वैकुण्ठंयत्र श्रीशस्तया सह ॥१४॥

श्रीकृष्ण के चरण कमल से च्युत वह पुष्प जिसके मस्तक में रहता है, समस्त मुने के आगे उसकी पूजा होती है ॥१६॥ देव ने तुझे वञ्चित कर दिया है क्योंकि देव तो सबसे अधिक बलवान होता है । जो मनुष्य भाग्य में हीन और मूढ़ हो उनकी रक्षा करने में कौन समर्थ हो सकता है ॥१०॥ जो सबके द्वारा बन्दित श्री के स्वामी कृष्ण को मानता है । उनकी दासी महानक्षत्री हृष्ट होकर उसका त्याग कर चली जाती है ॥११॥ तुम ने दीक्षित होकर सौ यज्ञ के द्वारा जिसको प्राप्त किया था वही लक्ष्मी श्रीकृष्ण के निर्माल्य के तिरस्कारपूर्वक त्याग कर देने के कारण कोप से चली गई है ॥१२॥ अब तुम मेरे घोर गुरु के साथ वैकुण्ठ में जाओ वहाँ श्री के स्वामी की सेवा करके उनके बगवान से श्री की प्राप्ति करोगे ॥१३॥ इस तरह से यह कह कर वह ब्रह्मा जी समस्त देवगणों के साथ वीर्य ही वैकुण्ठ लोक को चले गये थे जहाँ पर श्री के स्वामी उस श्री के हाथ विराजमान थे ॥१४॥

तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवन्त मनाननम् ।

हृष्टवा तेजस्वरूपञ्च प्रज्वलन्त स्वतेजसा ॥१५॥

ग्रीष्ममध्य ह्यमार्त ण्डगतकोटिसमप्रभम् ।

श न्तञ्चानादिमध्यान्नं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम् । १६॥

चतुर्भुजैः पार्षदञ्च सरस्वत्या स्तुतं नतम् ।

भक्त्या चतुर्भिवेदैश्च गङ्गाया पारसेवितम् ॥१७॥

त प्रणामुः सुगाः सर्वेमूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः ।

भक्तिनम्रा साश्रुनेत्रास्तुष्टुबुः पुरुपोतमम् ॥१८॥

वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः ।

हृद्दुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकारच्युताञ्चताः ॥१९॥

स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् ।

वस्त्रभूषणशून्यञ्च वाहनादिविजितम् ॥२०॥

यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलनीच शिलार्चनम् ।
 न भोजनञ्च त्रिप्राणां न पद्माः तत्र तिष्ठति ॥२७॥
 मद्भूक्तानाञ्च मन्निन्दा यत्र यत्र भवेत् सुराः ।
 महारुष्टा महालक्ष्मी-स्ततोयाति पराभवात् ॥२८॥

नारायण ने कहा—हे ब्रह्मन् ! उरोमत, हे देवगण मेरे यित हं ने पर आप सब-ी क्या भय है ? मैं आप सबको परम ऐश्वर्य के बढाने वाली प्रचल लक्ष्मी दे दूँगा ॥२२॥ किन्तु कुछ समय तक उचित मेरा वचन आप लोग श्रवण करो जोकि हितकर-तत्य-सारभूत और परिणाम में सुख देने वाला है ॥२३॥ इस विश्व में रहने वाले असंख्य जन्म हैं जो सर्वदा मेरे ही अधीन रहा करते हैं । जैसा मैं स्वतन्त्र हूँ वैसा ही मैं भक्तों के द्वारा पराधीन रहता हूँ ॥२४॥ जो-जो मुक्त में परायण रहने वाले भक्त पर रुष्ट रहता है और निरंकुश हो जाता है उसके घर में मैं श्री के सहित कभी नहीं स्थित रहता हूँ ॥२५॥ दुर्वासो ऋषि शूद्र का व्रत हैं परम वैष्णव है और सर्वदा मुक्त में ही परायण रहने वाले हैं । उर्बा के साथ से श्री के सहित आपके घर से आ गया हूँ ॥२६॥ जहाँ पर शव की ध्वनि नहीं है-तुलसी का दृक्ष नहीं है और शालग्राम शिला का अर्चन नहीं होता है तथा जटा त्रिप्रां का भोजन नहीं होना है वहाँ पद्मा कभी भी स्थित नहीं रहा करती है । २७॥ हे देव गणों ! जहाँ-जहाँ पर मेरे भक्तों की निन्दा होती है वहाँ अत्यन्त रुष्टा होकर महालक्ष्मी पराभव के कारण वहाँ से चली जाया करती है । २८ ।

इत्युक्त्वा च मुरान् मवान् रमामाह रमापतिः ।
 क्षीरोदसागरेजन्मकलयच्चलभेतिच ॥२९॥
 इत्युक्त्वा नान् जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च ।
 मथित्वासागरं लक्ष्मीदेवेभ्यो देहि पद्मज ॥३०॥
 इत्युक्त्वा कमलाकान्तो जगामाभ्यन्तरं मुने ।
 देवाश्चिरेण-कामेनययुः क्षीरोदसागरम् ॥३१॥

३५—स्वाहोपाख्यानम् ।

स्वाहादेवहविदति प्रशस्ता सर्वकर्ममु ।
 पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सवतो वरा ॥१॥
 एनामां चरितं जन्म फल प्राधान्यमेव च ।
 श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्रात्-वदवेदविदांवर ॥२॥
 नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः ।
 कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ॥३॥
 सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाहारार्थं ययुः पुरा ।
 ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमनोहराम् ॥४॥
 गत्वा निवेदनञ्च-ऋराहारहेतुकं मुने ।
 स्वाहा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय म्रिपेवे श्रीहरेः पदम् ॥५॥
 न-ऋषो हि भगवान् कलया च वभूव सः ।
 गजे यद्यद्विद्वानं दत्तं तेभ्यश्च ब्रह्मणा ॥६॥
 हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः ।
 सुरा नैव प्राणुवन्ति नदानं मुनिपुङ्गव ॥७॥

इस अध्याय में स्वाहा के उपाख्यान का वर्णन किया गया है ।
 नारद जी ने कहा—स्वाहा ही इसके द्वारा हवि का दान किया जाने में
 प्रशस्त समस्त कर्मों में मानी गई है । पितृदान में स्वाधा प्रशस्त कही
 गई है और दक्षिणा तो सभी जगह श्रेष्ठ होती है ॥१॥ हे वेदों के
 वेत्ताओं में श्रेष्ठ ! तीनों का चरित-जन्म-फल और प्रधानता के विषय
 में आपके मुख से मैं श्रवण करना चाहता हूँ ॥२॥ सौति ने कहा—
 नारद देवर्षि के इस वचन को सुनकर मुनि श्रेष्ठ हम गये और हँसकर
 पुराणों में कही हुई पुरानी कथा का कहना आरम्भ कर दिया था ।
 नारायण बोले—सृष्टि के आरम्भ में आदि में देवगण आहार के लिये
 पहिले ब्रह्म लोक में परम अगम्य और अति मनोहर ब्रह्म सभा में गये
 थे । ॥४॥ हे मुने ! वहाँ पहुँच कर आहार के हेतु बना निवेदन

वर का श्रवण करो ॥१२॥ विधाता ने उसका वचन श्रवण कर सम्भ्रम से उससे बोले ॥१२-१३॥

त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भवपत्नी च सुन्दरी ।
 दग्धुं न शक्तस्त्वकृती हुताशश्च त्वयाचिना ॥१४॥
 त्वन्नामोच्चार्य्य मन्त्रान्ते यद्दास्यति हविर्नर; ।
 सुरेभ्यस्तत् प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम् ॥१५॥
 अग्नेः सम्पत् स्वरूपा च श्रीरूपा च गृहेश्वर ।
 देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके ॥१६॥
 ब्रह्मणश्चः वचः श्रुत्वासाविपण्णा वभूवह ।
 तमुवाच स्वयं देवी स्वाभिप्रायं स्वयम्भुवम् ॥१७॥
 अहंकृष्णंभजिष्यामि तपसासुचिरेणच ।
 ब्रह्मन् तदद्यत्यत्किञ्चित् स्वप्नवत्भ्रममेवच ॥१८॥
 विधाताजगतांत्वञ्चशम्भुर्मृत्युञ्जयःप्रभु ।
 विभक्तिशेषो विश्वञ्चधर्मःसाक्षीचर्देहिनाम् ॥१९॥
 सर्वाद्यपूज्यो देवानां गरुपुत्र गरुश्वरः ।
 प्रकृतिः सर्वसूः सर्व पूजिता यत्प्रसादत ॥२०॥
 ऋपयोमुनयश्चैव पूजिता यं निषेव्य च ।
 तत्पादपद्मं पद्मैकं भावेन विन्तयाम्यहम् ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—आप अग्नि की दाहिका शक्ति हैं और भव की सुन्दर पत्नी हैं । आपके बिना अग्नि अकृती है और दाह करने में समर्थ नहीं होती है-॥१४॥ मन्त्र में तुम्हारे नाम को अन्त में उच्चारण करके जो मनुष्य हवि देगा वह सुरों को प्राप्त होगा और सुर उसे आनन्द के साथ प्रसन्न किया करते हैं ॥१५॥ अग्नि की सम्पत् स्वरूप वाली और श्री रूप गृहेश्वर की ईश्वर-देवी की पूजित है अम्बिके ! तू निरन्तर नर आदि की पूजा जा ॥१६॥ ब्रह्मा के वचन को सुन कर वह विपाद से युक्त हो गई थी और वह देवी स्वयं स्वयंभू से अपने अभिप्राय को कहने लगी थी ॥१७॥ ब्रह्मा ने कहा— मैं अधिकाल वाले तप से श्रीकृष्ण का भजन करूँगी । हे ब्रह्मन् ! और जो कुछ भी है वह स्वप्न की भाँति भ्रम ही है ॥१८॥

था ॥२३॥ उस सुन्दरी ने अत्यन्त कमनीय रूप को देखकर उस क मेखर
के सौन्दर्य से वह कामुकी काम के कारण मूर्छा को प्राप्ति हो गई
थी ॥२४॥ उसका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ वह उससे बोले और
उन्होंने चिरकाल तक तपस्या से क्षीण अङ्ग वाली उसी उठाकर अपनी
गोद में बिठा लिया था ॥२५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—बराह में तुम अंश
से मेरी पत्नी होओगी । हे कान्ते ! तुम्हारा नाम नग्नजिती होगा
और नग्नजित के यहां कन्या के रूप में उत्पन्न होओगी ॥२६॥ इस समय
में तुम अग्नि की दाहिका और होने वाली भय की पत्नी-मन्त्रों की अङ्ग-
रूप वाली और पवित्र मेरे प्रसाद से होओगी ॥२७॥ अग्नि तुमको
भक्ति के भाव से सम्पूजित कर रमणीय रामा तुम्हारे गृहेश्वरी के साथ
रमण करेगी ॥२८॥ हे नारद ! इतना कहकर और देवी को पूर्ण
आश्वासन देकर देव वहाँ से अन्तर्हित हो गये थे । वहाँ फिर ब्रह्मा त
निर्देश से सन्नस्त (उरा हुआ) अग्नि आ गया था ॥२९॥

ध्यानैश्च सामवेदोक्तैर्ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम् ।
सम्पूज्य परितृष्टाव पाणि जग्राह मन्त्रतः ॥३०॥
तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमं रामया मह ।
अतीव निर्जने रम्ये सम्भोगसुन्दरे सदा ॥३१॥
वभूव गर्भं नस्याच्च हुताशस्य च तेजसा ।
तद्धारच सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् ॥३२॥
ततः सुपाव पुत्राञ्च रमणीयान्मनेहरान् ।
दक्षिणाग्निर्गर्हिपत्यहवनीयान् क्रमेण च ॥३३॥
ऋषयोऽमुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियदयः ।
स्वाहाग्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्ददति नित्यशः ॥३४॥
स्वाहायुनतञ्च मन्त्रञ्चयो गृह्णाति प्रशस्तकम् ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन् ग्रहणमात्रतः ॥३५॥

सामवेद में कहे हुए ध्यान से उस जगदम्बिका का ध्यान करके
श्रीच भलीभाँति पूजन करके स्तुति की थी और मंत्रों के द्वारा उसका

... ॥ १ ॥
... ॥ २ ॥
... ॥ ३ ॥
... ॥ ४ ॥
... ॥ ५ ॥
... ॥ ६ ॥
... ॥ ७ ॥
... ॥ ८ ॥
... ॥ ९ ॥
... ॥ १० ॥
... ॥ ११ ॥
... ॥ १२ ॥
... ॥ १३ ॥
... ॥ १४ ॥
... ॥ १५ ॥

... ॥ १६ ॥
... ॥ १७ ॥
... ॥ १८ ॥
... ॥ १९ ॥
... ॥ २० ॥
... ॥ २१ ॥
... ॥ २२ ॥
... ॥ २३ ॥
... ॥ २४ ॥
... ॥ २५ ॥
... ॥ २६ ॥
... ॥ २७ ॥
... ॥ २८ ॥
... ॥ २९ ॥
... ॥ ३० ॥

इति ध्यात्वाचमूलेन दत्वापाद्यादिकं नरः ।
 सर्वसिद्धिं लभेत् स्तुत्वामूलं स्तोत्रं मृनेशृणु ॥४४॥
 ओं ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च ।
 यः पूजयेत्ततां देवीं सर्वेषु लभते ध्रुवम् ॥४५॥
 स्वाहाद्या प्रकृतेरंशा मन्त्रतन्त्राङ्गुलिणी ।
 मन्त्राणां फलदात्री च घात्री च जगतां सती ॥४६॥
 सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् ।
 हुताश दाहिकाशवितस्तत्प्राणाधिकरूपिणी । ४७॥
 संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी !
 देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥४८॥
 षोडशैतानि नामानि यः पठेत् भक्तिसंयुतः ।
 सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य चेहलोके परत्र च ॥४९॥
 नाङ्गहीनो भक्तेस्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् ।
 अपुत्रो लभते पुत्रमभाय्यो लभते प्रियान् ॥५०॥

जिस तरह विष से हीन सर्प और वेद से रहित विप्र पति की सेवा से हीन स्त्री तथा विद्या से हीन नर होता है ॥३६॥ और फल और शाखाओं से हीन वृक्ष निर्दल होता है, उसी तरह स्वाहा से हीन मन्त्र शीघ्र फलदायक नहीं होता है ॥३७॥ तब समस्त द्विज पूर्णतया तुष्ट हो गये थे और देवगण आहुति प्राप्त करने लगे थे । स्वाहान्त मंत्र से ही समस्त कर्म सफल होते थे ॥३८॥ इस प्रकार से यह उत्तम स्वाहा का उपाख्यान मैंने तन्पूर्ण वर्णन कर दिया है । यह परम सुख तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला एवं उत्तका सार है । अब वताओं, और आगे आप लोग क्या श्रवण करने चाहते हैं ॥३९॥ नारद जी ने कहा— हे मुनीश्वर ! स्वाहा की पूजा का विधान उसका ध्यान और स्तोत्र जिससे अग्नि ने पूजा की थी तथा उसका स्तवन किया था उसको हे प्रभो ! मुझे बताइये ॥४०॥ नारायण ने कहा इसका ध्यान सामवेद में कहा गया है । इसका स्तोत्र और पूजा का विधान मैं बता रहा हूँ । इसका श्रवण तुम सावधान होकर करो ॥४१॥ समस्त प्रकार के

३६—स्वधोपाख्यानम् ।

शृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् ।
 पितृणाञ्चतृप्तिकरं श्राद्धानां फलवद्धनम् ॥१॥
 सृष्टेरादौ पितृगणान् ससर्ज जगतां विधिः ।
 चतुरश्र मूर्तिमतस्त्रीश्च तेजस्वरूपिणः ॥२॥
 दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सिद्धिरूपान् मनोहरम् ।
 आहारं ससृजे तेषां श्राद्धतर्पणपूर्वकम् ॥३॥
 स्नानंतर्पणपर्यन्तं श्राद्धान्तं देवपूजनम् ।
 आह्निकञ्च त्रिसन्ध्यान्तं विप्राणञ्च श्रुतौ श्रुतम् ॥४॥
 नित्यं न कुर्व्याद्यो विप्रत्त्रिसन्ध्यं श्राद्धतर्पणम् ।
 बलिवेदध्वनिः सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥५॥
 हरिसेवा विहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् ।
 भस्मान्तं सूतकं तस्य न कर्माहं स नारद ॥६॥
 ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे ।
 न प्राप्नुवन्ति पितरो ददति ब्राह्मणादयः ॥७॥

इस अध्याय में स्वधा के उपाख्यान का निरूपण किया जाता है । नारायण ने कहा—हे नारद ! अब मैं सुधा के उपाख्यान को बता दूँ तुम उसको सुनो । यह उपाख्यान श्रुति उत्तम-पितृगण की तृप्ति को करने वाला और श्राद्धों के फल को बढ़ाने वाला है ॥१॥ सृष्टि के आदि में विधाता ने-जिसने समस्त जगत् की रचना की थी पितृगणों का भी सृजन किया था । ये चतुर अर्थात् चार तो मूर्तिमान् थे और तीन तेजके स्वरूप वाले थे ॥२॥ इन सात पितृगणों को देख कर जो सिद्धि के रूप वाले थे इनके लिये विधाता ने श्राद्ध तर्पण पूर्वक मनोहर आहार का तापन किया था ॥३॥ स्नान-तर्पण पर्यन्त, श्राद्धान्त देव पूजन-आह्निक और त्रिदश सन्ध्यान्त कर्म विप्रों का श्रुति में श्रुत

सुन्दरी कन्या की रचना की थी । यह कन्या रूप यौवन से सम्पन्न थी और शरत्काल के चन्द्रमा के समान प्रभा वाली थी ॥१६॥ यह विद्या वाली-गुणों से समन्वित-अत्यन्त रूप-लावण्य से युक्त-सती-श्वेत चम्पक के पुष्प के तुल्य आभा वाली और रत्नों से भूषित थी ॥१७॥ यह कन्या परम विशुद्ध-प्रकृति की ग्रंथ रूपा-स्मित से युक्त-वरदान देने वाली-शुभा-सुन्दर दाँतों से संयुक्त, समस्त सुनक्षत्रों से समन्वित लक्ष्मी स्वर्धा नामवली थी ॥१८॥ शरत्कालीन पद्म जिसके चरणों में न्यस्त थे ऐसे चरण कमलों वाली थी-पद्मा के तुल्य मुख वाली-पद्म से समुत्पन्न-पर्णों के समान नेत्रों वाली पितृगण की पत्नी थी ॥१९॥ ब्रह्म ने उस कन्या को जो तृष्टि के रूप वाली थी, परितृष्ट पितृगण को दे दी थी और उम ने ब्राह्मणों को अत्यन्त गोपनीय उपदेश दिया था ॥२०॥ पितृगणों को जो भी कुछ समर्पित करो वह मन्त्र के अंत में स्वधा शब्द का उच्चारण करके ही किया करो । इसी क्रम से विप्रलोक पहिले पितृगण को दान देते थे ॥२१॥

स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा ।

सर्वत्रदक्षिणाशस्ताहतयज्ञस्त्वदक्षिणाः ॥२२॥

पितरो देवता विप्रा मुनयोमानवास्तथा ।

पूजाञ्चक्रुस्वर्धाशान्तानुष्टावपरमादरम् ॥२३॥

देवादयश्च सन्तुष्टता परिपूर्णमनोरथाः ।

विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवैर्वरेण च ॥२४॥

देवों के दान में स्वाहा प्रशस्त है, और पितृगण के लिये अर्पित दान में स्वधा श्रेष्ठ होती है । दक्षिणा तो सर्वत्र समस्त कर्मों में ही परम प्रशस्त हुआ करती है । इसके बिना तो कभी कोई कर्म होता ही नहीं है । जो भी कुछ किया जावे दक्षिणा उसमें परम आवश्यक एक अङ्ग है । जो याग-यज्ञ दक्षिणा से रहित होता है, वह निष्फल होता है ॥२५॥ तब पितरों ने, देवों ने और मुनिगण तथा मनुष्यों ने सबमें शान्त स्वरूप वाली स्वधा देवी की परम-समादर के साथ पूजा की थी

थी । और बालों को प्रदान करने वाली विष्णु की माया थी ॥१॥ यह देवसेना नामवाली मातृकाओं में विख्यात हुई हैं जोकि सुव्रत वाली स्वामि कार्तिकेय की प्राणों से अधिक, प्रिय साध्वी पत्नी हुई थी ॥२॥ यह देवी बानकों को आयु के प्रदान करने वाली, उनकी धात्री और उनका रक्षण करने वाली है । यह निरन्तर सिद्धयोगिनी योग के द्वारा छोटे शिशुओं के पास ही स्थिर रहा करती है ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! इसकी पूजा की विधि में एक उक्ति है, उसका श्रवण करो जोकि मैंने वम के मुख से सुना है । यह परम नृप तथा पुत्र के प्रदान करने वाला होता है ॥४॥ पहिले स्वायम्भुव मनुका पुत्र एक राजा प्रिय-व्रत था । यह बड़ा योगीन्द्र था और सदा तपस्या में रति रखने वाला हो गया था । इसने अपनी कोई भार्या नहीं बनाई थी ॥५॥ बड़े यत्नों से जब ब्रह्मा जी की आज्ञा हुई तो वह भार्या वाला हुआ था । हे मुने ! बहुत समय व्यतीत हो गया किन्तु दारा के व्रक्षण करने वाला वह कोई भी पुत्र न प्राप्त कर सका था । ६॥ उस समय कश्यप मुनि ने उससे एक पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था । उसकी जो मालिनी नाम वाली पत्नी थी उसको मुनि ने यज्ञ का चरु दिया था ॥७॥

भुक्त्वा चरुञ्च तस्याश्च सद्यो गर्भा बभूव ह ।
 दधार तञ्च सा दत्री दैर्घ्यात्तदशवत्सरम् ॥८॥
 ततः सुपाव सा ब्रह्मन् कुमारं कनकप्रभम् ।
 सर्वात्रियवसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥९॥
 तं दृष्ट्वा रुद्रुः सर्वा नार्यश्च बान्धवस्त्रियः ।
 मूर्च्छामिवाप तन्माता पुत्रशोकेनमुव्रता ॥१०॥
 श्मशानञ्च यथौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने ।
 रुरोद तत्र तान् त्रैलोक्यं कृत्वास्वयक्षसि ॥११॥
 नोत्सृज्यबालकराजाप्राणांस्युक्तं समुद्यतः ।
 ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकं तन्मुदाहृत्वात् ॥१२॥

हैं। कर्म से ही गुणवान् तथा अज्ञ हीन हुआ करते हैं ॥२५॥ इस लिये हे राजन् ! सभी कुद्ध में कर्म की ही प्रधानता होती है और सभी से श्रुति में वही सुना गया है। भगवान् कर्म के रूप वाले हैं, जोकि उसी कर्म के द्वारा फलों के देने वाले होते हैं ॥२६॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने ।
 महायज्ञानेन सहसा जीवयामास लीलया ॥२६॥
 राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् ।
 देवसेना च पश्यन्तं नृपोमम्बरमेव च ॥३०॥
 ग्रहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता ।
 पुनस्तुष्टाव तां राजा गुणकण्ठौष्ठतालुकः ॥३१॥
 नृपतास्त्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह ।
 उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्मनिर्मितम् ॥३२॥
 त्रिषु लोकेषु राजा त्वं स्वायम्भुव्रमनोः सुतः ।
 मम पूजाञ्च सर्वत्र कारयित्वान्वयकुरु ॥३३॥
 तदा दास्यामि पुत्रन्ते कुलपन्नं मनोहरम् ।
 सुव्रतं नामविख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम् ॥३४॥
 इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ ।
 राजा चकार स्वीकारं तत्पूजार्थञ्चमुव्रतः ॥३५॥
 जगाम देवी स्वर्गञ्च दत्त्वा तस्मै शुभं ।
 आजगाम महाराजा स्वर्गहृष्टमानसः ॥
 आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् ॥३६॥

इतना इस प्रकार से कहकर हे मुने ! इस देवी ने उस बालक को ग्रहण कर लिया था और तुरन्त ही महा ज्ञान के द्वारा लीला से ही उसे जीवित कर दिया था । २६ । वह देवी उस बालक को लेकर आकाश में जाने को उद्यत हो गई थी । उस समय सूखे हुए कण्ठ ताल और होठों वाले राजा ने उसकी पुनः स्तुति की थी । राजा ने स्वयं उग समय स्मित से युक्त-सुवर्ण के सनान कान्ति वाले - देव - से - राजा और अम्बर को देखने वाले बालक को देखा था ॥३०-३१॥ राजा के स्तोत्र से वह देवी परितुष्टा हो गई थी । हे ब्रह्मन् ! फिर ब्रह्मने उस

कन्या थी । इसी से यह मनसा देवी नाम वाली हुई थी जो मन से दीप्ति वाली थी ॥३८॥ अथवा जो मन से परमात्मा ईश्वर का ध्यान किया करती थी । इससे उस योग के द्वारा वह मनसा देवी दीप्त हुई थी ॥३९॥ वह देवी त्रात्मा में रमण करने वाली-सिद्ध योगिनी एवं परम वैष्णवी थी । उसने तीन युग पर्यन्त परमात्मा श्रीकृष्ण के लिये तपस्या की थी ॥४०॥ ईश्वर ने उसको देखा था जिसका जरत्कार एवं क्षीण शरीर हो गया था । गोपी पति प्रभु ने उसका जरत्कार-वह नाम कर दिया था ॥४१॥ कृपा की खान प्रभु ने कृपा करके उसको उसका इच्छित वरदान दे दिया था और अपनी पूजा कराई थी । फिर स्वयं भी पूजा की थी ॥४२॥

स्वर्गेच नागलोकेच पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः ।
 भृशं जगत्सु गौरी सा मुन्दरीच मनोहरा ॥४३॥
 जगद्गौरीतिविख्यातातेन सापूजितासती ।
 शिवशिष्याच सा देवी तेनशोवितकीर्त्तिता ॥४४॥
 विष्णुभक्तातीव शश्वद्वैष्णवी तेन नारद ।
 नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे जन्मेजयस्य च ॥४५॥
 नागेश्वरीतिविख्याता सा नागभगिनीतथा ।
 विषं संहर्त्तुमीशासा तेन विपहरोत्तिसा ॥४६॥
 सिद्धयोगं हरात् प्राप तेनातिसिद्धयोगिनी ।
 महाज्ञानञ्च गोप्यञ्चमृतसञ्जीविनीपराम् ॥४७॥
 महाज्ञानयुतां ताञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः ।
 आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा च तपस्विनः ॥४८॥
 आस्तिकमाताविख्याता जगत्सुसुप्रतिष्ठिता ।
 प्रियामुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्यमहात्मनः ॥४९॥
 योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रियाः ततः ॥५०॥

स्वर्ग लोक में-नाग लोक में-ब्रह्म लोक से पृथिवी में जगतीतल

पञ्चमोऽध्यायः

॥१३॥ वदते मया शिवः ॥
॥१४॥ अथ शिवो वदति ॥
॥१५॥ अथ शिवो वदति ॥
॥१६॥ अथ शिवो वदति ॥
॥१७॥ अथ शिवो वदति ॥
॥१८॥ अथ शिवो वदति ॥
॥१९॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२०॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२१॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२२॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२३॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२४॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२५॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२६॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२७॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२८॥ अथ शिवो वदति ॥
॥२९॥ अथ शिवो वदति ॥
॥३०॥ अथ शिवो वदति ॥
॥३१॥ अथ शिवो वदति ॥
॥३२॥ अथ शिवो वदति ॥
॥३३॥ अथ शिवो वदति ॥

दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्तृणाम् ।

स्तोत्र सद्भोभवेद् यस्यसत्रिपंभोक्तुमीश्वरः ॥५६॥

नागौघं भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः ।

नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ॥५७॥

अब उस देवी के द्वादश नामों का उल्लेख किया जाता है— श्रीं मनसा देवी के लिये नमस्कार है - आप जंरत्कार-जगद्गौरी-मनसा-सिद्धि योगिनी-वैष्णवी-नाग भगिनी-शैवी तथा नागेश्वरी हैं ॥५९॥ आप जंरत्कार की प्रिया है—आस्तोक की माता- विषहरी-महाज्ञानयुता और विश्व पूजिता देवी हैं ॥५२॥ इन उक्त वारह नामों को जो पूजा के समय में पढ़ता है, उसको और उसके वंश में होने वाले को नागों का कोई भय नहीं होता है ॥५३॥ नाग से भीत शय्या में—नाग से अस्त मन्दिर में— नाग से क्षत में—महा दुर्ग में जिसका नागों के द्वारा विग्रह वैष्टित हो ॥५४॥ इस स्तोत्र का पाठ करके मुक्त हो जाता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । जो इसको नित्य ही पढ़ता है, उसे देखकर ही नाग समूह भाग जाया करता है ॥५५॥ यदि इस द्वादश नामों वाले स्तोत्र का दस लाख जाप कर लिया जावे तो मनुष्यों को स्तोत्र की सिद्धि हो जाती है । जिसको यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है, वह उसके विष को खाने में भी समर्थ हो जाता है ॥५६॥ वह नागों के समूह का भूषण बनाकर नाग वाहन हो जाया करता है अर्थात् उसमें इतनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि नागों का विष का उस पर कुछ भी रक्षक मात्र भी प्रभाव नहीं होता है । वह नागों के आसन बनाकर स्थित हो सकता है और नागों की शय्या पर शयन करने की क्षमता उसमें होती है । फिर वह मनुष्य एक महान् सिद्ध हो जाता है ॥५७॥

हे परितो वृद्धे कृत परम धीमते वृद्धावन को गुरु ॥ ११ ॥ वरु ११ ॥
 ॥ १० ॥ एक वार धीं रीपिका गाय रथा के गाय कथिक से गीर्वाण
 है । गाय धवयि करे । पदिते वृद्धावन के वचन में उमर उमर गीर्वाण
 गीर्वाण में वृद्धे धीं ॥ ११ ॥ में समदि गीर्वाण को सदि का कथन करता
 वचन गीर्वाण । गीर्वाण में वरु कथन है धीं वरु धीं की वरु धीं
 वरु है । गीर्वाण में वरु धीं में वरु धीं में वरु धीं में वरु धीं में वरु धीं
 वरु धीं ॥ ११ ॥ गीर्वाण में वरु धीं में वरु धीं में वरु धीं में वरु धीं
 धीं में वरु धीं धीं । वरु धीं वरु धीं वरु धीं वरु धीं वरु धीं वरु धीं
 है । धीं में वरु धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं धीं

॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥
 ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥
 ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥
 ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥
 ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥
 ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥
 ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥
 ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥
 ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥

कर उन्होंने एकान्त में कौतुक से विहार किया था । उस समय में स्वेच्छा से परिपूर्णा की क्षीर का पान करने की इच्छा हुई थी ॥५॥ उसी समय में लीला से उन्होंने अपने वाम पार्श्व से सुरभी का सृजन किया था । वह सुरभी वत्स से युक्त थी—दुग्ध देने वाली थी और वत्सों को परम मनीहर थी ॥६॥ वत्स के सहित सुरभी को देखकर सुदामा नामक श्रीराधिका नाय के सखा ने रत्नों से निर्मित पात्र में दोहन किया था । वह क्षीर भी सुधा से भी कहीं अधिक मधुर था और जन्म-मृत्यु के हरण करने वाला था ॥७॥

तद्गुणञ्च पयः स्वादु पौ गोपपतिः स्वयम् ।

सरो बभूव पयसा भाण्डविल्लसनेन च ॥८॥

दीर्घं च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम् ।

गोलोकेषु प्रसिद्धश्च स च क्षीरसरोवरः ॥९॥

गोपिकानाञ्च राधायाः क्रीडावापीवभूवसा ।

रत्नेन रचिता तूर्णं भूता वापीश्वरेच्छया ॥१०॥

बभूव कामधेनुना सहसा लक्षकोटयः ।

तावन्तो हि च वत्साश्च सुरभी लोमङ्गपतः ॥११॥

तासां पुत्राश्च पौत्राश्च संवभूवुरसंख्यकाः ।

कथिता च गवां सृष्टिस्तयाचपूरितं जगत् ॥१२॥

पूजाञ्चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने ।

ततो बभूव तत्पूजा त्रिपु लोकेषु दुर्लभा ॥१३॥

दीपान्वितापरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया भवे ।

बभूव सुरभी पूजा धर्मवक्त्रादितिश्रुतम् ॥१४॥

उस उष्ण और स्वाद युक्त दूध को गोपों के पति ने स्वयं पिया था । उस भाण्ड अर्थात् पात्र के विलस्त्रित हो जाने से दूध से एक तूट हो गया था ॥८॥ दीर्घता और विस्तृताओं में सब ओर से एक तो योजन था । वह क्षीर सरोवर गो लोक में प्रसिद्ध है ॥९॥ वह

नमस्कार है । यह छः अक्षरों वाला मन्त्र होता है । यह मन्त्र एक लाख जप करने से सिद्ध हो जाता है जोकि भक्तों के लिये कल्प वृक्ष है अर्थात् समस्त मन की इच्छाओं को पूर्ण करने वाला था ॥१६॥ इसका ध्यान और पूजन यजुर्वेद में कहा हुआ सबका सम्मत है । यह सुरभी ऋद्धि प्रदान करने वाली-वृद्धि देने वाली-मुक्ति देने वाली-समस्त कामनाओं को देने वाली है ॥१७॥ यह सुरभी लक्ष्मी के परम स्वरूप वाली और राधा की पर सहचरी-गौओं की अविष्टात्री देवी-गौओं की आद्य और गौओं की प्रसूत है ॥१८॥ यह पवित्र स्वरूप वाली-भक्तों की पूज्य तथा समस्त कामों की देने वाली है । जिस के द्वारा सम्पूर्ण विश्व पूत हुआ है या हो रहा है, उस देवी सुरभी का मैं भजन करता हूँ ॥१९॥ ब्राह्मण को घट में-वेनु के मस्तक में अथवा गौओं के बाँवने के स्तम्भ में-शालग्राम में-जल में-अथवा अग्नि में सुरभी देवी की पूजा करनी चाहिए ॥२०॥ दीपावली के दूसरे दिन में दोपहर के पूर्व भक्तिभाव से युक्त होकर जो कोई सुरभी की पूजा करता है, वह भूतल में पूज्य होता है ॥२१॥

एकदा त्रिपु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया ।
 क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरादयः ॥२२॥
 ते गत्वा ब्रह्मलोकञ्च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा ।
 तदानया च सुरभीं तुष्टाव पाकशासनः ॥२३॥
 नमो देव्यै महादेव्यै सुरम्यै च नमो नमः ।
 गवां बीजस्वरूपायै नमस्तेजगदम्बिके ॥२४॥
 नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः ।
 नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः
 कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सन्ततं परम् ॥२५॥
 श्रीदायै धनदायै च वृद्धिदायै नमो नमः ।
 शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः ॥२६॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्चयःपठेत् ॥३०॥
 स गोमान् धनवांश्चैवकीर्त्तिमान् पुण्यमान्भवेत् ।
 सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षितः ॥३१॥
 इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णामन्दिरम् ।
 सुचिरं निवसेत्तत्र करोतिकृष्णसेवनम् ॥३२॥
 न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत् ॥३३॥

इसके अनन्तर वह गो लोक को चली गई थी । देवगण आदि अपने घर चले गये थे । हे नारद ! फिर सहसा समस्त विश्व दुग्ध से पूर्ण हो गया था ॥२९॥ दुग्ध से घृत हुआ और उससे यज्ञ हुये और यज्ञों से देवों की प्रीति हुई थी । यह स्तोत्र महान् पुण्य पूर्ण है । जो इसको भक्ति-भाव से युक्त पढता है ॥३०॥ वह गौओं वाला धन वाला कीर्त्तिमान और पुण्य वाला होता है । वह पाठ करने वाला समस्त तीर्थों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त कर लेने वाला तथा सम्पूर्णा यज्ञों में दीक्षा प्राप्त करने के फल वाला होता है ॥३१॥ वह स्तोत्र के पाठ करने वाला इस लोक में सुखों का उपभोग करके अन्त में श्रीकृष्ण के स्थान को प्राप्त करता है । वहाँ पर अधिक समय तक निवास करता है और श्रीकृष्ण की सेवा किया करता है ॥३२॥ हे ब्रह्मपुत्र ! फिर उस का इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता है ॥३३॥

३९- राविकाख्यानम् ।

अनामं निबन्धं नभ्यश्चुतं सर्वमनुत्तमम् ।
 पञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगञ्चयोगिनाम् । १।
 सिद्धानांसिद्धिशास्त्रञ्चनानातन्त्रं मनोहरम् ।
 भक्तानांभक्तिशास्त्रञ्चकृष्णस्यपरमात्मनः । २।

सम्पूर्ण वताने का अनुग्रह कीजिए ॥७॥

कथं न कथितं पूर्वाभागमाख्यानकालतः ।
 पार्वतीवचनं श्रुत्वानग्रवक्त्रो बभूव सः ॥८॥
 पञ्चवक्त्रश्च भगवान् शुष्ककण्ठीष्ठतालुकः ।
 स्वसत्यभङ्गभीतश्चर्मातीभतोहिचिन्तितः ॥९॥
 सस्मार कृष्णं ध्यानेनाभीष्टदेवं कृपानिधिम् ।
 तदनुज्ञाञ्चसंप्राप्यस्वाद्धीङ्गान्तामुवाच सः ॥१०॥
 निषिद्धाऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना ।
 आगमारम्भसमये राधाख्यानप्रसङ्गतः ॥११॥
 मदद्धीङ्गस्वरूपा त्वं न मद्भिन्ना स्वरूपतः ।
 अनोऽनुज्ञां ददौ कृष्णः मंह्या वक्तुं महेश्वरि ॥१२॥
 मदीष्टदेवकान्तायाराधायाश्चरितंसति ।
 श्रतीव गोपनीयञ्च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥१३॥

हे भगवन् ! पहिले आगमों के कथन करने के समय में यह सब आपने क्यों नहीं बताया था—इसका क्या कारण है ? पार्वती के इस वचन को सुनकर नेत्र रहित मुख वाले वह हो गये थे । ८। भगवान् पञ्चवक्त्र के कण्ठ—त्रोष्ठ और तालु शुष्क होगये थे । वे अपने सत्य के भङ्ग होने से डरे हुए थे और मीन होकर चिन्तित हो गये थे । ९। शिव ने कृष्ण के निधि अपने अभीष्ट देव श्री कृष्ण का ध्यान के द्वारा स्मरण किया था और फिर उनकी अनुज्ञा को प्राप्त करने के पश्चात् वह अपनी ही अर्द्धाङ्गिणी पार्वती से बोले । १०। परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा मुझे उसे कहने के लिये निषेध कर दिया गया था जिस समय आगमों का आख्यान कर रहा था और प्रसंग से श्री राधा का आख्यान प्राप्त हुआ था । ११। किन्तु आप तो देवी मेरे ही आवे अंग के स्वरूप वाली ही । अतः स्वरूप से मुझ से भिन्न नहीं हो । हे महेश्वरी ! इसीलिये अब भगवान् कृष्ण ने मुझे वह सब तुमको बता

देने की भांति है ही है। १२। है यदि। श्री राधा देवी श्री इन्द्र देव की कान्ता है। उनका चरित्र अत्यन्त ही गीर्वाण है। वह परम सुख प्रदान करने वाला और श्रीकृष्ण की भक्ति के देने वाला है। १३॥

जानामि तवहै कृष्ण सर्वे पूर्वापर वरम् ।

यज्जानामि त्वत्स्येव न तवै ब्रह्मा कणोत्तर ११।
न तवै सत्कर्मकारव न च यत्नं सनातन ।

न देवैर्दो मुनीन्द्राश्च सिद्धिं वा सिद्धयुक्ता १३।

मत्ता बलवती त्वेव प्राणोत्थयति संसृजता ।

अथवा गीर्वाणश्च कथयामि सुदुर्बल १६।

शुणु कृष्ण यद्वयामि त्वत्स्य परमाद्भिरम् ।

चरित् शिक्षकापारव कृतं यश्च सुपुण्यवम् १७।

पुत्रा बुद्ध्यावने तस्य गीर्वाणो रोषमण्डले ।

शतशुद्धैः कदम्बैश्च मालतीमालिकार्जव १८।

रत्नसिद्धिं तस्य तस्यै न च जगत्पति ।

स्वेच्छामयव नभावने वर्यैरसमणोत्सिक १९।

रमण करोमिच्छामि च तद्वैभवं सैरेवरी ।

इच्छामि च यद्वै सर्वं त्वत्स्वेच्छामयस्य च १०।

एतस्मिन्नन्तरे कृष्ण विधातृ वर्येव स ।

वक्षिष्यामि च श्रीकृष्ण यामादिभिरुच्यते शिक्षका १२।

वर्येण रमणो रस्यो रासेवा रमणोत्सिका ।

अर्पयन्तमरणा रत्नसिद्धिसनात्पिता १३॥

हे कृष्ण ! वही मैं वही ही अर्था पूर्वा पर सब जानता है । जिस इच्छा की मैं जानता हूँ, उसे ब्रह्मा और कणोत्तर शेष भी नहीं जानते हैं। ११॥ उताव उत रूप मैं सम्यक् सत्कर्मार और सनातन यम भी नहीं जानते हैं । न कोई श्रेष्ठ शिक्षामणि मुनि-ब्रह्म-सिद्ध-र-भार सिद्धी में परम शिक्षामणु ही कोई जानते हैं ॥१५॥ हे देवी !

तुम तो मुझसे भी बल वाली-हो जोकि प्राणों को त्याग करने के लिये समुद्यत हो गई थी । हे सुरेश्वरी ! इस लिये तुमको उस अत्यन्त गोपनीय चरित के रहस्य को बताता हूँ ॥१६॥ हे दुर्गे ! अब तुम श्रवण करो, मैं परम अद्भुत रहस्य श्री राधिका देवी का सुपुण्य प्रदान करने वाला अति दुर्लभ चरित बताऊँगा ॥१७॥ बहुत पहिले प्राचीन समय में वृन्दावन में जोकि परम रम्य है-गोलोक के रास मण्डल में-शतशृङ्ग के एक स्थल में जहाँ कि मालती की लताओं का विशाल वन है, एक रत्नों से विनिर्मित सिंहासन पर वहाँ जगतों के स्वामी स्थित थे । भगवान् अपनी इच्छा से परिपूर्ण हैं । अतः उस समय उनकी रमण करने की उत्सुकता उत्पन्न हुई थी ॥१८-१९॥ रमण करने की इच्छा हुई कि वह सुरेश्वरी हुई थी । उन स्वेच्छामय भगवान् की इच्छा मात्र से ही सभी कुछ हो जाया करता है और उसमें किंचित् भी विलम्ब नहीं होता है ॥२०॥ हे दुर्गे ! इसी अन्तर में वह स्वयं प्रभु दो रूप वाले हो गये थे । उनका जो दाहिना अङ्ग का भाग था, वह श्रीकृष्ण के रूप वाला होगया था और बाँया आधा अङ्ग का भाग श्री राधिका के रूप वाला हो गया था ॥२१॥ वह श्री राधिका परम रम्य रमणी रूप की ईश्वरी रमण करने के लिये समुत्सुक हो गई थीं । वह अमूल्य रत्नों के आभूषणों से विभूषित थीं तथा रत्नों के सिंहासन पर स्थित हो गई थीं ॥२२॥

दृष्ट्वा चैवं सुकान्तञ्च सा दधार हरेःपुरः ।

तेन राधासमाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि ॥२३॥

राधा भजति श्रीकृष्णं सर्वैताञ्चपरस्परम् ।

उभयः सर्वसाम्यञ्चसदासन्तोवदन्ति च ॥२४॥

भवनं धावनं रासे स्मरत्यालिंगनं जपेत् ।

तेन जल्पतिशङ्केतांशस्यां राधां मदीश्वरः ॥२५॥

राशब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्तिं सुदुर्लभाम् ।

समुदाय समुदाय हुआ था और श्री कृष्ण के लोग को से समस्त
 कही गई है ॥२८॥ राधा के लोग के विद्या से निर्वृत्त का एक
 भा वाचक है. १. उससे मातृ. मुक्ति, की, मान्य होता है। वह राधा
 हुई थी ॥२७॥ 'रा'-यह मादान का वाचक है और 'धा'-यह निर्वृत्त
 की हैवरी थी। उसकें धर्मों की कला से फिर देवा की श्रुति
 जाता है ॥२६॥ कृष्ण के समाज से समुदाय राधा पहिले राध
 धा-इसके उच्चारण से है दूना। हरि के पद की दीवकर बना
 इसके उच्चारण से भक्त सुदुर्लभ मुक्ति की मान्य करता है और
 पद है ऐसा समझा जाता है ॥२५॥ राधा इस नाम के 'रा'-
 स्वामी उसकी राधा कहते हैं। उस प्रकृति का यह नाम इसी से
 समुदाय करती है और शक्तिजन का नाम करती है इसीसे भरे
 धरा भक्त कहते हैं ॥२४॥ राध में भवन में भवन करती है।
 भवन करते हैं। इस तरह से परस्पर में दोनों की समता है। यही
 श्रोत्रिया श्री कृष्ण का भवन करती है और श्री कृष्ण राधा का
 के शरीर वह राधा इस नाम से प्रसिद्ध हुई थी या कही गई थी ॥२३॥
 उपनिषद् ही गई थी। है महेश्वरी। इसी से पुरातन विद्वानों
 भाष्य श्रीहरि के भागे रख दिया या भाषाव वह हरि के सामने
 समुदाय परम सुन्दर भवने काल की देवा था और उसने भवने
 उस राधेश्वरी देवी श्री राधिका ने इस प्रकार से राध के भवने

श्रीकृष्णलोगैर्गुणैश्चैव सर्ववर्षः ॥२६॥

वर्षव गीर्णैश्च राधाया नामकैषवः ।

राधायाऽननवर्षो धा व निर्वृत्तवाचकः ॥२८॥

उत्पत्त्याशाशाकलया वर्षवृद्धवर्षिणः ॥ ७॥

कृष्णवामाशाकलया राधा राधेश्वरीपुत्रः ।

धाशाकलयाशाकलया दृगं धारयैव हरेःपदम् ॥२९॥

उनके बल्लभ हुए थे ॥२६॥

राधावामांशभागेन -महालक्ष्मीर्बभूव सा ॥
 शस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ॥३०॥
 चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी ।
 तदंशाराजलक्ष्मीश्चराजसम्पत्प्रदायिनी ॥३१॥
 तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणाञ्च गृहे गृहे ।
 शस्याधिष्ठातृदेवी च सा एव गृहदैवतो ॥३२॥
 स्वयं राधाकृष्णपत्नीकृष्णावक्षःस्थलस्थिता ।
 प्राणाधिष्ठातृदेवीचतस्यैव परमात्मनः । ३३॥
 आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति ।
 भजसत्यंपरंब्रह्मराधेशंत्रिगुणात्परम् ॥३४॥
 परं प्रधानं परम परमात्मानमोश्वरम् ।
 सर्वाद्यं सर्वपूज्यञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥३५॥

राधा के वामांश भाग से वह-महा लक्ष्मी हुई थी । वह-शस्यों की अधिष्ठात्री देवी है और वह गृह लक्ष्मी हुई थी ॥३०॥ वह चार भुजा वाले देव की पत्नी थी जो कि वैकुण्ठ में निवास करती है । उसके अंश से राज लक्ष्मी हुई थी जो राज सम्पत् को प्रदान करने वाली थी ॥३१॥ उसके अंश स्वरूपा मनुष्यों की लक्ष्मी है जो कि गृहस्थियों के घर-घर में स्थित है । वह शस्यों की अधिष्ठात्री देवी और वह ही गृहकी भी देवता होती है ॥३२॥ राधा स्वयं-कृष्ण की पत्नी हैं जो कृष्ण के वक्षः-स्थल में स्थित रहती है । और वह उस परमात्मा के प्राणों की भी अधिष्ठात्री देवी है ॥३३॥ हे पार्वती ! आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्त जो भी सब है वह मिथ्या ही है । त्रिगुण से पर-परं ब्रह्म-सत्य स्वरूप राधा के ईश को भजो ॥३४॥ वह परम प्रधान-परमात्मा-ईश्वर सबके आदि सबके पूज्य निरीह और प्रकृति से परे हैं ॥३५॥

राजा सुप्रभात के घर में बसना है। यी शीर उषकी शाली का नाम
 के शीर से वह देवी गीतिका नाम से यही शीर से माई थी। वह
 का शीर भगवान् विष्णु के पुत्र पराक्रम वाले थे ॥१०॥ सुप्रभा
 है शीर । यह शीर गीतिका के शीरगणित सुप्रभात थे । यी शीर
 शीर की शीर में शीर शीर से उषकी कानिनी रीर करती है ॥३३॥
 स्वयं में शीर के शीर कानिनी का नाम की गरी देवता है । यह देवी स्वयं
 शीर के यह कानिनी है तथा शीरिका की सुप्रभात है ॥३३॥ कानिनी
 शीरिका शीरिका का शीर प्रथम शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर
 यह शीर से सुप्रभात शीर यह शीर प्रकृति देवता है ॥३३॥ इस
 शीर शीर शीर से शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर
 है उषकी शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर
 उषर शीर करती शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर
 यी शीर का स्वयं शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर

सुप्रभात है शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥११॥

सुप्रभात शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥१०॥

श्रीकल्याण शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥१०॥

श्रीकल्याण शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

स्वयं शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

स्वयं शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

श्रीकल्याण शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

श्रीकल्याण शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

श्रीकल्याण शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

श्रीकल्याण शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

श्रीकल्याण शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

श्रीकल्याण शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर शीर ॥३३॥

४० हरगौरीसंवादे राधोपाख्यानम् ।

कथं सुदामाशापञ्च सा च देवी ललाभ ह ।
 कथं शशाप भृत्यो हि स्वाभीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥
 शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
 गोप्यं सर्गपुराणेषु शुभदंभक्तिमुक्तदम् ॥२॥
 एकदा राशिकेशश्च गोलोके रासमण्डले ।
 शतशृंगपर्वतैकदेशे वृन्दावने वने ॥३॥
 गृहीत्वा विरजां गोपीं सौभाग्यां राधिकासमाम् ।
 क्रीडाञ्चकार भगवान् रत्नभूषणभूषितः ॥४॥
 मन्वन्तराणां लक्षश्च कालः परमितोगतः ।
 गोलोकस्यस्वल्पकालेजन्मादिरहितस्यच ॥४॥
 दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वा च कथयामासुः राधिकाम् ।
 श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हारमीश्वरी ॥६॥
 प्रवोधिता च सखिभिः कोपरक्तास्यलोचना ।
 विहायरत्नालंकारं वह्निशुद्धांशुकेशुभे ॥७॥

इस अध्याय में हर गौरी सम्वाद में राधा के उपाख्यान का निरूपण किया गया है। पार्वती ने कहा—उस देवी को सुदामा का शाप क्यों प्राप्त हुआ था ? उस सेवक सुदामा ने अपने अभीष्ट देव श्री कृष्ण की कामिनी को कैसे शाप दे दिया था ॥१॥ श्री भगवान् ने कहा— हे देवी ! मैं इस अत्यन्त अद्भुत रहस्य को बताता हूँ तुम इसका श्रवण करो। यह रहस्य समस्त पुराणों परम गोपनीय है—शुभ के प्रदान करने वाला तथा भक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाला है ॥२॥ एक बार राधिकेश गोलोक धाम में रासमण्डल में शतशृङ्ग पर्वत के एक भाग में वृन्दावन के वन में विरजा नाम की

सदानीं वाली उषने कौडा का पय श्रीर उषवव मंथ वाना
 सयु का भी याम कर दिया था । उषने मुख पर वनी हुई बिज

नागविभवसुत सुहृदुं श्रीमद्विजयसुत ॥१४॥
 सहस्रकर्मक व नागविभवसुतसुत ।
 दशायुवनविक्रियुं देयुं व योजन शरम ॥१३॥
 आर्यदेव दिव्यममरुतमिभयसुत ॥१२॥
 वासुदेवकथयार्थिवाग्निभय कालदीपिभय सुखिता ।
 शरवकथावाग्निवाग्निभय परवादिवा ॥११॥
 आर्यदेवसुतसुतसुतसुतसुतसुतसुत ।
 ययुं यानात्मिक तेषुं विद्यावाग्निवाग्नि ॥१०॥
 शिववदयुतसुतसुतसुतसुतसुतसुत ।
 विभवकवरीमारुतकेशीपकसुतसुत ॥९॥
 प्रथम्य वीयावाग्निभयुं वरायामलकम ॥
 शकार वीपवदयुतसुतसुतसुतसुतसुत ॥८॥
 क्रीडाशरव सुदना सुदयदयुतसुतसुतसुत ।

के समस्त अलङ्कारों का याम कर दिया था ॥१०॥

श्री नेगी वाली ने बहिर के समान शब्द श्रुत करके श्रीर रत्ना
 बहिष्म ने बहिर के समान भाषा या किन्तु कोपसे बाव मुख
 उस देवरी ने हार का याम कर दिया था ॥९॥ बाध में रहने वाली
 था । इसका अर्थ करके वह बहिर ही शपिक कण्ठ ही गई श्रीर
 चार दैवियों ने यह जान कर इस विलान्द को रोषिका से कहे दिया
 जन्मदि से रहित गौरीक धाम का वह स्वरुप ही काल था ॥८॥
 एक लाख मन्वन्तरी के समान समय व्यतीत ही गया था किन्तु
 रत्नशुभला से विद्युत्पव भगवान् ने उसके साथ कौडा को धी ॥७॥
 शीमल्य वाली गौरी को गौरीक रोषिका के ही समान था, लेकर

पत्रावली और मस्तक लगा हुआ सिन्दूर को वस्त्र के द्वारा मिटा दिया था ॥८॥ मुखराग अलन्द से जल की अञ्जलि से धो डाला था । जिसकी कवरी का भार विस्तस्त हो रहा है ऐसी वह केशों को खोलकर कांपती हुई, शुक्ल वस्त्रों का परिधान करके रूक्षा वेशादि से वजित हुई अपनी प्यारी सहेलियों के द्वारा रोकी गई गई थी वह बहुत शीघ्र यान के समीप में चली गई थी ॥९॥१०॥ रोप से अधरों को फड़काते हुए उसने सखियों के समुदाय को बुलाया था । निरन्तर कम्प से युक्त अङ्गवाली वह गोपियों के द्वारा परिवारित की गई थी ॥११॥ भक्ति से युक्त उन कातर सखियों के द्वारा उसकी स्तुति की गई थी ऐसी राधिका परम दिव्य-अमूल्य एवं रत्नों से निर्मित रथ पर समारूढ़ हो गई थी । वह रथ दश योजन के विस्तार वाला तथा सौ योजन लम्बा था ॥१२॥१३॥ उस रथ में एक सहस्र चक्र (पहिए) थे और वह अनेक प्रकार के चित्रों से समन्वित था । नाना प्रकार के चित्र-विचित्र वस्त्रों से तथा सूक्ष्म क्षीमों से वह वह शोभित था ॥१४॥

ययी रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये ।
 श्रुत्वा-कोलाहलं गोप। सुदामा कृष्णपार्षदः ॥१५॥
 कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः साद्धं पलायितः ।
 भयेन कृष्णः सन्नस्तो विहाय विरजां सतीम् ॥१६॥
 स्वप्रेमभग्नो कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः ।
 सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य स्वहृदि क्रुधा ॥१७॥
 शथाप्रकोपभीता च प्राणास्तत्याज तत्क्षणम् ।
 विरजालिगणास्तत्र भवविह्वलकातराः ॥१८॥
 प्रययुः शरणं साध्वीं विरजां तत्क्षणं भिया ।
 गोलोकेसास्रिद्र पा वभूव शैलकन्यके ॥१९॥
 कोटियोजनविस्तीर्णा दीर्घं शतगुणा तथा ।

सुदामा भर्त्सयामास तामेव कृष्णसन्निधौ ।
 क्रुद्धाशशापसादेवीसुदामानं सुरेश्वरी ॥२५॥
 गच्छ त्वमासुरीं योनि गच्छदूरमतोद्रुतम् ।
 शशापतांसुदामाचत्वमितोगच्छभारतम् ॥२६॥
 भव गोपीगोपकन्यागोपीभिःस्वाभिरेवच ।
 तत्रतेकृष्णविच्छेदोभविष्यतिशतंसमाः ॥२७॥
 तत्रभारावतरणं भगवांश्च करिष्यात् ।
 इत्येवमुक्त्वा सुदामा प्रणम्य मातरं हरिम् ।
 साश्रुनेत्रो मोहयुक्तस्ततश्च गन्तुमुद्यतः ॥२८॥
 राधा जगाम तत्पश्चात् साश्रुनत्रातिविह्वला ।
 वत्स क्व यासीत्युच्चार्य्य पुत्रविच्छेदकातरा ॥२९॥

जब वहां उसने विरजा और श्री कृष्ण को नहीं देखा तो वह फिर अपने घर को चली गई थीं । फिर आठ गोपालों के साथ कृष्ण उस राधा के पास गये थे ॥२३॥ वहां जो द्वार पर नियुक्त गोपियां थीं उनके द्वारा बार-बार निवारण किया गया था । उस देवी ने कृष्ण को देखकर उनको बहुत अधिक फटकार दी थी ॥२४॥ उस समय सुदामा ने कृष्ण की सन्निधि में उस देवी को ही भर्त्सना दी थी । तब सुरेश्वरी उस देवी ने क्रुद्ध होकर सुदामा को शाप दिया था ॥२५॥ देवी ने यह शाप दिया था कि तू आसुरी योनि में चला जा और यहाँ से शीघ्र ही दूर चला जा । उस समय सुदामा ने भी उस देवी को शाप दिया था कि तू यहाँ से भारत में चली जा ॥२६॥ तू वहां अपनी गोपियों के साथ गोप की कन्या गोपी होजा । वहां पर तेरा सी कर्प तक श्री कृष्ण से विच्छेद होगा ॥२७॥ वहां भगवान भूमि का भार का अवतरण करेंगे । इतना इस प्रकार से कहकर सुदामा ने माता को और हरि को प्रमाण किया था । वह फिर नेत्रों में अश्रु भरकर मोह से युक्त

राधा ने अपनी छाया को स्थापित कर दी थी और स्वयं अन्तर्व्याप्त हो गयी थी: ॥३४॥३५॥

वभूव तस्य वैश्यस्ये विवाहश्छायया सह ।

गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतश्छलेन च ॥३६॥

जगाम गोकुलंकृष्णः शिशुरूपीजगत्पतिः ।

कृष्णमातायशोदा या रायाणस्तत् सहोदरः ॥३७॥

गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात् कृष्णमातुलः ॥३८॥

कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने ।

विवाहंकारयामासविधिनाजगतां विधिः ॥३९॥

स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहिपश्यन्तिवल्लवाः ।

स्वयंराधाहरेः क्रोडे छायारायाणमन्दिरे ॥४०॥

षष्टिं वर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः ।

राधिकाचरणाम्भोजदर्शनार्थीचपुष्करे ॥४१॥

भारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले ।

ददर्श तत् पदाम्भोजं तपसस्तत् फलेन च ॥४२॥

उस वैश्य का उसी छाया के साथ विवाह हुआ था । चौदह वर्ष व्यतीत हो जाने पर कंस से भीत होकर जगत्पति छल से कृष्ण शिशु के रूप वाले होकर गोकुल गये थे । वहाँ कृष्ण की माता यशोदा थी जिसका रायाण वैश्य सगा भाई था ॥३६॥३७॥ वह गोलोक में गोप कृष्ण का अंश था किन्तु इस सम्बन्ध से वह कृष्ण का मामा था ॥३८॥ फिर जगतों के विधाता ने विधिपूर्वक कृष्ण के साथ राधा का परम पुण्य स्थल वृन्दावन में विवाह करा दिया था ॥३९॥ वल्लभ स्वप्न में राधा के चरण कमल को नहीं देखते हैं । राधा स्वयं तो हरि की गोद में रहती थी और उसकी जो छाया थी वह रायाण के घर में रहा करती थी ॥४०॥ विधाता ने पहिले साठ हजार वर्ष तक तपस्या की थी और वह राधा के चरण कमल के

कृष्णस्य धीर नन्द ये श्री वसुधैव कुटुम्बक इति वाक्ये धीर नन्द
 कलावती धीर यथावा श्री रामा के साथ ही कलावती धीर ॥२६॥
 फिर वह वरुण के साथ श्री लोके धाम की वसे गाये ।
 कृष्ण की धीर कृष्ण से रामा की परस्पर में वसे ॥२७॥ इति कृतं
 धीर धीर के अतीत ही जाने पर ही धीर धीर के वसे ॥
 वसे पर वसे ॥ धीर से धीर के धीर का अन्वय ॥२८॥ एक
 इति परस्पर धीराना के साथ से वसे धीरों का विधान ही ॥
 धीर धाम के लक्ष्मी से धीर से साथ के साथ के साथ ॥२९॥
 कृष्ण धाम एक श्रीकृष्ण कृष्णधाम धीराना के धाम से धीर

गीताक प्रथमः कः साहू कपोत रोषा ॥३०॥
 परे श्रीकृष्णकृतयथागीताध्यायसमाप्तः ।
 श्रीकृष्ण रथे साहू कपोत पावति ।
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३१॥
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३२॥
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३३॥
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३४॥
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३५॥
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३६॥
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३७॥
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३८॥
 धीराना धीराना धीराना धीराना धीराना ॥३९॥

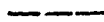
कृष्ण धाम एक श्रीकृष्ण कृष्णधाम धीराना के धाम से धीर
 धीर धाम के लक्ष्मी से धीर से साथ के साथ के साथ से नन्द
 धीर का धीर धीर धीर धीर धीर ॥४०॥ धीर धीर के धीर

सभी गोपी और गोप जो वहाँ से वहाँ आये थे गो लोक को चले गये थे । ४७। छाया गोप तथा गोपियों में सन्निधि में मुक्ति को प्राप्त कर लिया था ॥ ४८॥ हे पावति ! इन सब ने कृष्ण के साथ वहाँ पर ही रमण किया था । छत्तीस करोड़ गोप और गोपी उनके ही समान थे । सब मुक्त होकर कृष्ण तथा राधा के साथ गो लोक नित्य धाम को प्राप्त हो गये थे ॥ ४९॥

द्रोणः प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तत्प्रिया घरा ।
 संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम् ॥५०॥
 वसुदेवः कश्यपश्च देवकीचादितिः सती ।
 देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः ॥५१॥
 पितृणां मानसीकन्या राधामाता कलावती ।
 वसुदामापि गोलोकात् वृषभानुः समाययौ ॥५२॥
 इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकारुह्यानमुत्तमम् ।
 सम्पत्करं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥५३॥
 श्रीकृष्णश्च द्विवारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ।
 चतुर्भुजश्च वैकुण्ठेगोलोकेद्विभुजः स्वयम् ॥५४॥
 चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सरस्वती ।
 गंगाचतुलसाचैवदेव्योनारायणप्रियाः ॥५५॥
 श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदद्विगिसमुद्भवा ।
 तेजसा वयसासाध्वीरूपेणचगुरोर्नच ॥५६॥

प्रजापति द्रोण नन्द या और उसकी प्रिय पत्नी घरा यशोदा थी । इन्होंने पूर्व तपस्या के फलस्वरूप से परमात्मा ईश्वर की प्राप्ति की थी ॥५०॥ वसुदेव कश्यप मुनि थे और सती अर्हिती ने देवकी का शरीर प्राप्त किया था । ये देवों की माता तथा ब्रह्म देवों के पिता थे जो प्रत्येक कल्पों में स्वभाव से ही होते हैं ॥५१॥ पितृगण की

थी और वह भगवान प्रभु उस राधा के पूज्य थे। ये दोनों ही परस्पर में एक दूसरे के अभीष्ट देव थे। इनमें भेद करने वाला नरक गामी होता है ॥३०॥



४१— दुर्गोपाख्यानम् ।

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्नतीव परमाद्भुतम् ।
 अघुना श्रोतुमिच्छामिदुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥१॥
 दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमायाशिवासती ।
 नित्यासत्याभगवतीसर्वाणीसर्वमंगला ॥२॥
 अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वतीचसनातनी ।
 नामानिकौथमोक्तानिसर्वेषांशुभदानिच ॥३॥
 अर्थ षोडशनाम्नां च सर्वेषामीप्सितं वरम् ।
 ब्रूहि वेदवेदां श्रेष्ठ वेदोक्तं सर्वसम्मत्तम् ॥४॥
 केन वा पूजिता सादौ द्वितीये केन वा पुरा ।
 तृतीये वा चतुर्थे वा केनसर्वत्रपूजिता ॥५॥

इस अध्याय में दुर्गा का उपाख्यान वर्णित किया गया है। देवर्षि नारद जी ने कहा — हे ब्राह्मन् ! अब तक मैंने सब के परम अद्भुत आख्यानों का श्रवण किया है। अब मैं दुर्गा देवी का अत्युत्तम आख्यान सुनना चाहता हूँ ॥१॥ दुर्गा-नारायणी-ईशाना विष्णु माया-शिवा-नित्या-सत्या-भगवती सर्वाणी-सर्व मंगला-अम्बिका-गौरी-पार्वती-शिवा-सनातनी ये शुभ नाम कौथमोक्त हैं जो कि सब को शुभ प्रदान करने वाले हैं ॥२॥३॥ इन सोलह नामों का सबको ईप्सित और वर अर्थ है वेदों के वेत्ताओं में श्रेष्ठ वताइये ! जो कि वेद में कहे हुये

शरत्पत्र के कवि—माघान विष्णु ने इन दोहर नामों का
 मधु देह में किया था । विम जग-वैभक्त प्रमः सब मधुसे पूंछते ही
 तो वे माघम के शरत्पत्र उहे बनाते हैं ॥१३॥ इति-महे पत्र दृश्य-

सुखं पृथ्वीनिनाञ्च विष्णुर्देव विकारसः ।
 पुन-पुच्छसिञ्चिविचोक्तपुष्पागमम् ॥१४॥
 इति-देव महे देव महे देव महे देव महे देव ।
 इति-देव महे देव महे देव महे देव महे देव ।
 इति-देव महे देव महे देव महे देव महे देव ।
 इति-देव महे देव महे देव महे देव महे देव ।
 इति-देव महे देव महे देव महे देव महे देव ।
 इति-देव महे देव महे देव महे देव महे देव ।
 इति-देव महे देव महे देव महे देव महे देव ।
 इति-देव महे देव महे देव महे देव महे देव ।

मधु से सम्भव मधु है ॥१४॥ इसका शरि में किस से पुंजन किया
 था तथा पृथिवी सम्भव मधु किस के द्वारा यह पूंछते ही
 तो शरि मधु में किसके द्वारा यह शरीर सम्भव

महान् विघ्न-भव के बन्धन करने वाला कर्म-शोक-दुःख-नरक-यमराज का दण्ड-जन्म-महाभय-अत्युग्र रोग और हनन इतने अर्थों का वाचक होता है। इन सबका जो देवी हनन किया करती है वही दुर्गा इस शुभ नाम से कही गई है ॥७॥८॥ यह देवी यश-तेज-रूप लावण्य और गुण-गण से नारायण के ही तुल्य है और नारायण की ही यह शक्ति है। इसी लिये इस का शुभ नारायणी-यह नाम कहा गया है। ईशान-यह शब्द समस्त सिद्धियों के अर्थ का वाचक है और दातृ वाचक है। यह देवी सब प्रकार की सिद्धियों की प्रदात्री है इस लिए इसका ईशाना-यह नाम कहा गया है ॥९॥१०॥ पहिले परमात्मा विष्णु ने सृष्टि में माया का सृजन किया था। यह समस्त विश्व उस माया से मोहित हो गया था। इसी लिए इसका विष्णु माया यह नाम संसार में प्रसिद्ध हुआ है ॥११॥ शिव में कल्याण रूप वाली-शिव के प्रदान करने वाली और शिव की प्रिया है। शिव शब्द प्रिय और दाता के अर्थ वाचक हैं। इसी से यह शिवा इस शुभ नाम से कही गई हैं ॥१२॥ यह सद् बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है जो युग-युग में विद्यमान रहती हैं। वह पतिव्रता और सुशीला है इस से वह सती कही गई है ॥१३॥ जैसे भगवान नित्य है वैसे ही भगवती नित्या हैं। प्राकृतलय में वह अपनी माया से उस ईश में ही तिरोभूत हो गई थी ॥१४॥

आन्नह्यस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैवकृत्रिमम् ।

दुर्गासत्यस्वरूपासाप्रकृतिर्भगवान्यथा । १५॥

सिद्धैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे ।

सिद्धादिकेभगोज्ञेयस्तेनभगवतीस्मृता ॥१६॥

सर्वान्मोक्षंप्रापयतिजन्ममृत्युजरादिकम् ।

चराचराँश्रविश्वस्थान्सर्वाणीतेनकीर्तिता ॥१७॥

मंगलं मोक्षवचनं चाशब्दोदातृवाचकः ।

सर्वान्मोक्षान्याददात्तिसाएव सर्वमंगला ॥१८॥

है। सुप्रति कल्पाने मंगल परिकल्पितम् ।

राज देवलि या देवीसाएव सर्वमाला ॥१६॥

अश्वेतो मातृवधनी वन्दे पूजने सदा ।

पूजिता वन्दिता माला जगत्सैन शक्तिवका ॥१०॥

विद्युत्प्रकाशविद्युत्कणविद्युत् शक्तिवन्दकप्रिया ।

सुष्टौविद्युत्प्रकाशविद्युत्कणविद्युत् शक्तिवका ॥२॥

आशुतेन्दुव पथेन यह सब कर्मों और प्रिया ही है । वह

प्रकृति कृणी सत्य स्वल्प वाली है जैसे भगवान सत्य है ॥१५॥

सिद्धि के ऐश्वर्य आदि सब विश्वम युग-युग में देते हैं । सिद्धादि में भग

वानना चाहिए इससे यह भगवती इस भगम से कहती गई है । विद्व

य विधय समस्त घर और अघरी की जन्म-मृत्यु और बरा आदि से

सुकराया विना कर यह मीथ को भ्राज कर देती है । अथर्व यह

अथर्वानि-इस भगम से प्रसिद्ध हुई है ॥१६॥१७॥ मंगल मीथ का वचन

है और यह अथर्वाने वाचक भी है । अथर्व यह देवी सबको मोक्ष

देती है इसी लिए इसकी सर्व मंगला भगम से कहा गया है ॥१८॥

मंगल अथर्व-समस्त और कल्याण में कहे गया है । इन हेमदि

की जो देवी है वही सर्व मंगला कहती जाती है ॥१९॥ अन्त यह

पार माला के लिए आता है जो सब वन्दन में और पूजन में कहे

जाता है । यह समस्त अर्चों की माला वन्दन और पूजित है । अथर्व

यह शक्तिका कहती जाती है ॥२०॥ यह विद्युत् की भक्त है-विद्युत् के

रूप वाली है और विद्युत् की शक्ति स्वल्प वाली है । विद्युत् के द्वारा

सूचित में पूजन की गई है इसी कारण से यह वन्दनी-इस भगम से

कल्पित हुई है ॥२१॥

गीत. पीते व नितिन परे ब्रह्मणि निम्नते ।

उत्थायनः शक्तिय गीरी तेन प्रकीर्तिता ॥२३॥

गुरुः शम्भुश्च सर्वेषां सत्य शक्तिः प्रिया सती ।

गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२३॥
 तिथिभेदे सर्वभेदे कल्पभेदेप्रभेदतः
 ख्यातौ तेषु च विख्यातापार्वतीतेन कीर्त्तिता ॥२४॥
 महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति प्रकीर्त्तिता ।
 तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्त्तिता ॥२५॥
 पर्वतस्य सुता देवी साविभूता च पर्वते ।
 पर्वताधिष्ठातृदेवि पार्वती तेन कीर्त्तिता ॥२६॥
 सर्वकाले सना प्रोक्ता विद्यमाने तनीति च ।
 सर्वत्र सर्वकाले चविद्यमाना सनातनी ॥२७॥
 अर्थः पोडशनाम्नानश्च कर्त्तितश्च महामुने ।
 यथागमश्च वेदीक्तोपाख्याश्च निशामय ॥२८॥

पति-निर्मल और निलिप्त पर ब्रह्म में गीर है उम आत्मा की यह शक्ति है इससे यह गौरी कही गई है ॥२३॥ शम्भु सब के गुरु हैं उसकी यह प्यारी सती शक्ति है और कृष्ण गुरु हैं उसकी माया है, इसी से गौरी कात्तित हुई है ॥२३॥ तिथि के भेद में सर्वभेद में और कल्प के भेद-प्रभेद से ख्याति में उनमें यह विख्याति है इसी से यह पार्वती कही गई है ॥२४॥ महोत्सव विशेष में पर्वत-यह शब्द कहा गया है । उस पर्व की यह अधिदेवी है अतएव वह पार्वती कही गई है ॥२५॥ यह हिमाचल पर्वत राज की पुत्री है और यह देवी पर्वत आविभूत हुई थी । यह पर्वतों की अधिष्ठात्री देवी है, इसीसे पार्वती नाम से कही गई है ॥२६॥ सर्वकाल में 'सना'-यह शब्द कहा गया है और विद्यमान अर्थ में तनी-यह आता है । जो सर्वत्र और सब काल में विद्यमान रहती है वह सनातनी है ॥२७॥ हे महामुने ! देवी के सोलह नामों का अर्थ कह दिया है । आगम के अनुसार वेद में कहे गये उपाख्यान का श्रवण करो ॥२८॥

प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना ।

महात्मा सुरथ के द्वारा पूजी गई थी जो मेघस का - शिष्य राजा था ।
इसने नदी के तट पर भृष्मयी में इसका अर्चन किया था ॥३५॥

वेदोक्तानि व दत्त्वैवमुपचाराणि षोडश ।

ध्यात्वा च कवचं धृत्वा संपूज्य च विधानतः ॥३६॥

राजा कृत्वा परीहारं वरं प्राप यथेप्सितम् ।

मुक्तिं संप्राप वैश्यश्च संपूज्य च सरित् तटे ॥३७॥

तुष्टाव राजा वैश्यश्च साश्रुनेत्रः पुटाञ्जलिः ।

विससर्ज मृष्मयीं तां गभीरे निर्मले जले ॥३८॥

मृष्मयीं तादृशीं दृष्ट्वा जलधौ तां नराधिपः ।

रुरोद च तदा वैश्यस्ततः स्थानान्तरं ययौ ।

त्यक्त्वा देहञ्च वैश्यश्च पुष्करे दुष्करं तपः ॥३९॥

कृत्वा जगाम गोलोकं दुर्गादेवीवरेणसः ।

राजाय यौ स्वराज्यञ्च पूज्यो निष्कण्ठकं वली ॥४०॥

भोगञ्च वुभुजे भूपः षष्टिवर्षसहस्रकम् ।

भाय्यां स्वराज्यं संन्यस्य पुत्रे च कालयोगतः ॥४१॥

मनुर्वभूव सार्वर्णिस्तप्त्वा च पुष्करे तपः ।

इत्येवं कथितं वत्स समासेन यथागमम् ॥४२॥

इसने वेदों में बताये हुये सोलह उपचार उसको समर्पित किये थे । इस राजा ने इसके कवच का ध्यान कर उसे विधि विधान से भलि भांति पूज कर धारण किया था ॥३६॥ राजा ने परीहार करके जो भी चाहता था वर प्राप्त किया था । सरित् के तट पर विधि के साथ भली भांति इसकी अर्चना कर के वैश्य ने मुक्ति प्राप्त की थी ॥३७॥ राजा और वैश्य दोनों ने अश्रुपूर्ण नेत्र वाले होकर हाथों का जोड़ते हुए इसकी स्तुति की थी । फिर उसकी भृष्मयी मूर्ति को उस नदी के गहरे जल में विसर्जित कर दिया था ॥३८॥ भृष्मयी

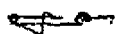
लोकोऽत्र धृष्ट्यापामास संदस्य महिमतैः ॥१॥
अथऽहिसिमा शतक मुहूर्त्तमा संभामवव ।

स्वाप्यन्वभवमनोवदः सत्यवदाइ जिज्ञेह्य ॥ १॥
संस्थायीयै वदवान् नदिकैककननन्दन ।

वैद्वी मुक्तिव संपदावैलभ्ये अत्कालिमहर्षि ॥१॥
कथ राणा महितीनासामप महिसरामाने ।

विषयसूची

४२- १३१ : सिद्धयन्त्र : सुखसामानाधिकरण्यात्



हो २ ॥ १३१

विद्या है। है मुक्ति मूल, अब माल कथन यद्यपि करण माल है
करता है वह है कि वह सकार से यह संध्य म वेदा से अन्वियाक कह
सपकके किंममालि मने ह्यथा वा। है वस्तु। है माल माल से
मपते २१०० को व के मुहूर्त् कर विद्या या ॥ १००००॥ करके म
किंम या करकाल के माल से जब राजा के मपत्ति माली माली
अपने निकटक राजा के माली का उद्योग माल है माल माल माल
माले २१०० म माल माल माल माल माल माल माल माल माल
के बदला से वह किंममालीक माल की माल माल माल माल माल
है का लाल करके वह माली की माल माल माल माल माल माल माल
माल माल माल माल माल माल माल माल माल माल माल माल माल
के वस्तु के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त्
के वस्तु के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त्
उस की माल से माल के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त् के मुहूर्त्
माल माल माल माल माल माल माल माल माल माल माल माल माल

युद्धं वभूव नियतं पूर्णमब्दञ्च नारद ।
 चिरजीवी वैष्णवश्च जिगाय सुरथं नृपः ॥४॥
 एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च वहिष्कृतः ।
 निशायां ह्यमारुह्य जगाम गहनं वैनम् ॥५॥
 ददर्श तत्र वैश्यञ्च पुष्पभद्रानदीतटे ।
 तयोर्वभूव संप्रीतिः कृतवान्धवयोर्मुने ॥६॥
 वैश्येन साद्धं नृपतिर्जगाम मेघसाश्रमम् ।
 पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रञ्च भारते संताम् ॥७॥

इस अव्याय में सुरथ राजा का और समाधि वैश्य का विवरण दिया जाता है। देवर्षि नारद ने कहा—उस राजा ने मुनियों में श्रेष्ठ से किस तरह ज्ञान प्राप्त किया था और उस वैश्य ने मेघस से मुक्ति किस प्रकार प्राप्त की थी ? यह कृपा कर व्याख्या करने के आप योग्य होते हैं ॥१॥ श्री नारायण ने कहा—ध्रुव का पौत्र उत्कल का पुत्र नन्दि बड़ा ही बलवान था। यह स्वायम्भुव मनु के वंश में था और जितेन्द्रिय तथा सत्यवादी हुआ था ॥-॥ इसने सौ अशौहिणी सेना को लेकर महामतिमान् सुरथ के लोकों को घेर लिया था ।३॥ हे नारद ! वह युद्ध नियत रूप से पूरे एक वर्ष तक हुआ था। चिरजीवी और वैष्णव नन्दि नृपति ने सुरथ को जीत लिया था ।४॥ जब नन्दि ने उसे वहिष्कृत कर दिया था तो अकेला राजा सुरथ भयभीत होकर रात्रि में घोड़े पर समाहूढ़ होकर गहन वन में चला गया था ॥५॥ वहाँ पर पुष्पभद्रा नदी के तट पर उमने वैश्य को देखा था। हे मुने ! वहाँ पर बन्धुभाव कर लेने वाले उन दोनों की बड़ी प्रीति हो गई थी ॥६॥ वह राजा सुरथ उस वैश्य के साथ मेघस के आश्रम में गया था जोकि भारत में सत्पुरुषों का पुण्य क्षेत्र है और परमदुष्कर पुष्कर था ॥७॥

प्रास होना ? हे महेश्वर ! आप यही मुझे बताइए । मैं आपके द्वि
 गण हूँ ॥११॥ अब मैं क्या उपाय करूँ ? भरी यह रोज़ केश
 प्रति बलवान् नन्द के द्वारों में अपने रोज़ से बाहर निकल दिया
 चुन गया मैं समझता हूँ कि नन्द मुझे नाम का राजा हूँ । इस मगध
 उनके प्रदेश का उत्तर दिया था ॥१०॥ सुन्दर ने कहा— हे ब्रह्म !
 किया था । इसके अनन्तर राजा ने उस मुनि पञ्चव की कृपा से
 कुशल प्रदेश करके उनकी प्रति प्रति नाम जानने का मुनि ने प्रदेश
 नियुक्त था शशिवाह दिये गए ॥१॥ फिर उन दोनों से प्रत्येक प्रत्येक
 मुनि ने उन दोनों का आश्रय स्वीकार किया था और उन दोनों के
 द्वार क्षेत्र ने उस श्रेष्ठ मुनि को द्वार स्वीकार प्रणाम किया था ।
 अपने शिष्यों की सुवर्णय वस्त्रों को बना कर देकर ॥१॥ राजा ने
 वही राजा ने तीव्र बाले मुनि का स्थान किया था जो

निपुणमानः पुत्रं च कलङ्कवर्णोत्तरायम् ॥११॥
 शशिवाह ददौ तस्य रत्नकोटिं द्विं द्विं ।
 पुत्रं कलङ्कवर्णं धनलोभेन धर्मिकः ॥१३॥
 अथ वीर्यः समविश्व स्वर्गद्वेष बहिर्भव ।
 तस्मात् त्वं हि महामाण स्वयंभवात्तस्मात्तस्मात् ॥१२॥
 किमुपायकारेण्यसि कथं राज्यं चक्षुःश्रमम् ।
 बहिर्भूतं स्वराज्यं नन्देना बलिनायुता ॥११॥
 राजाऽहं सुन्दरा ब्रह्म स्वर्गवशां समुद्धतः ।
 ददौ प्रवृत्तं राजा केशवो मुनिपुत्रं त्वम् ॥१०॥
 प्रदेशं चकार कुशलं जतिं नाम प्रत्येकं प्रत्येकं ।
 मुनिस्त्वोत्प्रेषणाय ददौ तस्मात् शशिवाह ॥१॥
 राजानामप्येवमेव विरसामिनिपुत्रं त्वम् ।
 शशिवाहं च यथाशक्तं ब्रह्मवत्सु सुवर्णयम् ॥१॥
 ददौ च त्वं मुनिर्मुनिं च शशिवाहं त्वम् ।

शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ । ॥१२॥ यह समाधि नामक वैश्य है । यह भी आपने घर से बहिष्कृत कर दिया गया है । यह धार्मिक है इसे इसके धन के लोभ से देव के द्वारा, पुत्रों बान्धवों और कलत्रों ने इस विचारे को घर से बाहर भगा दिया है । यह धार्मिक वृत्ति होने के कारण नित्य ही ब्राह्मणों को रत्न कोटि दिया करता था इसके पुत्र बान्धव और स्त्रियों ने इसे रोका था ॥१३॥ ॥४॥

कोपाग्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेषितः शुचा ।

अयं गृहञ्चन ययौ विरक्तो ज्ञानवान् शुचिः । १४ ।

पुत्राश्च पितृशोकेन गृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम् ।

दत्त्वा धनानि विप्रं भ्यो विरक्ताः सर्वकर्मसु । १५ ।

सुदुर्लभं हरेर्द्दास्य वैश्यस्यास्य च वाञ्छितम् ।

कथं प्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि । १७ ।

करोति मायया च्छन्नं विष्णुमायादुरत्यया ।

निर्गुणस्य च कृष्णस्य त्रिगुणा विश्वमाज्ञया । १८ ।

कृपां करोति येषां सा धर्मिणाञ्च कृपामयी ।

तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिमुदुर्लभाम् । १९ ।

उन्होंने क्रोध से इसका निरादर कर दिया था फिर इसका अन्वेषण किया तो यह चिन्ता से आपने घर नहीं गया था और ज्ञानवान् एवं शुचि यह विरक्त हो गया है ॥१५॥ इसके पुत्र भी पिता के शोक से गृह का त्याग कर वन में चले गये थे । वे भी धनों को विप्रों को दान देकर सम्पूर्ण कर्मों में विरक्त हो गये थे ॥१६॥ इस वैश्य का वाञ्छित हरि का दास भाव अत्यन्त दुर्लभ है । यह उसे निष्काम कैसे प्राप्त करे—यह आप बताने के योग्य होते हैं ॥१७॥ श्री मेघस ने कहा—यह निर्गुण कृष्ण की तीन गुणों वाली माया है । यह विष्णु की माया बहुत ही दुरत्यय है । यह अत्यन्त कठिन है । विष्णु की आज्ञा से इसने इस समस्त विश्व को आच्छन्न कर

हे नृप । निम्न मायाविद्यो की माया ऊपर गही करती है यदि
 जान से दुर्भागि धान उगती माया से बांध जब है ॥२०॥ यह संधार
 ती मायावान है किन्तु इस निम्न मयवर संधार से धोर लोग संधार
 निम्न यदि बग विद्या करवे है धोर परमेश्वर का त्याग कर वेने
 है ॥२१॥ परमेश्वर का त्याग करके मन्त्र देव का मन्त्र किया करते है

निम्नव्य निर्गुणदेव से मन्त्रित व निर्गुण ॥२२॥

कर्त्तव्य गहन सन्तो मन्त्र नन्द निर्गुणमय ।

ब्रह्मदेव निर्गुणोर्ध्वत शोकात्कीर्णकेवे. परे । २०॥

निम्नव्य मन्त्र निर्गुण सन्त्रिको लोकोवा मर ।

सर्वमानसपश्यन्त मानवनिम्ननरा ॥२३॥

सेवने मन्त्रो सर्व निर्गुण विप्रियो वरा ।

शक्तिरिन्द्रियम सर्वत्र प्रान्तवन्त महेश्वराने ॥२४॥

मानसिन्द्रियदेवत्व निम्नव्य शक्ति देवे ।

शिवे शक्ति लभते से आनन्द-देवतात् ॥२५॥

निम्नव्य निर्गुणमात्र सर्वत्र मन्त्रित कर्मात्म ।

सर्व मन्त्रित कर्मा सेवने मन्त्रित वरा ॥२६॥

देवे. कर्माः देवतादेव निम्नव्य जन्म से म व ।

निम्नव्य निर्गुणमन्त्रित मन्त्रितो मन्त्रितो ॥२७॥

देवमन्त्रितवन्त स-मन्त्रित जन्त व ।

कर्त्तव्य निम्नव्य निर्गुण परमेश्वरम् ॥२८॥

मन्त्रे निम्नव्यमन्त्रे मन्त्रो वर ।

मन्त्रितो निर्गुणमन्त्रितो मन्त्रितो निर्गुणमन्त्रितो ॥२९॥

यथा मायाविद्यामाया न करीति ऊपर नृप ।

को देवी है ॥१९॥

रक्षता है । १८॥ वह निम्नव्य निर्गुण परमेश्वर कर्मात्मा मन्त्रितो ऊपर
 करती है उन्ही को ऊपर के शिव मन्त्रित मन्त्रितो मन्त्रितो मन्त्रितो

और उसके ही मन्त्र का जाप करते हैं । ऐसा प्रायः मन में लोभ करके कोई मिथ्या निमित्त बनाकर किया करते हैं ॥२२॥ हरि की कला के स्वरूप वाले देवता हैं उनका सात जन्म तक सेवन करने से प्रकृति की कृपा होती है । फिर प्रकृति की कृपा से उसका सेवन करते हैं ॥२३॥ उस कृष्ण मयी विष्णु की माया की सात जन्म प्रयन्त उपासना करने से शिव की भक्ति प्राप्त होती है । जोकि शिव ज्ञान का आनन्द स्वरूप है और सनातन हैं ॥२४॥ ज्ञान के अधिष्ठान्त्र देव शङ्कर की सेवा से शीघ्र हरि की विष्णु भक्ति का लाभ महेश्वर से ही प्राप्त होता है ॥२५॥ तब सगुण-सत्त्व स्वरूप विषया नुरक्त विष्णु का सेवन कर सत्त्व के ज्ञान से मनुष्य निर्मल ज्ञान की प्राप्ति करता है ॥२६॥ सात्विक नर जो वैष्णव है सगुण विष्णु की उपासना करके प्रकृति से पर निर्गुण श्री कृष्ण में भक्ति का लाभ किया करते हैं ॥२७॥ सन्त पुरुष उसके निरामय मन्त्र को ग्रहण करते हैं । निर्गुण देव का सेवन करके वे फिर स्वयं भी निर्गुण हो जाते हैं ॥२८॥

असंख्यब्रह्मणः पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः ।

दास्यं कुर्वन्त्सततंगोलोके च निरामये ॥२९॥

कृष्णभक्तात् कृष्णमन्त्र यो गृह्णाति नरोत्तमः ।

पुरुषाणांसहस्रञ्चरुषापितृणां समुद्धरेत् ॥३०॥

मातामहानां पुरुषं सहस्रं मातर तथा ।

दासादिकं समुद्धृत्य गोलोकं स प्रयाति च ॥३१॥

भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपपिणी ।

पार करोति दुर्गतिान्कृष्णभक्त्या च नौकया ॥३२॥

स्वकर्म्मबन्धन छत्तुं वैष्णवानाञ्च वैष्णवी ।

तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपासाकृष्णस्यपरमात्मनः ॥३३॥

विद्वि विवधना सुदिदादास्त्यवधेपाम्या ॥३८॥
 निरकामय च वृक्षयय वृक्षययव वृक्षयय ।
 वृद्धिमावरो वृक्षयय वृक्षयय कर्मिने ॥३९॥
 नन्द राजन मदीर मज दृग्गि वनावनीय ।
 यवामि कल्पमारमन वान सप्राम्य वृद्धिरो ॥४०॥
 अह प्रवतस. पुन. पीनञ्च वृक्षययि मप ।
 अद्वयविवानामववा कन्मभूमिजामदी ॥४१॥
 निरकरपा मय्य शीरुति वावरो ॥४२॥

वृक्षयय को मनावनी है ॥३८॥
 है उससे अयव सयो मरार है । इस प्रकार की विवधना की वृद्धि
 शीर इस शक्ति प्राप्त की जाती है ॥३९॥ सत्य स्वल्प के वन शीर कल्प
 है । शक्ति की भावरोणी विवधना जो है वह अक्त के विवे देवी है
 के स्वल्प वाणी होती है ॥४०॥ है मप । वह शक्ति दो प्रकार की
 करने के विवे शीर कल्प परमारमा की वृक्षयय मक्ति वृक्षयय मन्त्र
 पार नया देवा है ॥४१॥ वृक्षयय को अपने कर्म का वधन है
 कल्प की शक्ति की शीका के द्वारा समस्त वृक्षयय वाणी को वह
 इस महान् शीर सवार शीर शीर म कर्म पार के स्वल्प वाणी
 समुदाय करके वृद्धि स्वयं या लोक वाम मं वना जाता है ॥४२॥
 शीर सहेष पक्षी का वना माता का शीर दास शक्ति का सब का
 पुष्पा के पिण्या का उदार कर देवा है ॥४३॥ माता यह शक्ति के
 मं उत्तम कल्प के अक्त से वृक्षयय मन्त्र की वृक्षयय वना है वह सहेष
 निरामय गी लोक मं निरन्तर दास्य कर्म करते है ॥४४॥ जो शीर
 वे वृक्षयय गी अद्वय वृक्षयय का पवन देवा करते है शीर

वृद्धिविवधना वृक्षययव वृक्षययविवधना ॥४५॥
 सप्रवक्ष्यः शीरुतिस्त्यमाव सव-व नद्वयम् ।
 पूर्व ददाति अकाम्य वृक्षयय पदा ॥४६॥
 विवधनावावरो शक्तिः शक्तिविवधना मप ।

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठोददौताभ्यां कृपानिधिः ।
 पूजाविधानं दुर्गायाः स्तोत्रञ्चकवचमनुम् ॥४०॥
 वैश्यो मुक्तिञ्च संप्रापताँनिषेव्यकृपामयीम् ।
 राजा राज्यं मनुत्वञ्चपरमैश्वर्यमीप्सितम् ॥४१॥
 इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ।
 सुखदं मोक्षदं सारंकिं भूयः श्रातुमिच्छसि ॥४२॥

यह श्री मेरे द्वारा नित्य रूप वाली है—यह आवरणी बुद्धि है जो अवीष्णव असत् और कर्मों के भोगों का भोग करने वालों को होती है। हे नृप ! मैं प्रचेता का पुत्र और ब्रह्मा का पीत्र हूँ, भगवान् शङ्कर से ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा कृष्ण का भजन करता हूँ ॥३६॥३७॥ हे राजन् ! तुम नदी के तट पर जाकर सनातनों दुर्गा का भजन-स्मरण करो। कामना वाले तुमको वही देवी आचरणी बुद्धि का प्रदान करेगी ॥३८॥ यह जो वैश्य है वह कोई भी कामना हृदय में नहीं रखता है अतः पूर्णतया निष्काम है। इसके लिये जोकि परम वीष्णव है वह कृपा से परिपूर्ण अतिशय शुद्धा विवेचना बुद्धि का प्रदान कर देगी ॥३९॥ इतना कहकर उस कृपा के निधि मुनि ने उन दोनों के लिये दुर्गा देवी के पूजा का विधान—स्तोत्र और कवच दे दिया था ॥४०॥ वह वैश्य उस कृपा मयी की उपासना करके मुक्ति को प्राप्त हो गया था और राजा ने अपना भ्रष्ट हुआ राज्य मनुत्व और अभीप्सित परम ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ॥४१॥ इस प्रकार से यह सम्पूर्ण श्री दुर्गा देवी का पवित्र उपाख्यान तुमको वता दिया है जो अतिउत्तम है—मुख देने वाला—मोक्ष प्रदायक और साररूप है। अब आगे फिर और मुझसे क्या श्रवण करने की इच्छा रखते हो ? ॥४२॥



स्त्रीय है तथा कवच तथा है शक्ति मुक्ति देव से राजा
 विधान तथा है तथा व्यक्त शरीर मन्त्र तथा है । कौन सा
 प्रकार से सुवन किया था ? ॥ २ ॥ उभको पूजा का
 श्रेय से प्रकृतिक के उदय से निकाम-निर्माण शरीर निर्माण का क्रम
 प्रकार से परा प्रकृति का सुवन किया था ? ॥ १ ॥ समाधि समाधारी
 शक्तियों में परम श्रेष्ठ । है महा भाग । है नारायण । राजा से किस
 शब्द का निकलण किया जाता है । शक्ति नाद से कहे-हे शक्ति के
 इस शक्तिय में श्रेष्ठ-समाधि-मध्य समाद से प्रकृति श्रेष्ठ के

साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १० ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ ११ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १२ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १३ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १४ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १५ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १६ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १७ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १८ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ १९ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २० ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २१ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २२ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २३ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २४ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २५ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २६ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २७ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २८ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ २९ ॥
 साक्षात् श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ ॥ ३० ॥

शक्तिश्रेष्ठश्रेष्ठश्रेष्ठ

४३-श्रेष्ठश्रेष्ठश्रेष्ठश्रेष्ठश्रेष्ठ

स्मरणां वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणाकीर्तनम् ।
 श्रवणं भावनं सेवा सर्वं कृष्णे निवेदितम् ॥१९॥
 एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम् ।
 जन्ममृत्युजराव्याधियमताङ्गनखण्डनम् ॥२०॥
 आयुर्हरति लोकानां रविरेव 'ह सन्ततम् ।
 नवधाभक्तिहीनानामसतां पापिनामपि ॥२१॥

वैश्य ने कहा—हे माता ! ब्रह्मत्व और अपरत्व यह मेरा कोई भी इच्छित नहीं है । इससे भी अति दुर्लभ अभीप्सित क्या हो सकता है—यह भी मैं नहीं जानता हूँ । मैं तो तुम्हारे चरणों की शरण में प्राप्त होगया हूँ अब आपका जो भी कुछ इच्छित हो वही मुझे प्रदान कीजिए । मुझे अनश्वर और सबका सार स्वरूप वर आप देने के योग्य हैं ॥१५॥१६॥ प्रकृति ने कहा—मुझे ऐसा कोई भी वरदान नहीं है जो तुम्हें न देने के योग्य हो अर्थात् मैं तुम्हें तो सभी कुछ देने को तैयार हूँ । अब जब कि तू मेरे ही ऊपर लोड़ता है तो मेरा वाञ्छित ही दूंगी जिससे कि तू अति दुर्लभ गोलोक के पद को प्राप्त करेगा ॥१७॥ सब का सार स्वरूप जो ज्ञान है जोकि सुरषियों को भी अति दुर्लभ है । हे महाभाग ! तू अब मुझसे उसे ग्रहण करले । हे वत्स ! फिर तू हरि के पद को प्राप्त कर ॥१८॥ स्मरण-वन्दना-ध्यान-अर्चन-गुणों का कीर्तन-श्रवण-भावना-सेवा यह सब कृष्ण में निवेदित करना चाहिए ॥१९॥ यह ही वैष्णवों की नौ प्रकार की भक्ति का लक्षण होता है । यह जरा-जन्म-मृत्यु-व्याधि-यम का ताङ्गन या खण्डन करने वाला है ॥२०॥ सूर्य ही मनुष्यों की आयु का निरन्तर हरण किया करता है । जोकि हरि की नौ प्रकार की भक्ति से हीन एवं असत् पापी पुट्य होते हैं ॥२१॥

भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः ।

जीवन्मुक्ताश्च निष्पाया जन्मादिपरिवर्जिताः ॥२२॥

ये तर्कनास्ते तदंशा जीवःमुक्ताश्च सन्तम् ।
 पापपटोरास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विद्यात्पते ॥२६॥

२०॥२६॥

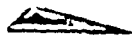
प्राप्य तत्र मर्त्या मं परम श्रेष्ठ महानिवाच ॥२६॥२६॥२६॥२६॥
 परमात्मा कला को नो प्रकार को मर्त्य से युक्त ॥ ये सब महान
 माहीवृत्ति-वर्णन-नर-नारायण-कर्म-इन्द्र-मन्-विनीय-ये सती
 नार-गणेश-धर्म-सुधा-वक्ष्य-वार्त्त-वन्द-द्वैतान-मर्कटार-वर्षक-
 वीर-केतु-वृहस्पति-कर्म-मर्त्य-मर्त्य-मर्त्य-मर्त्य-मर्त्य-मर्त्य-मर्त्य-
 सनातन-भूमि-मर्त्य-वृषभ-कश्यप-गुरुदे-मर्त्य-मर्त्य-मर्त्य-मर्त्य-
 विद्या महान विराट् सनत्कुमार-सनन्दन-वर्ष-पञ्च विष-वध-नारद-
 पावनात्मन के र्त्त से वृत्तव रही करते है ॥२६॥ विष शेष-मर्त्य-वृषभ-
 जोविद दशा म ही मुक्त होते है-गणेश से रहित शूर क-म-मरण शक्ति
 द्वैत सर्वान् रही करते है वे शेषोव ती विरवोवी हुआ करते है । वे
 जो विद्या के भक्त है शूर विद्या म ही भयना विष जगत्

एते महान्तीर्थानां प्रवर्तित्या ॥२६॥
 नवधा मर्त्यमुक्तश्च कल्पित्य परमात्मनः ।
 नरनारायणो कर्म इन्द्रश्च नो विनीयणः ॥२७॥
 शक्यार वर्षकश्च माहीवृत्ति वर्णनः ।
 यमः सुदृश वरुणो वायुश्चन्द्रो द्वैतानः ॥२८॥
 माकण्डेयो वृहस्पतिश्च प्रजापतिश्च गणेश्वरः ।
 वृहस्पतिः कर्मेश्वरश्च शक्तिरर्षिः पराशरः ॥२९॥
 भूषणो लोमशः शुको वशिष्ठः कर्तव्यश्च ।
 भूमिर्गुरुर्विष्वदेवश्च। कश्यपः पूर्वदेवोऽपि । ॥३०॥
 वीरः पञ्च वि दशा नारदश्च सनातनः ।
 सनत्कुमारः कपिलः सनकश्चसनन्दनः ॥३१॥
 विषः शेषश्च धर्मश्च वदो विद्यामहान् विराट् ।

ऊर्ध्वं च सप्त स्वर्गश्चसप्तद्वीपावसुन्धरा ।
 अथः सप्तः च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेवच ॥३०॥
 एवं विधानां विश्वानां संख्यानास्त्येव पुत्रक ।
 एवञ्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३१॥
 देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः ।
 सर्वाश्रमाश्च सर्वात्र सन्ति बद्धाश्च मायया ॥३२॥
 महद्विष्णोर्लोमकूपे सन्ति विश्वानि यस्य च ।
 स षोडशांशः कृष्णस्य चात्मनश्च महान् विराट् ॥३३॥
 भज सत्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम् ।
 प्रकृतेः परमीशानंकृष्णमात्मानमीप्सितम् ॥३४॥
 निरीहञ्च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
 निष्कामं निर्विरोधञ्च नित्यानन्दं सनातनम् ॥३५॥

जो उस परमात्मा कृष्ण के भक्त होते हैं वे उसी के एक अंशाव-
 तार हुआ करते हैं । वे जीवन्मुक्त ही निरन्तर हुआ करते हैं ।
 हे विशाम्बते ! वे पृथिवी के और तीर्थों के भी पापों का अपहरण
 करने वाले होते हैं ॥३१॥ ऊपर में सात स्वर्ग हैं और सात द्वीपों
 वाली यह वसुन्धरा है । इसके नीचे सात पाताल हैं । यह सबका
 मिलकर एक ब्रह्माण्ड होता है ॥३०॥ हे पुत्र ! इस प्रकार के ब्रह्माण्डों
 विश्वों की कोई संख्या नहीं है अर्थात् ऐसे ब्रह्माण्ड अनन्त कोटि होते
 हैं । इसी प्रकार से प्रत्येक विश्व में पृथक् २ ब्रह्मा की ही भाँति विष्णु
 और शिव आदि भी अलग-अलग हैं ॥३१॥ इसी प्रकार से देवगण-
 देवर्षि वर्ग-मनु मण्डल और मानव आदि सब पृथक् २ हैं । समस्त
 आश्रम सर्वात्र होते हैं और सभी माया से बद्ध भी रहते हैं ॥३२॥
 जिस महाविष्णु के लोमों के कूपों (छिद्रों) में अनेक विश्व हैं वह
 महाविष्णु भी श्रीकृष्ण भगवान को सोलहवाँ अंश ही होता है और
 आत्मा का महान विराट् होता है ॥३३॥ अतएव सत्य स्वरूप-परम

योग्य हैं । सर्वेश्वर-सबके पूज्य, सबको सब कामनाओं के देने वाले हैं ॥३७॥ सबके आधार-सभी कुछ के ज्ञाता-सबको परम आनन्द करने वाले-सर्व धर्म के प्रदान करने वाले-सर्व-सर्वज्ञ-प्राणरूपी हैं ॥३८॥ समस्त धर्मों के स्वरूप-सम्पूर्ण कारणों के कारण-सुख देने वाले-मोक्ष दाता-सार-पर रूप-भक्ति के देने वाले हैं ॥३९॥ दास्य के देने वाले धर्म के दाता -सत्पुरुषों को समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले-सर्व-तदतिरिक्त-नश्वर श्रीर सदा कृत्रिम हैं ॥४०॥ हे वत्स ! पर से भी पर तर-शुद्ध-परिपूर्ण तम-शिव-भगवान् अधोक्ष्म के निकट यथा सुख जाओ ॥४१॥ "कृष्ण"—यह दो अक्षर वाला कृष्ण के दास्य को देने वाला मन्त्र ग्रहण करो । पुष्कर में जाकर इस दुष्कर मन्त्र का दशलाख जाप करो ॥४२॥ इस मन्त्र के दशलाख जप से ही तुम्हें इस मन्त्र की सिद्धि हो जायगी । इतना यह कहकर वह भगवती वहीं पर अन्तर्ध्यान होगई थी ॥४३॥ हे मुने ! उस वैश्य ने भक्ति भाव से उस देवी को प्रणाम किया और फिर वह पुष्कर में चला गया था । पुष्कर में उसने दुष्कर तपस्या करके ईश्वर कृष्ण की प्राप्ति की थी । वह फिर भगवती के प्रसाद से श्री कृष्ण का दास होगया था ॥४४॥



४४-श्रीकृष्णाकृतदुर्गास्तोत्रम् ।

श्रुतं सर्वं नावशिष्टं कश्चिदेवं हि निश्चितम् ।
 प्रकृतेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥१॥
 पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना ।
 संपूज्य मधुमासे च प्रीतेन रासमण्डले ।
 मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णाना पुरा ॥२॥

समर्पित होती रही है और कल्प-कल्प में इसकी पूजा हुई थी। हे ब्रह्मन् ! अब इसके स्तोत्र का श्रवण करो जोकि समस्त विघ्नों का नाश करने वाला है। यह सुख देने वाला-मोक्ष का दाता-सर्वका सार रूप और संसार रूपी समुद्र से पार कर देने का कारण स्वरूप है ॥६॥

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिर्गेश्वरी ।
 त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥७॥
 कार्यार्थे सगुणा त्वञ्च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।
 परब्रह्मस्वरूप त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥८॥
 तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुहविग्रहा ।
 सर्वस्वरूपा सर्वशा सर्वाधारा परात्परा ॥९॥
 सर्ववोजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
 सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१०॥
 सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
 सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी ॥११॥
 त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधास्वयम् ।
 दक्षिणासर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥१२॥
 निद्रा त्वञ्च दयात्वं च तृष्णा त्वञ्च त्मनश्च मे ।
 क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरोशा च कान्तिः सृष्टिश्च शाश्वती ॥१३॥

श्री कृष्ण ने कहा—हे देवी ! आपही सबकी जननी हैं। आप मूल प्रकृति और ईश्वरी हैं। इस सृष्टि की विधि में आप ही सबसे पहिले होने वाली हैं। आप अपनी ही इच्छा से त्रिगुण स्वरूप वाली हैं ॥७॥ आप कार्यो के सम्पादन करने के लिये ही सगुण हो जाती हैं वैसे वास्तव में स्वयं आप त्रिगुण हैं। आप परब्रह्म के स्वरूप वाली नित्य और सनातनी हैं ॥८॥ आपका स्वरूप तेजोमय है और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही शरीर धारण करने वाली परमा

१२० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

श्रीकृष्णसुखसिद्धि

सम्पत्ति के स्वरूप वाली और असक्तों-की विपत्ति इस संसार में होती है ॥१४॥ आप पुण्य वालों की प्रीति के रूप वाली हैं और जो पापी हैं उनके लिये कलह का अंकुर हैं । समस्त जीवियों के लिये सर्वदा शश्वत् कर्मों से परिपूर्ण शक्ति हैं ॥१५॥ देवों के लिये अपने पद को प्रदान करने वाली हैं और धाता की भी कृपामयी धात्री हैं । समस्त देवों के हित के लिये सम्पूर्ण असुरों के विनाश करने वाली हैं ॥१६॥ आप योग निद्रा-योग रूपा-योगदात्री हैं जो कि योगियों को योग प्रदान किया करती हैं । आप सिद्धों को सिद्धियों के देने वाली हैं । आप सिद्धिश्च और सिद्धियों की योगिनी हैं ॥१७॥ आप माहेश्वरी-ब्राह्मणी-विष्णुमाया-वैष्णवी-भद्रों के प्रदान करने वाली-भद्रकाली और समस्त लोगों को भय के करने वाली हैं ॥१८॥ आप ग्राम-ग्राम में ग्राम देवी है और घर-घर में गृह देवी हैं । आप सत्पुरुषों की कीर्ति और प्रतिष्ठा हैं तथा असतों की निन्दा सर्वदा होती है ॥१९॥ आप महान युद्ध में महान दुष्टों के संहार करने वाली महामारी हैं । जो शिष्ट पुरुष हैं उनको माता की भांति आप रक्षा के स्वरूप वाली होती हैं ॥२०॥ आप सर्वदा ब्रह्मादि देवों की वन्दनीया-पूज्या और स्तुत हैं । आप ब्राह्मणों की ब्रह्मण्य रूप वाली और तपस्वियों की तपस्या के रूप वाली हैं ॥२१॥

विद्याविद्यावतांत्वञ्च बुद्धिर्बुद्धिमतांसताम् ।
 मेघास्मृतिस्वरूपाचप्रतिभाप्रतिभावताम् ॥२२॥
 राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी ।
 सृष्टिस्वरूपा सृष्टी त्वां रक्षारूपाच पालने ॥२३॥
 तथान्ते त्वांमहानारी विश्वस्यविश्व पूजिते ।
 कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी ॥२४॥
 दुरत्यया मे माया त्वां यया समाहितंजगत् ।
 ययामुग्धाहिविद्वांश्चमोक्षमार्गनपश्यति ॥२५॥

पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः ।
 श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्रसंशयः ।३०।
 राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले ।
 हिंस्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रं प्रमुच्यते ।३१।
 गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते ।
 स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः ३२।
 महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः ।
 विद्यावान् धनवांश्चैव सभवेन्नात्रसंशयः ।३३।

जो यक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो जो गलित कुष्ठ वाला-महान शूल
 वाला-महान ज्वर से युक्त हो वह एक वर्ष पर्यन्त इस देवी के स्तोत्र
 का श्रवण करने से तुरन्त ही रोग से मुक्त हो जाया करता है ।२९।
 पुत्र भेद में-प्रजा के भेद में और पत्नी के भेद में दुर्ग से इस स्तोत्र का
 एक मास तक श्रवण करने से अभीष्ट का लाभ करता है-इसमें कुछ
 भी संशय नहीं है ।३०। राज द्वार में-श्मशान में-महारण्य में-रणस्थल
 में और किसी हिंस्र जन्तु के समीप आने में इस स्तोत्र का श्रवण
 करने से वह भय से मुक्त हो जाता है ।३१। गृह दाह में-दावाग्नि में-
 दस्यु सेना से समन्वित होने में इस स्तोत्र के श्रवण मात्र से ही मुक्ति
 होती है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।३२। जो महा दरिद्री-महा मूर्ख
 हो वह इस स्तोत्र को एक वर्ष तक पाठ करे तो निश्चय ही विद्यावान्
 और धनवान् हो जाता है-इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ।३३।



किम् हे को कि म्नि वसम मागव का गार हे । ए दे सुवसे म्ने
भावे ॥ ११ ॥ गार हे कृदि-भूय प्रकृति वने का नीय भिनि भवयो
देवो मरेवती को प्रणाम करके फिर जय शब्द का उच्चारण कर
नारयो को भी नर वधा नारीवम को समस्तार करके देवै भान्तर
कनी का विचार लिखिव किम् गार हे । वन्देमा भव-प्रथम
देव मन्वसु म गास के जन्म के विषय से संस्कार रचिसे बाले

॥१०॥ गारियेयोनौगदौववदौ ॥१०॥
कथ तस्य पूरुः पूजा विवेच्य लिखेत् ॥

का सपदेया व कि ज्ञान कि वा विनिम्नय यः ॥११॥

कि वा त्वं यद्विवेचो वा कि तस्य व पराक्रमः ॥

शयनिषन्मय किवाऽसीवाकिपुनिसन्मय ॥१२॥

सवाय कस्य देवस्य कथजन्मनामः ॥

देवो क्व न प्रकारो लाम लदो भूय ॥१३॥

कथ ज्ञे प्रथम पाठेया वदे म्ने ॥

वज्रमवास्तु नमो सर्वमूर्ध्वमूर्ध्वम् ॥१४॥

कथना श्रीमिच्छामि गोपानामउपदेशम् ॥

सर्वदेवैर्मन्त्रिभिः सर्वैर्देवैर्देवैर्देवैः ॥१५॥

एवं प्रकृतिलेखे सर्वमूर्ध्वमूर्ध्वम् ॥

देवो मरेवतीञ्चैव तवो वामदोरेव ॥१६॥

नारयो नमस्तेव नरेव नरेव ॥

१४-गौरीशंकरमन्त्रप्रतिपादः ।

१४-गौरीशंकरमन्त्रप्रतिपादः

अभीष्ट और मूढ़ों के ज्ञान का वर्धन करने वाला है ॥२॥ हे ईश्वर ! अब मैं गणेश खण्ड के श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ । उस गणपति का जन्म तथा चरित मनुष्यों के लिये समस्त मङ्गलों का भी मङ्गल है ॥३॥ वह सुरों में श्रेष्ठ पार्वती के शुभ उदर में कैसे उत्पन्न हुये थे और उस पार्वती देवी ने ऐसे सुत का लाभ किस प्रकार से किया था ॥४॥ वह गणपति किस देव के अंश थे और उन ने कैसे जन्म का लाभ प्राप्त किया था ? यह योनि से जनन ग्रहण करने वाले थे या अयोनि सम्भव थे ? ॥५॥ उनका ब्रह्म तेज किस प्रकार का था और पराक्रम क्या था । उनकी तपस्या ज्ञान गरिभा और निर्मल यश क्या था ॥६॥ उनकी पहिले समस्त विश्वों में पूजा कैसे आरम्भ हुई थी ? जबकि जगत् के ईश ब्रह्म नारायण और शंभु स्थित थे ॥७॥

पुराणेषु निगूढञ्च तज्जन्म परिकीर्तितम् ।

कथं वा गजत्रक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः ॥८॥

एतत् सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम ।

सुविस्तीर्णं महाभाग तदतीव मनोहरम् ॥९॥

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।

पापसन्तापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१०॥

सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् ।

सुखदं मोक्षवीजञ्च पापमूलनिकृन्तनम् ॥११॥

दैत्यादितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा ।

देवी संहृत्य दैत्यौघान् दक्षकन्या बभूव ह ॥१२॥

सा च नाम्नासती देवीस्वामिनोनिन्दया पुरा ।

देहं संत्यज्य योगेन जाताशैलप्रियोदरे ॥१३॥

शङ्कराय ददौ ताञ्च पार्वतीं पर्वतो मुदा ।

तां गृहीत्वा महादेवो जगाम निर्जनं वनम् ॥१४॥

पुराणों में उनका जन्म बहुत ही निगूढ़ कहा गया है । यह

शिष्यो के समान मुख वाला एक दान वाला शौर महेन्द्र उदर वाला
 किशकप्रकार से हूँ शू ? ॥८॥ यह समस्त वृत्ताव आप कहिए ।
 मुझे इसके शरण करने का बड़ा भारी कर्तव्य होता है । हे महो-
 भाग ! यह सुनिश्चित है शौर अत्यन्त ही मन को हरण करने वाला
 सुन्दर है ॥९॥ शौ मरगण ने कहा-हे मारुद ! सुनो, मैं एक परम
 शक्तिरूप स्वभाव है जो पापी के संशय को हरण करने वाला
 शौर समूर्ण विद्या के विनाश करने वाला है ॥१०॥ समस्त मूर्खता
 का मार तथा सब मूर्खता का दाता सबकी श्रुति में मनोहर मुख
 देने वाला-मोक्ष का दीप शौर पापी के मूल का काट देने वाला है ।
 ॥११॥ देवी के शौर सबसे हूँ देवी के शिव के समूह से समुत्पन्न
 देवी ने देवी के समूहों का शौर कर दिया था शौर फिर वह
 दक्ष के यहाँ कन्या के रूप में उत्पन्न हुई थी ॥१२॥ उसका नाम
 सती था । उसने पढ़िले शपथ स्वामी की निन्दा से अपने देह का
 त्याग कर दिया था शौर फिर योग से द्विधावन की श्रिया के
 उदर था गई थी ॥१३॥ पर्वत राज द्विधावन ने उस पावनी की
 श्रावण शकर की दे दिया था । उनका पाणिपदणु करके शकर
 निजान बन में चले गये थे ॥१४॥

शय्या रतिकरी कंवा पृथक्-दन्तवर्षासु ॥

स ते नन्मदातीरे पुण्यानां तथा सहे ॥१५॥

सहस्रवृषभान् देवमानेन मारुद ।

सप्तोभयं यद्भार विपरीतविक परम ॥१६॥

वर्गाङ्गस्योमात्रेण कामेन मूर्च्छितः शिवः ।

मूर्च्छिता सा शिवस्वशाई वृद्धे न दिवाभिसम् ॥१७॥

हेमकारणवृक्षाकारे पृक्काकलरस्यैः ।

नानावृत्तवकसिद्धे अमररवनिमय्यै ॥१८॥

सुगन्धिकसुमान् न वापवा सुरभीकैः ।

शरीर सुखे सन सुखेन्यविवाजिते ॥१९॥

दृष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तांप्रापुःसुराःपराम् ।
 ब्रह्माणञ्चपुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम् ॥२०॥
 तं नत्वा कथयामास ब्रह्मावृत्तान्तमीप्सितम् ।
 संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिकायथा ॥२१॥

वहां नर्मदा के तट पर पुष्पों के उद्यान में पुष्पों और चन्दन से चर्चित रति करने वाली शय्या का निर्माण कराकर भगवान् शंकर ने उसके साथ रमण किया था ॥१५॥ हे नारद ! देवों के मान से एक सहस्र वर्ष पर्यन्त उन दोनों का विपरीतादिक परम् शृङ्गार हुआ था ॥१६॥ दुर्गा के श्रंग के स्पर्श मात्र से ही काम के द्वारा शिव मूर्च्छित हो गये थे और वह शिव के शरीर के स्पर्श से मूर्च्छित हो गई थी कि रात्रि दिन का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा था ॥१७॥ हंस और कारण्डव पक्षियों से समाकीर्ण (घिरा हुआ) तथा कोकिल की मधुर ध्वनि से पूर्ण विविध पुष्पों से शोभित-भ्रमरों की ध्वनि से सगन्धित वह बन था ॥१८॥ सुगन्धित पुष्पों से अक्त वायु से सुवासित अत्यन्त सुख देने वाला सब प्रकार के जन्तुओं से रहित उस बन में इस प्रकार से उन दोनों शिव पार्वती के शृंगार को देखकर देवगण बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे । वे सब ब्रह्मा को अपने साथ लेकर नारायण के आश्रम में गये थे ॥१९॥ २०॥ वहां नारायण को नमस्कार करके ब्रह्माजी ने अपना अभीप्सित वृत्तान्त उन से कह दिया था । सब देवता चित्र में लिखी हुई पुस्तिका की भाँति स्थित हो गये थे ॥२१॥

सहस्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन शङ्करः ।

रतौ रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह ॥२२॥

मैथुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर ।

किं भूतं भवितापत्यं तथ्यं कथितुमर्हसि ॥२३॥

पर चले गये थे और ब्रह्मा अपने आश्रम में चले गये थे ॥७॥ वहां पर ही पर्वत की श्रेणी पर बाहिर के भाग में समस्त सुर बहुत ही दुःखित मुख वाले भय से कातर हो गये थे । ८॥ इन्द्र कुबेर से कुबेर वरुण से वरुण वायु से वायु यम से यम अग्नि से अग्नि सूर्य से सूर्य चन्द्र से चन्द्रमा ईशान से इस प्रकार से शिव की रति के भङ्गन करने के कार्य में किसी तरह से शिव के शृंगार का भंग करो आपस में कह रहे थे ॥२६॥३०॥११॥

द्वारस्थितो वक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम् ॥३२॥

किङ्करोपि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते ।

जगदीश जगद्वीज भक्तानां भयभञ्जन ॥३३॥

हरिर्जगामेत्युक्त्वंवमाजगाम च भास्करः ।

उवाच भीतो द्वारस्थो भयात्तो वक्रचक्षुषा ॥३४॥

किङ्करोपि महादेव जगतां परिपालक ।

सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तुते ॥३५॥

इत्येवमुक्त्वा श्रोसूर्यः प्रजगाम भयात्ततः ।

आजगाम तथा चन्द्र उवाच वक्रकन्धरः ॥३६॥

द्वार पर स्थित होकर वक्रशिर वाला इन्द्र ने महेश्वर से कहा ॥३२॥ इन्द्र ने कहा— हे महादेव ! हे योगीश्वर ! आप क्या कर रहे हैं ? आपसे मेरा नमस्कार है । आपतो समस्त जगत् के ईश हैं, इस जगत् के बीज हैं और भक्तों के भय का भंजन करने वाले हैं ॥३३॥ इन्द्र यह कहकर चला गया था फिर वहां सूर्य आ गया था और वह भी डरा हुआ द्वार पर स्थित होकर भय से दुःखित होता हुआ तिरछी नजर से युक्त होकर बोला—सूर्य ने कहा—हे जगतां के परिपालन करने वाले ! हे महादेव ! आप क्या कर रहे हैं ? आप तो देवों में परम् श्रेष्ठ—महान् भाग वाले-पार्वती के स्वामी हैं । आपको मेरा नमस्कार है ॥३४॥३५॥ इतना ही कहकर सूर्य भी भय से वहां से शीघ्र चला गया था । इसके पश्चात् वहां चक्र कन्धरा वाला होकर चन्द्रमा आ गया था और बोला—॥३६॥

॥३६॥४८॥ फिर भय से आर्त्त और पुनः स्तुति करने को समुद्यत देवों को देखकर उन्होंने अपने सुख सम्भोग को तथा कण्ठ में संलग्न पार्वती को छोड़ दिया था ॥४१॥ उस समय रति क्रिया से उठते हुये त्रस्त और लज्जित महेश का वीर्य भूमि पर गिर पड़ा था, उससे स्कन्द हुये थे ॥४२॥ इस परम सुन्दर कथा को मैं फिर बाद में कहूँगा । इस समय स्कन्द के जन्म के प्रसङ्ग में जो वाञ्छित है उसका श्रवण करो ॥४३॥



४३ क्रीडाविरतेन शिवेन देवदर्शनम् ।

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान् ।
 पलायध्वमित्युवाच कृपया पार्वतीभयात् ॥१॥
 देवाः पलायिता भोता पार्वतीशापहेतुना ।
 ब्रह्माण्डसर्वसहर्ता चकम्पे पार्वतीभयात् ॥२॥
 तल्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान् ।
 समुत्थितं कोपवर्ह्निस्तम्भयामासदेहतः ॥३॥
 अद्य प्रभृतिं ते देवा व्यर्थवीर्या भवन्त्विति ।
 शशाप देवी तान्देवानतिरुष्टा बभूव ह ॥४॥
 ततः शिवः शिवां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् ।
 रुदन्तीं नम्रवदनां लिखन्तीं धरणीतलम् ॥५॥
 शिवस्तां दुःखितां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् ।
 हस्तेगृहीत्वा देवेशो वासयामासवक्षसि ॥६॥
 अतोव भीतः संत्रस्त उवाच मधुरं वचः ॥७॥

इस अध्याय में क्रीडा से विरत शिव के द्वारा देव दर्शन का निरूपण किया गया है । नारायण ने कहा—महादेव ने रति का त्याग

करके सापने दिखत देवगण को देखा था । वह पावती के भय से
 डगा कर भाग जायो—यह बोले थे ॥११॥ देवता लीय भी पावती
 के दाय के भय से डरे हूँ होकर भाग पडे थे । सपूणु ब्रह्माण्ड
 के सहेरकरने वाले शिव भी पावती के भय से काँप गये थे ॥१२॥
 सत्य (वाच्य) से उठकर जब दूर्गा न सूर्य को सापने न देखकर ली
 काँप की शक्तिन विषयत हूँ थी उसका जवन स्तम्भन कर दिया
 था ॥१३॥ भाव से डेकर वे सपत्त देवता व्यर्थ बीय वाले हो जावे—
 यह देवी ने उन देवी को साप दे दिया था थीर वह सपत्तन कल
 हो गई था ॥१४॥ इसके भयानकर शिव ने कोन से भाव नेगी वाली
 कदन करती हूँ नम मुँह से युक्त तथा भरणी तन को लिखती हूँ शिव
 को देखा था ॥१५॥ शिव ने इस प्रकार से भयानक हुँ शिव थीर काँप
 से रक्त नेगी वाली उसकी हृद्य से पकड़ कर फिर देवेय ने उसे बली
 देयत ने लगी लिया था । भयानक थीर थीर सपत्तन होकर शिव

सप्तसे भयुर वचन बोले—॥१०॥

कथ खेटी गिरिभूषकन्य धन्य मनोहे ।
 मम सीमायस्वप् व प्राणोपि धारते देवते ॥
 किन्तोऽपीड करिष्यामि वद मी जगदन्विके ॥११॥
 ब्रह्माण्डव हूँ लिखे किमसाध्यमिदोषयो ।
 भद्रो निरराय मा प्रसया मम सुन्दरि ॥१२॥
 देवादेवातदेशस्य शान्ति मं कर्तुमर्हसि ।
 स्वया युक्त शोकोऽहञ्च सर्वथा शिवदायक ॥१०॥
 स्वयान्वनाहो देवरायवर्जितोऽशिव सदा ।
 प्रकृतस्वञ्चर्षिदस्वशक्तिस्वञ्चसमादाया ॥११॥
 सिद्धस्वञ्च तद्योर्षिद शान्तिस्व शान्तिरेव व ।
 शिर्वज्यातया निदानाश्रयिरेभ्यो ॥१२॥
 सर्वपास्वल्पा व सर्ववीजस्वल्पिणी ।
 क्षिमतर्पुव वद वचः सान्धव सरस शिबे ॥१३॥

त्वत्कोपविपसंदग्धं तेन जीवय मां मृतम् ॥१४॥
 शङ्कर ने कहा— हे गिरि श्रेष्ठ की कन्ये ! हे कन्ये ! हे मान्ये !
 आप मेरे सौभाग्य के स्वरूप वाली हैं । हे प्राणों की अधिष्ठातृ देवते !
 हे जगदम्बिके ! आप मुझे बताओ, मैं क्या अभीष्ट है, उसे आपके
 लिये सम्पादन कर्तव्य ? ॥१५॥ हे ब्रह्माण्ड संघ निखिले ! यहां हम
 दोनों को क्या असाध्य है ? हे सुन्दरि । मैं तो अपराध से रहित हूँ ।
 मुझ पर आप प्रसन्न हो जाइये ॥१६॥ देवात् प्रज्ञात दोष वाले मेरी
 आप शान्ति करने के योग्य हैं । मैं तो तुम्हारे साथ होकर ही शिव
 हूँ और (मङ्गल) के प्रदान करने वाला हूँ ॥१७॥ तुम्हारे बिना तो
 ईश्वर एकेश्वर के तुल्य, सदा ही अशिव होता है । आप ही प्रकृति
 हैं—बुद्धि-शक्ति-क्षमा और दया भी आप हैं ॥१८॥ आप तुष्टि-मुष्टि
 शान्ति-क्षान्ति हैं । आप ही क्षुत्-द्याया-निद्रा-तन्द्रा श्रद्धा और सुरेश्वरी
 हैं ॥१९॥ आप सबके आधार स्वरूप वाली तथा सब वाज स्वरूप
 वाली हैं । हे शिवे ! अब स्मित के साथ सरस वचन बोलो ॥२०॥
 आपके कोप रूपी विप से मैं संदग्ध हूँ । इसलिये मधुर वचन द्वारा
 मृत मुझको जीवित करो ॥२१॥

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा कोपयुक्ता च पार्वती ।

उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता ॥१४॥

किन्वाहं कथयिष्यामि सर्वज्ञं सर्वरूपिणम् ।

आत्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहेष्ववस्थितम् ॥१५॥

कामिनी मानसं काममप्रज्ञं स्वामिनं वदेत् ।

सर्वेषां हृदयज्ञञ्च हृदीष्टं कथयामि किम् ॥१६॥

सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजनककारणम् ।

अकथ्यमपि सर्वासां तथापि कथयामि ते ॥१७॥

तद्भङ्गेन च यद्दुःखंतत्समंतास्ति च स्त्रियाः ।

कान्तानां कान्तविच्छेदः शोकः परमदारणः ॥१८॥

कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षोयमाणो दिने दिने ।

तथा कान्तं विना कान्ता क्षणा कान्ती क्षणे क्षणे ॥२०॥

धरुत के इस वचन का सुकर करण से उक्त पाठों के ही विरुद्ध
 मान हैदय से मधुर धवन शोभा ॥१५॥ पाठों से कहा—से मापसे
 क्या कहें । मापवा त्वय सर्वत्र धरुत सर्व कथा है । माप माप
 राम गुण काम धरुत सर्वके हेतु से सवास्त्रिय है ॥१६॥ जो किसी
 का कोई मन्त्र (बुद्धि रहित) स्वामी होता है वो उसको उसको
 कामिनी मन्त्र मन्त्रका अभिधात कहते हैं । मापवा सर्वके हैदय है
 धरुत हैदय के मापिच्छता देव है ऐसे मापसे से मन्त्र हैदय से स्थित
 मन्त्रिक की क्या कहें ॥१७॥ यह विषय ऐसा जो बहूत हो मापनीय
 है धरुत समस्त मापिया के लिये यह सज्जा जनक कारण है यह
 सब कथन के योग्य नहीं है वा भी से मापसे कहते हैं ॥१८॥
 उक्त सर्व के मन्त्र होने से जो कुछ होता है उसके समान स्त्री के
 लिये मन्त्र कीर्तु भी कुछ नहीं है । कालिया की मन्त्र काल का
 विरुद्ध परम शक्ति शोक होता है ॥१९॥ है काल । जिस तरह
 कल्प पत्र से चंद्रमा लिन क्षीयमाण होता है उस प्रकार से
 धरुत काल के काल क्षीण होता है ॥२०॥

शूलविकान्त कालवलातव्यापिनसंश्रित ।
 या स्त्री प्रविविदोनाचक्रावतनपर्युक्तम् ॥२१॥
 जन्मान्तरसंभव प्रणय शोभानसंभवं ।
 सदाशालावृक्ष परदे सं प्रद ॥ २१ ॥
 सिद्ध स्वामिनीशरथ स्वामिनिप्रथम ।
 ऊर्ध्वप्रथम कलागारि, मन्त्रन्यायकेवलम् ॥२३॥
 स्वाभा स्वशून स्वतरीणो गन्तुं जन्म लभेत् सर्वम् ।
 साधो स्त्री मन्त्रित्वा च स्वतः किरितासि ॥२४॥
 मन्त्रव्यापकसर्वसन्नापयति ॥

किमुपायं करिष्यामि वद योगीश्वरेश्वर ।
 उपायसिन्धो तपसांसर्वेषाञ्च व फलप्रद ॥
 इत्युत्वा पार्वतीदेवी नम्रवक्त्रा वभूव ह ॥२६॥
 प्रहस्य शङ्करोदेवो बोधयामास पार्वतीम् ।
 सत्पुत्रवीजं सुखदं सन्तापनाशकारणम् ॥२७॥
 मितं स्निग्धं सुखचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥-८॥

तीन लोकों के कान्त आपको अपना कान्त प्राप्त करके भी मेरे कोई पुत्र नहीं है । जो स्त्री पुत्र से विहीन होती है उसका सम्पूर्ण जीवन ही निरर्थक होता है ॥२१॥ तप और धन से समुत्पन्न पुष्प दूसरे जन्म में सुख देने वाला है किन्तु सद्दश मे समुत्पन्न पुत्र इस लोक और परलोक दोनों में सुख प्रदान करने वाला होता है ॥२२॥ सुपुत्र अपने स्वामी का ही अंश होता है अतः वह स्वामी के समान ही सुख प्रद भी हुआ करता है । जो कुपुत्र होता है वह कुल का अङ्गारा होता है जोकि केवल मन के ताप के लिये ही होता है ॥२३॥ स्वामी ही अपने एक अंश से अपनी स्त्रियों के गर्भ में निश्चाय ही जन्म प्राप्त किया करता है । वह साध्वी स्त्री मानृ तुल्या होती है जो निरन्तर हित के सम्पादन करने वाली होती है ॥२४॥ जो असाध्वी स्त्री होती है वह वैरी के तुल्य होती है और वह निरन्तर सन्ताप के देने वाली होती है । मुख से दुष्टा और योनि से दुष्टा स्त्री ही असाध्वी यहाँ पर कही गई है ॥२५॥ हे योगीश्वरेश्वर ! आप ही बतलाइये, मैं क्या उपाय करूँगी । हे उपायों के सागर ! आपतो समस्त तपों के फलों के प्रदान करने वाले हैं ॥२६॥ इस प्रकार से इतना कहकर पार्वती नीचे की ओर मुख करने वाली होती हुई चुप हो गई थीं । देव शङ्कर हंसकर पार्वती को समझाने लगे थे । सत्पुत्र का बीज सुख देने वाला और सन्ताप के नाश का कारण होता है ॥ ६॥-७॥ इसके अनन्तर शिव परिमित-स्निग्ध और प्रतिशुचिर कहने लगे थे ॥२८॥

॥ ॥ ज्ञानात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
हे भगवन् । यदि का साधना कर्तव्या ।
हे । त्वं साधने मत्तं मत्तं कर्मणो कर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
हे । त्वं साधने मत्तं मत्तं कर्मणो कर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
हे । त्वं साधने मत्तं मत्तं कर्मणो कर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥

साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥
साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥

साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥

॥ ॥ साधनात्कर्मविवेकात्कर्मकर्मणो ॥ ॥

यह व्रत महा ऋतोर बीज है, अपनी हार्दिक इच्छा को पूर्ण करने के लिये परम कल्प वृक्ष के तुल्य है—सुखद-पुण्यद-पुत्रद और अमस्त सम्पदाओं का देने वाला सार रूप है ॥१॥ जिस तरह नदियों में गंगा है और देवों में हरि हैं—वैष्णवों में मैं हूँ और हे प्रिय ! देवियों में आप हैं । आश्रमों में जैसे विप्र हैं और तीर्थों में पुष्कर है । पुष्पों में जिस तरह पारिजात का पुष्प है और पत्रों में तुलसी पत्र है । पुष्प प्रदान करने वाली तिमिपियों में जैसे एकदशती तिमि कही गई है और वारों में जैसे रविवार है शिवे ! पुष्प प्रद होता है ॥५॥६॥७॥

मासानां मार्गशीर्षश्च ऋतूनां माघवो यथा ।
 सन्वत्सरो वत्सराणां युगानाञ्च कृतं यथा । ८॥
 विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरुणां जननी यथा ।
 साध्वी पत्नी यथास्तानां विश्वस्तानां मनो यथा ६॥
 यथा घनानां रत्नञ्च प्रियाणाञ्च यथा पतिः ।
 यथा पुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पपादपः । १०॥
 चूतफलं फलानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा ।
 वृन्दावनं वनानाञ्च शतरूपाच योपिताम् । ११॥
 यथा काशी पुरीणाञ्च सूर्यस्तेजस्विनां यथा ।
 यथेन्दुःसुखदानाञ्च सुन्दराणाञ्च मन्मथः । १२॥
 शास्त्राणाञ्च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा ।
 हनुमान् वानराणाञ्च क्षेत्राणां ब्रह्मणाननम् । १३॥
 यशोदानां यथा विद्या कविताच मनोहरा ।
 आकाशो व्यापकानाञ्च ह्यङ्गानां लोचनं यथा । १४॥

समस्त मासों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में माघ व (वसन्त) जिस तरह है । वत्सरो में सन्वत्सर और युगों में कृत युग जिस प्रकार से श्रेष्ठ है ॥८॥ पूज्य वर्गों में जो विद्या के प्रदान करने वाला है वह श्रेष्ठ है गुरुओं में जननी सर्वोत्तम गुरु है । जैसे साध्वी पत्नी ही

जैसे विभवों में हरि की कथा का वैभव ही सर्वोत्तम होता है और और सुखों में हरि का चिन्तन करना ही परम श्रेष्ठ सुख है । जिस प्रकार से पुत्र के अंग का स्पर्श समस्त स्पर्शों में अधिक उत्तम होता है । हिंसकों में खल ही सबसे अधिक हिंसक होता है ॥१५॥ सम्पूर्ण प्रकार के पापों में मिथ्या कथन सबसे महान् पाप जिस प्रकार से होना है और पापियों में पुश्चाली का होना सबसे अधिक पापी का हो जाना है । पुण्यों में श्रेष्ठ सत्य है और तपों में जैसे सर्वश्रेष्ठ तप हरि के चरणों की सेवा है ॥१६॥ गन्वों में घृत श्रेष्ठतम है और तपस्वियों में सबसे महान् तपस्वी ब्रह्मा है । भक्ष्य वस्तुओं में सर्वोत्तम अमृत है तथा शस्यों में धान्य सर्वश्रेष्ठ होता है ॥१७॥ पुण्यदों में सर्वश्रेष्ठ जल है तथा शुद्धों में अग्नि श्रेष्ठ शुद्ध है । तेजसों में सुवर्ण सर्वोत्तम होता है और मिष्ठपदार्थों में श्रेष्ठ प्रिय भाषण है ॥१८॥ पक्षियों में गरुड और हाथियों में इन्द्र को वाहन ऐरावत तथा योगियों में कुमार एवं देवपियों में नारद परम श्रेष्ठ हैं ॥१९॥ जिस प्रकार से गन्धर्वों में चित्ररथ बुद्धिमानों में बृहस्पति-सुकवियों में शुक्र और काव्यों में पुराण सर्वोत्तम एवं शिरोमणि हैं ॥२०॥ स्रोतलों में समुद्र और क्षमा वारियों में पृथ्वी-लाभों में मुक्ति और सम्पदाओं में ऋक्ति सर्व शिरोमणि होते हैं ॥२१॥

पवित्राणां वैष्णवाश्च वर्णानां प्रणवो यथा ।

विष्णुमन्त्रश्चामन्त्राणां वोजानां प्रकृतिर्यथा ॥२२॥

विदुषाञ्च यथा वाणोगायत्री छन्दसां यथा ।

यथा कुबेरो यक्षाणां सर्पाणां त्रिसुक्तिर्यथा ॥२३॥

यथा पिता ते शैलानां गवाञ्च सुरभिर्यथा ।

वेदानां सामवेदश्च तृणानाञ्च यथा कुशः ॥२४॥

सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मन्त्रश्च शीघ्रगाभिनाम् ।

अक्षराणामकारश्च हितैपिणां पिता यथा ॥२५॥

है-परी सहेरु है ॥२५॥ आलम म-यां म-परी म विर्या
 पुव विर के पादेन बाली म विर के मयम म-य कोई विरवे नरी होरा
 म मय है पशरी म अकर २२ मय व, म, यहे परम अरु है
 विर वरु मय वलम मुबदा नी होली है तथा शीष मयन करने बाली
 म कुय सवलिम होला है ॥२६॥ सुख के प्रदान करने बाली म लक्ष्मी
 मीमी म सुदिम परम अरु करी गई है । वरी म साम वेद श्रीर युगो
 है ॥२७॥ है देव , वीने म आफके विर विमिल महेरु है तथा
 (सरधरी) अरु, म गायत्री-धारी म ऊँर श्रीर अर्पा म वार्युिक अरु
 वीनी म अकलि वसे सहेरु उवा मयन है ॥२८॥ विरानी म वार्यो
 वार्यो म यणेव सहेरु है । म-यां म विर्या का मय अरुवम है श्रीर
 विर प्रकर से परिये म वृणव सवे अयिक पवित्र होवे है तथा

वनी परसेवनमस्तु-पुर्विम-कीर्तिम-सहे ॥३०॥

वनीरुयय श्रीकृणो सवूपा वार्युवपदः ।

संसारुव वृवसे ववादेव मविपुति ॥३१॥

अव ऊँर महेमामा विरु लीकेपु वृलमम ।

संसारु वया कृणो वलना पुणक मया ॥३०॥

सवार्थः संसिध संवोविसवदः

मोविरावामरुदी धनिना लक्ष्मी मया ।

वसोदेव-वपयारुणी वकारुणो-वसुदेवम ॥३१॥

पुलिददवमधैना दारुणोदधिविधया ।

मयुदेवमदिदेवना देवामो-ववलिधया ॥३२॥

मदेनिवरोदेव स्थैलना सुक्षमाणोपरमायिकः ।

वलनाव मयाशक्तिरुदशक्तिमवेषया ॥३३॥

मया वानमिन्द्रणो मन्दानिदववेषया ॥

ववृपदानाव्वास्ती मानवी वीविनायया ॥३४॥

दालयामय मन्नाणी पवीना विरुपञ्चरः ।

पञ्जर चतुष्पादों में सिंह और जीव धारियों में मानव-श्रेष्ठ होता है ॥२६॥ इन्द्रियों में सर्व प्रधान स्वान्त (मन) है और रोगों में मन्दाग्नि प्रधान रोग है । बलियों में शक्ति जैसे श्रेष्ठ है तथा शक्तिमानों में अहं सर्वश्रेष्ठ है ॥२७॥ स्थूलों में महान् विराट् सर्व प्रधान होता है । तथा सूक्ष्मों में परमाणु सबसे अधिक सूक्ष्म है । देवों में इन्द्र और दैत्यों में उत्तम एवं प्रधान राजा बलि होता है ॥२८॥ साधु पुरुषों में प्रह्लाद और दाताश्रीं में सर्वश्रेष्ठ दधीचि मुनि हैं जिसने प्राणदान दिया था । अश्वों में ब्रह्माश्व प्रधान है और चक्रों में सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन चक्र होता है ॥२९॥ मनुष्यों में सर्व शिरोमणि मयीदा के पूर्ण पालक राजा रामचन्द्र हैं और धनुष धारियों में सर्व शिरोमणि लक्ष्मण हैं । सबके आधार-सबके सेव्य-सबके बीजरूप-सब कुछ प्रदान करने वाले और सबके सार स्वरूप जिस प्रकार से कृष्ण है उसी प्रकार से यह पुण्यक नाम वाला व्रत होता है ॥३०॥ हे महा भागे ! इस व्रत को आप करो । यह व्रत तीनों लोकों में अति दुर्लभ है । इस व्रत से ही सबका सार स्वरूप तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगा ॥३१॥ इस व्रत के द्वारा आराधना करने के योग्य श्रीकृष्ण ही हैं जो कि सबको वाञ्छित फल प्रदान करने वाले हैं जिनके सेवन करने से मनुष्य अपने करोड़ों पितृगण के सहित मुक्त हो जाया करता है ॥३२॥

हरिमन्त्रं गृहीत्वाच हरिसेवां करोति यः ।

भारते जन्मसफल स्वात्मनः स करोति च ॥३३॥

उद्धृत्य कोटिपुरुषान् वैकुण्ठं याति निश्चितम् ।

श्रीकृष्णपार्श्वे भूत्वा सुखंतत्रैवमोदते ॥३४॥

सहोदरान्स्वभृत्यांश्च सः वन्धून्सहचारिणम् ।

स्वास्त्रियञ्च समुद्धृत्य भक्तो याति हरेः परम् ॥३५॥

तस्माद् गृहाण गिरिजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम् ।

जामन्त्रं अतैतन्न पितृणां मुक्तिकारणम् ॥३६॥

४८-स्तवप्रीतेन कृष्णेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रानञ्च

पार्वतीस्तवनं श्रुत्वा श्रीकृष्णः कृष्णानिधिः ।
 स्वरूपं दर्शयामास सर्वादृश्यं सुदुर्लभम् । १।
 स्तुत्वा देवी ध्यानलग्ना कृष्णैकतानमानसा ।
 ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सारमोहनम् । २।
 सद्रत्नसारनिर्माणे होरकेण परिष्कृते ।
 युक्ते माणिक्यमालाभी रत्नपूर्णो मनोरथे । ३।
 वह्निसंशुद्धपीतांशुधरं वंशीकरं परम् ।
 वनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम् । ४।
 किशोरवयसं वेशविचित्रं चन्दनाङ्कितम् ।
 चाहस्मितास्यमाढयं तच्छारदेन्दुविनिन्दकम् । ५।
 मालतीमाल्यसंयुक्तमयूरपुच्छचूडकम् ।
 गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम् । ६।
 कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ।
 अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम् । ७।

इस अध्याय में स्तव से प्रसन्न कृष्ण के द्वारा पार्वती के लिये अपने रूपा का दर्शन और वरदान प्रदान करने का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा — पार्वती के स्तवन का श्रवण कर कृष्ण के निधि श्रीकृष्ण ने सबके न देखने के योग्य अति दुर्लभ अपना स्वरूप पार्वती को दिखा दिया था अर्थात् साक्षात् रूपसे पार्वती के सामने आकर दर्शन दिया था ॥ १ ॥ तब देवी ने ध्यान में संलग्न होकर कृष्ण में ही एक नाम मनवाली पार्वती ने उनकी स्तुति की थी और तेजों के मध्य में सार मोहने स्वरूप का दर्शन किया था ॥ १ ॥ रत्नों में स्तर से

कर्षि परकीय रत्न के द्वारा सिद्धि प्राप्त होये से सम्मानित
 और माणिक्य की माताओं से परिष्कृत (सजाये हुए) मनोरथ में
 विराजमान हूँ ॥ श्रीकृष्ण का स्वल्प भक्ति के समान श्रेष्ठ
 पौरुष वर प्राप्त करने वाला शेष में यथा विवेक हुए जैसे वन माना
 धारण करने वाले-शमशान्त से युक्त और रत्नों के द्वारा विभिन्न
 माणिक्य से श्रेष्ठ हूँ ॥ उनको उस समय किशोर भवनेवा श्री-
 विधिव देश वाले-वन्दन से श्रेष्ठ सुन्दर रिपय से युक्त मुख वाले जो
 कि धारकाशीन वर की भी परोक्षित करने वाला या श्रीकृष्ण का सुन्दर
 स्वल्प पार्श्वी न देखे या ॥ १५ ॥ मातृवी वन के पूर्ण की माताओं
 से युक्त और और की भक्ति से धारण करने वाले-गोपी की
 शङ्काओं से परिष्कृत और रोषा की वक्षस्वत में धारण करने से
 धर्म लज्जवल स्वल्प वाले श्रीकृष्ण दिव्य स्वल्प या ॥ १६ ॥ पार्श्वी
 श्रीकृष्ण का स्वल्प करोडी कापदेवी के लक्षण की लीला का
 धाम-पति महादेव-परम श्रेष्ठ सबको दंड और भक्ती पर श्रेष्ठ रहे करने

बाला देवा या ॥ ७ ॥

देवी रूप रूपवती एवं सद्गुरुकेपकम् ।
 भवता वरदायामसि वर संपाद्य लक्ष्मणम् ॥
 वर देवता वरेशसि यजामसि वासुदेवम् ।
 वरदायाम्पुत्र सुन्दरयश्च लक्ष्मणोऽप्ययम् ॥
 किमार वीर्यवती तं देवा देव्यं दिगम्बरम् ।
 दक्षिणरूपम तत्र प्रहृष्टाय केषाविवम् ॥ १० ॥
 वासुदेव्यादृश्यादिगिरिनिवाशिनि व ।
 सुवर्णोऽसि वीर्यवान्स्वस्तीव्रवन्दितः ॥ ११ ॥
 धाराणोऽसि भोजयामसि देवाश्च पशुवस्त्रिणा ।
 शङ्करं वरदायामसि करयामसि मङ्गलम् ।
 सुवर्णं वरदायामसि करयामसि मङ्गलम् ॥ १२ ॥
 सुवर्णं वरदायामसि करयामसि मङ्गलम् ॥ १३ ॥

व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता ।

सर्वाश्च भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह ।१४।

ऐसे श्रीकृष्ण के स्वरूप को देखकर रूपवती पार्वती देवी ने उन्हीं के अनुरूप अपना पुत्र मन से वर चाहा था और उसी क्षण में ऐसा ही वरदान प्राप्त कर लिया था ॥८॥ वरेश श्रीकृष्ण ने ऐसा ही वर देकर जो-जो भी मन में इच्छित था और देवों के लिये अभीष्ट वर देकर उनका वह तेज वही अन्तर्धान हो गया था ॥९॥ देवों ने दिगम्बर और निरुपम कुमार का देवी के लिये बोध कराकर जोकि परम प्रहृष्ट थी, वहाँ कृपा से युक्त होकर उन्होंने कुमार को दे दिया था ॥१०॥ उस समय दुर्गा देवी ने विविध रत्नों का दान ब्राह्मणों को दिया था और भिकारियों को-बन्धियों को भी विश्वनन्दिता देवी ने सुवर्ण का दान प्रदान किया था ॥११॥ उस समय देवी ने ब्राह्मणों को-देवों को और पर्वतों को भोजन कराया था । तथा अत्युत्तम उपहारों से उनने भगवान् शंकर की पूजा की थी ॥१२॥ उस परम मंगल के अवसर पर देवी पार्वती ने दुन्दुभि वजवाई थी और बहुत सा मंगलोत्सव कराया था । तथा हरि का सम्बन्धी संगीत भी कराया था ॥१३॥ इस प्रकार से उस दुर्गा देवी ने इस पुण्यक व्रत को समाप्त किया था तथा स्मित से युक्त होकर दान दिये थे एवं सबको भोजन कराके फिर स्वयं भी अपने परम पूज्य स्वामी भगवान् शंकर के साथ उन्होंने भोजन किया था ॥१४॥

ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ।

क्रमात् प्रदाय सर्वेभ्योबुभुजेतेन कौतुकात्

पय फेननिभां शय्यां रम्यां सद्रत्ननिर्मिताम् ।

पुष्पचन्दनसयुक्तां कस्तूरीकुङ्कुमान्विताम्

रहसि स्वामिना साद्धं सुत्वाप परमेश्वरी ।१६।

केलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने ।

सुगन्धिकुसुमाक्तेन वायुना सुरभीकृते ।१७।

शंकर ने उससे कहा—हे विप्रर्षे ! हे वेदों के वेत्ताओं में प्रवर ! यह बताओ कि आपका घर कहां पर है ? आपका नाम क्या है ? मैं बहुत ही शीघ्र यह सब जानना चाहता हूँ ॥३२॥ पार्वती ने कहा—हे विप्र ! आप कहां से आये हैं जोकि इस समय यहां मेरे सौभाग्य से आकर उपस्थित हो गये हैं ? मेरा आज जन्म सफल हो गया है कि मेरे घर पर एक ब्राह्मण अतिथि आप आगये हैं ॥३३॥ जिसने अपने द्वार पर आये हुए अतिथि की पूजा करली है उसने तीनों लोकों की पूजा करली है । हे द्विज ! वहीं पर देवगण ब्राह्मण और गुरु वर्ग सब स्थित रहा करते हैं । समस्त तीर्थ अतिथि के चरणों में निरन्तर मिश्रित रूप से स्थित रहा करते हैं । गृही उसके चरणों के घात जल से मिश्रित तीर्थों का लाभ किया करता है ॥३४॥३५॥

सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।

अतिथिः पूजितोयेन स्वात्मशक्त्या यथोचितम् ॥३६॥

महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले ।

अतिथिः पूजितो येने भारते भक्तिपूर्वकम् ॥३७॥

नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानिचयानिच ।

अन्येवातिथिसेवायाःकलां नार्हन्तिपोडशीम् ॥३८॥

अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्त्तते ।

पितृदेवाग्नयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥३९॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

तानि सर्वाणि लभते नाऽभ्यर्च्यतिथिमीप्सितम् ॥४०॥

जिसने अपनी शक्ति से अतिथि की पूजा यथा विधि करली है वह समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका है और सभी यज्ञों में दीक्षित भी हो गया है । उस अतिथि के सत्कार करने वाले ने इस भूतल में महादान पूर्ण कर लिये हैं जिसने इस भारत में विधि के साथ भक्ति पूर्वक अपने द्वार पर आये हुए अतिथि की पूजा की है ॥३६॥३७॥

शशिणे न कदाहै वेदस्य । आष ती स्वयं वेदां को मंत्रं अन्वये नरुह

धर्मपुत्राश्च वेदास्यै वीर्यवर्जो धनमाप्ति ॥१६॥

शर्मः शिष्यश्च पौत्रश्च वीर्यवर्जः ।

स्वस्यै मारुः सपरनीच पुत्रमात्युःनदापिका ॥१७॥

गिर्यन्तगामुधायी स्वमदाभीतिर् । स्वस्यै ।

कामदासाच वेदाक नराणां पितरः स्वस्यै ॥१८॥

विद्यादाताऽप्यदात्तव भयनात्तव नमद ।

पुत्रः पश्चात्तव सात्त्विक कर्त्तव्यो वेदवादिभिः ॥१९॥

साताः पश्चात्तवः प्रीतिमास्यो विद्यया स्वस्यै ।

दत्तवाप्तिस्यै वस्तिनं वीर्यवर्जं दत्तमाप्तिव ॥२०॥

सुखी तव पुत्रोऽहम्भु मा पुत्रपितृभिः ।

नानाविध मिष्टमिष्ट शोक्तं श्रेयं समागतः ॥२१॥

शुभं सुखतया सर्वमिष्टमिष्टं समाहितम् ।

दास्यसि मयं सर्वं त्वामद्य मन्त्रम सफलं कुरु ॥२२॥

शुभमिच्छसि सि कश्चिन्नुत्तमं सुखं सुखं भवम् ।

मनोरथोपदेयं शोभमिच्छसि मानव ॥२३॥

व्याधियुक्तो निरदितो यदा वाऽनशनयति ।

क्षीयति तदा पीडितोमातृवचनञ्च श्रोतव्यम् ॥२४॥

जनसि वेदान वेदो वेदाकं कुरुपजनम् ।

अथ वि शिष्य को पूजा से वह महे पण्य का शय ही जाता है ॥२०॥

जनको शीघ्र शिष्य को शर्वना करने से तर्क्य व भी नही भोगा है

सो न जाया कर्त्त है ॥२१॥ जो भी कोई शिष्य देखा शिष्य पण्य है

है तो उसके पीछे पूर्व-देव-भजन शीर गुणयोग भी सब शर्त्तव्य है

है ॥२२॥ जिसके घर से विना पूजा हुआ शिष्य शिष्य बन जाता

वे सही शिष्य को सेवा की सोलहवीं कला के भी योग्य नहीं है

अन्य शनक प्रकार के पूज्य जो कि वेदा से कहें गये है अथवा अन्य है

जानती हैं अतः जो वेद में कहा है उसी पूजन को करो । हे माता ! मैं भूख और प्यास से पीड़ित हूँ । श्रुति में वचन सुना है कि व्याधि से युक्त विना आहार वाला अथवा अनशन व्रत वाला जब होता है तो मानव मनोरथ से उपहार को खाने की इच्छा करता है । १४१।६-१। पार्वती ने कहा—हे विप्र ! आप क्या खाना चाहते हैं ? यदि वह तीन लोक में भी दुर्लभ होगा तो भी मैं आपको दूंगी । आज आप मेरा जन्म सफल करिए ॥४३॥ ब्राह्मण ने कहा सुन्दर व्रत वाली आपने अपने इस व्रत में समस्त उपहार समाहृत किये हैं जोकि अनेक प्रकार के हैं उन्हें ही जो मिष्ट हैं और इष्ट भी हैं मैं सुनकर भोजन करने को आगया हूँ ॥४४॥ हे सुव्रते ! मैं आपका पुत्र हूँ । अब सबसे पूर्व मेरा ही पूजा आप करेंगी और उस पूजा में मिष्ट पदार्थ जोकि त्रिलोक्य में दुर्लभ हो उन्हें मुझे समर्पित करेंगी । ४ । पिता तो पाँच प्रकार के बताये गये हैं किन्तु माताएँ अनेक प्रकार की कही गयीं हैं । हे साध्वि ! पुत्र भी पाँच तरह का कहा गया है जोकि वेद वादियों के द्वारा कहा गया है । १५।४६। विद्या के दान करने वाला-अन्न के दान वाला-भय से रक्षा करने वाला-जन्म देने वाला और वह जो अपनी कन्या का दान करता है । ये मनुष्यों के पाँच प्रकार के पिता वेदों में कहे गये हैं । १७। गुरु की पत्नी-गर्भधारण करने वाली-स्तन का दूध पिलाने वाली-पिता की वहिन-माता की वहिन माता की सपत्नी-पुत्र भार्या-अन्न देने वाली ये माताएँ ह । १८ मृत्यु-शिष्य-पोष्य-वीर्य से उत्पन्न-शरण में आया हुआ ये चार वर्ग पुत्र हैं तथा जो अपने वीर्य से समुत्पन्न होता है वह पिता के वन का भागी होता है ॥४९॥

क्षुत्तृङ्म्यापीडितो मातवृद्धोऽहं शरणागतः ।

साम्प्रततव वन्ध्याया अनाथः पुत्रएवच । १५०।

पिष्टकं परमान्नञ्च सुपक्वानि फलानि च ।

नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भूतानि च । १५१।

रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम् ।
 वह्निशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम् ॥१७॥
 सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरौ भक्तिं दृढां सति ।
 हरिप्रिया हरेः शक्तिस्त्वमेव सर्वदा सदा ॥१८॥
 ज्ञानं मृत्युञ्जयं नाम दातृशक्तिं सुखप्रदाम् ।
 सर्वसिद्धिञ्च किं मातरदेयं स्वसुताय च ॥१९॥
 मनः सुनिर्मलं कृत्वा धर्मं तपसि सन्ततम् ।
 श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके ॥२०॥
 स्वकाभात् कुर्वते कर्म कर्मणो भोग एव च ।
 भोगौ शुभाशुभौ ज्ञेयौ तौ हेतू सुखदुःखयोः ॥२१॥
 दुःखं न कम्पाद्भवति सुखं वा जगदम्बिके ।
 सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुधः ॥२२॥
 कर्म निर्मूलयन्त्येव सन्तो हि सततं मुदा ।
 हरिभावनबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गतः ॥२३॥

मुझे आप परमरम्य रत्नों से निमित्त एकसिंहासन दो-रत्नों के
 भूषण और अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र जो सुन्दर हों एवं दुर्लभ हों
 उनको मुझे प्रदान करेंगी ॥१७॥ हे सति ! हरिका मन्त्र सुदुर्लभ है
 और हरि में दृढ़ भक्ति सुदुर्लभ होती है । आपतो हरि की प्रिया और
 हरि की शक्ति साक्षात् सदा स्वयं ही है ॥१८॥ मृत्युञ्जय नाम वाला
 ज्ञान-सुख प्रदा दातृशक्ति और आप सर्व सिद्धि स्वरूपिणी हैं । हे
 माता ! माता आपको अपने पुत्र के लिये क्या अदेय है अर्थात् कुछ
 भी अदेय नहीं है ॥१९॥ मन को सुनिर्मल करके श्रेष्ठ धर्म में-तप में
 निरन्तर सब कुछ कलंगा जन्म हेतुक काम में नहीं ॥२०॥ मानव
 अपने काम से कर्म करता है और भोग कर्म का ही होता है । भोग
 शुभ और अशुभ दो प्रकार का होता है । ये दोनों ही सुख और दुःख
 के हेतु होते हैं ॥२१॥ हे जगदम्बिके ! किससे दुःख नहीं होता है अथवा

हैं और कथा को कहते हैं तथा अपनी इच्छा से आनन्द पूर्वक जन्म का लाभ किया करते हैं । १६७। ऐसे परम पवित्र भक्तगण अपनी लीला से तीर्थों को पवित्र किया करते हैं । वे जहाँ पर पुण्यक्षेत्र में सेवा के लिये और पर-उपकार के लिये भ्रमण किया करते हैं । १६८। वैष्णव गण के चरण स्पर्श से यह बसुन्धरा तुरन्त ही पवित्र हो जाती है जहाँ कि तीर्थ में वे गोदोहन मात्र सनय तक ही निवास करते हैं । १६९। नुरु के मुख से सुना हुआ विष्णु मन्त्र जिसके अन्दर प्रवेश करता है उस वैष्णव को पुरावेत्त विद्वान तीर्थ पूत कहते हैं । ७०।

पुरुषाणां शतं पूर्वमुद्धरन्ति शतं परम् ।

लीलया भारते भक्त्या सोदरान्मातरं तथा । ७१।

मातामहानां पुरुषान् दशपूर्वान् दशपरान् ।

मातुः प्रसूमुद्धरन्ति दारुणात् यमताडनात् । ७२।

भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये ।

ते याताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः । ७३।

न लिप्ताः पातके भक्ताः सन्ततं हरिमानसाः ।

यथाग्नयः सर्वभक्ष्या यथाद्रव्येषु वायवः । ७४।

त्रिकोटि जन्मनोजन्तुः प्राप्नोतिजन्ममानवम् ।

प्राप्नोतिभक्तसङ्गं स मानुषेकोटिजन्मनः । ७५।

भक्तसङ्गात् भवेत् भक्तेरङ्कुरो जीविनः सति ।

अभक्तदर्शनादेव सच प्राप्नोतिशुष्कताम् । ७६।

पुनः प्रफुल्लतां याति वैष्णवालापमात्रतः ।

अङ्कुरश्चाविनाशी च वर्द्धते प्रतिजन्मनि । ७७।

ऐसे महापुरुष भक्त पहिले और आगे होने वाले सौ-सौ पुरुषों का उद्धार कर देते हैं । भारत में वे अपनी लीला से ही सगे भाइयों और माता का उद्धार कर देते हैं । ७१। माता यह के दशपूर्व और दश पर-पुरुषों का उद्धार कर देते हैं । माता को जननी को दारुण यम की

राजा से उद्वेग कर डैले है १०१। बी मानव भक्ती के दर्शन तथा मानव की मान कर डैले है बीर भव प्रकार के यज्ञों की दीक्षा प्राप्त करने पर मानव का नाम क्रिया करने है १०२। भक्त योगी का मन निरन्तर हृष्टि के कारण ही मलयन रहता है तथा: वे भी ही पातकों से निवृत्त होते हैं। निम्न वरुण भक्ति प्रवर्ण करत वाला होता है बीर वर पर श्रेष्ठ भी मानव क्रिया की नहीं होता है बीर वीरु इत्यादि पर डैले है उदाहरण यह है १०४। बीर करीब जा भी के मन्दर पर ब्रह्म मानव का जन्म प्रदेण करता है। इस मानव जीवन में ही कौटुम्बिक के मानव वरुण भक्ती का भाग पाला है १०५। भक्तों के अर्थ से भक्ति का अर्थ जीव के हृदय में उदय हुआ करता है। है प्रति! वह अर्जुन अशक्तों के दर्शन से ही युक्तता की प्राप्ति करता है। ७६। वरुणों के साथ मानव भाग से ही वरुण अर्जुन परः प्रकलता की प्राप्ति कर लेता है। परु अर्जुन भक्तिवादी होता है बीर

नन्तरि ब्रह्मभक्त्यै प्रतिवृत्त्य कल भक्ति ॥७७॥
परिणामे भक्तिव्याके पददुष्ट मयुङ्क्ते ॥७८॥
महति प्रत्ये मीने न भवेत्तस्म निवृत्तम् ।
सर्वमुष्टेभ्य सप्तद्वि शक्तिविकल्पे वक्तव्यः ॥७९॥
वैश्यानां त्रयणो मन्त्रिणं वैद्विममिक्कं भवत ।
न भवेत्स्त्रियुधिपतिवत्तुव त्रयुमामले त्रयविति ॥८०॥
वन्दनं लोक सभायुं त्तुवतुवतुवतुवम् ।
सर्वपा कर्तव्यो त्व निवृत्तपु समाविता ॥८१॥
शुभेन त्पुनः श्रीकृष्ण कल्पे त्पुनः त्पुनः त्पुनः ॥८२॥
केवाच-वृत्तिवर्णनाय वाचक्ये त्रयः ॥

तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः स वभूव ह ।

ददर्श गेहशिखरं प्रसूतो बालको यथा ।८४।

हे सति ! इस तरह बढ़े हुए इस भक्ति के वृक्ष का फल हरि का दास्य भाव होता है । जब यह भक्ति पाक के परिणाम होने पर वह फिर हरि का पार्षद हो जाता है ।७८। उसका महान् प्रलय में भी नाश निश्चित रूप से नहीं होता है जबकि समस्त सृष्टि का संहार होता है उस में ब्रह्मा के ब्रह्म लोक का भी नाश हो जाया करता है ।७९। हे अम्बिके ! उस नारायण में भक्ति मुझे आप दीजिए । हे विष्णुमाये ! आपकी कृपा के बिना विष्णु में भक्ति नहीं हुआ करती है ।८०। विष्णु की भक्ति वाले को लोक की शिक्षा के लिये अपना तप-आपका पूजन इन सबके फलों को देने वाली नित्य रूप से संयुत सनातनी आप ही हैं ।८१। गरुड के रूप वाले श्रीकृष्ण कल्प-कला में आपके पुत्र होंगे जोकि इसी समय तुम्हारी गोद में आगया है-इतना कहकर वह अन्तर्धान हो गया था ।८२। ईश ने अपना अन्तर्धान किया था और बाल रूप धारण करके पार्वती की शय्या पर मन्दिर के अन्दर स्थित होने के लिये चले गये थे ॥८३॥ उस शय्या में जो शिव का वीर्य पड़ा हुआ था उसमें वह मिश्रित हो गया था । जिस तरह कोई प्रसूत बालक हो वैसे ही गेह के शिखर को उसने देखा था ॥८४॥

शुद्धचम्पकवर्णाभिः कोटिचन्द्रसमप्रभः ।

सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षुरश्मिविवर्द्धकः ।८५।

अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः ।

मुखं निरुपमं विभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ।८६।

सुन्दरे लोचने विभ्रत्त्वारुपद्मविनिन्दके ।

श्रीष्ठाधरपुटं विभ्रत् पत्रवविम्बविनिन्दकम् ।८७।

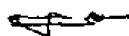
कपालञ्च कपोलञ्च परमं सुमनोहरम् ।

नासाग्रं रुचिरं विभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम् ।८८।

क्षयिर्मुःमनसोरेपः प्रपणमावर्णितः ॥१॥
 शिव शोच सर्मितो वाह्यो न्वाशु कुरु ।
 हे शिव शोच सर्मितो वाह्यो न्वाशु कुरु ॥१॥
 अथ विपः शोचिषु वव गतोसि शोचिषु ।
 वाह्यो न्वाशु कुरु वव गतोसि शोचिषु ॥१॥
 हे शोचिषु अथ शोचिषु वव गतोसि ॥१॥

शोचिषु न्वाशु कुरु ॥१॥

४४-शोचिषु न्वाशु कुरु



पुरी की देपर देपर कुरुवा देमा सो रतो या ॥२६॥
 करने वाला था । जोकि वष सत्रय परम सुन्दर शोचिषु में अपने शोच-
 का अथ भोग था । यह शोचिषु में विषयम उन्नतरीर के पारुण्य
 मजोरु दे । गुरु की शोच से भी कही शक्ति सुन्दर देसकी शक्ति
 सुपर थे ॥२७॥ देव नवजाल शिव के कपाल शीर कपीन वरुव दे
 वाला था । एक देव शिव के फन के समान रव देसकी शोच शीर
 सुन्दर पया की विनिन्दव करने वाले सुन्दर देसकी शोचिषु करने
 के वन्दमा की पराजित करने वाला विषयम सुन्दर था ॥२८॥ यह
 शोचिषु की शोच से मजोरु करने वाला था । देसकी सुष शोच काल
 देव शोच का शीर शोचन सुन्दर था शोच का मदेव की शोचिषु
 देस या शोचिषु शोचिषु का वन्द करने वाला था ॥२९॥
 यह शोचिषु शोचिषु के शोच था । शोच शोच के शोचिषु
 देस शोच की शोच शोच के शोचिषु का शोचिषु शोचिषु शोचिषु
 शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु
 शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु शोचिषु

अगृहीत्वा गृहात् पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वर ।
 यदि याति क्षुधार्त्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा ॥४॥
 पितरस्तन्न गृह्णन्ति पिण्डदानञ्च तर्पणम् ।
 तस्याहुतिं न गृह्णन्ति वद्विः पुष्पं जलं सुराः ॥५॥
 हव्यं पुष्पं जलं द्रव्यमगुचेश्च सुरासमम् ।
 अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम् ॥६॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मभूवाशरीरिणी ।
 कंबल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुश्राव शुचानुरा ॥७॥
 शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे ।
 कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम् ॥८॥
 सुपुण्यकव्रततरोः फलहृषं सनातनम् ।
 यत्तेजो योगिनः शश्वत् ध्यायन्ते सन्ततं मुदा ॥९॥

इस अध्याय में हरि के तिरोहित हो जाने पर पार्वती के द्वारा ब्राह्मण के अन्वेपण का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा— हे मुने ! हरि के तिरोहित हो जाने पर उस समय दुर्गा और शंकर ब्राह्मण का अन्वेपण करने के लिये चारों ओर भ्रमण करने लगे थे ॥१॥ पार्वती ने कहा— हे अतिवृद्ध विप्रेन्द्र ! आप क्षुधा से बहुत आतुर थे इस समय कहाँ चले गये हैं ? हे तात ! हे- विभो ! आप अपना दर्शन बाँ ओर प्राणों की रक्षा करो ॥२॥ हे शिव ! आप भीत्र उठिये और उस ब्राह्मण की खोज करिये । एक क्षण के लिये उन्मनस यह हम दोनों को प्रत्यक्ष हुआ था ॥३॥ हे ईश्वर ! गृही के घर से यदि कोई अतिथि उसकी पूजा को ग्रहण न करके यों ही भूखा चला जाता है तो उस गृही का क्या जीवन है अर्थात् उमका जीवन व्यर्थ ही है ॥४॥ उस गृही के ग्निगण पिण्डदान और तर्पण को ग्रहण नहीं किया करते हैं—आदि उसकी दी हुई आहुति को और देवगण पुष्प तथा जल आदि को स्वीकार नहीं करते हैं ॥५॥ जो

किया करती है उस भक्त के ऊपर अनुग्रह करके विग्रह धारण करने वाले मुक्तिदाता पुत्र का दर्शन करो । १२। यह तेरी वाञ्छा का पूर्ण बीज तथा तपस्या रूपी कल्प वृक्ष का फल है । ऐसे करोड़ों कन्दर्पों को पराजित करने वाला यह तुम्हारा पुत्र है इस परम सुन्दर पुत्र का दर्शन करो । १३। यह कोई क्षुधा से आर्त ब्राह्मण नहीं है । यह तो विप्र के रूप को धारण करने वाला जनार्दन ही था । हे दुर्गे ! तू यह क्या विलपन कर रही है कि वह वृद्ध अतिथि कहाँ चला गया है । हे नारद ! इस प्रकार से सरस्वती कह कर उस समय शान्त हो गई थी ॥१४॥

त्रस्ता श्रुत्वाऽकाशवाणीं जगामस्वालयं सती ।
 ददर्श वालं पर्यङ्के शयानसस्मितमुदा ॥१५॥
 पश्यन्तं गेहशिखरं शतचन्द्रसमप्रभम् ।
 स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम् ॥१६॥
 कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया मुदा ।
 उमेति शब्दं कुर्वन्तरुदन्तं तं स्तनार्थिनम् ॥१७॥
 दृष्ट्वा तमद्भुतं रूपं त्रस्ता शङ्करसन्निधिम् ।
 गत्वेत्युवाच प्राणेशं मङ्गलं सर्वमंगला ॥१८॥
 गृहमागच्छ प्राणेश तपसां फलदायकम् ।
 कल्पे कल्पे ध्यायसे यं तं पश्यागत्यमन्दिरम् ॥१९॥
 शीघ्रं पुत्रमुखं पश्य पुण्यबीजं महोत्सवम् ।
 पुत्रामनरकत्राणं कारणं भवतारणम् ॥२०॥
 स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् ।
 पुत्रसुदर्शनस्यास्य कलां नार्हति पोडशीम् ॥२१॥

इसके अनन्तर इस आकाश वाणी का श्रवण कर वह सती त्रस्त होती हुई अपने मन्दिर में चली गई थी और उसने स्मित से युक्त आनन्द के सहित शिशु को पर्यङ्क पर शयन करते हुये देखा था ॥१५॥

वी वाजक अपने गृह के वातकाय विषय विचार को देख रही था और
 अपनी प्रथा के समूह के शरीर उस महीतल की शोचिब कर रही
 था ॥११॥ पावती ने शायी पर शानन्द पूर्वक स्वेच्छा से अमण
 करते दिये तथा 'उमा'—इस शब्द की कविकत स्वन का पान करते
 के लिये रुदन करने वाले विद्यु की वही पर दशन किया था ॥१०॥
 उस समय वही पर ऐसे परम शब्द व विद्यु की देखकर वह रुत
 हो गई थी और शूर के समीप में जाकर सर्व मगना दुर्गा अपने
 प्राणी के नाथ मान स्वल्प विषय से बोली ॥१०॥ पावती ने कहा—
 हे प्राणिय ! घर में शायी, विषका थाप प्रति कल्प में स्थान किया
 करते है उस तथा के फनी के प्रदान करने वाले की अपने मन्दिरे में
 शकर दशन करिये ॥११॥ पुण्य के बीज मद्योन्न वल्लभ के रूप
 वाले पुत्र का मुख देखिये ! यह पन्नाम वाले गरक से तारण करने
 वाला शीर सशर से उदार करने का कारण स्वल्प है ॥१०॥
 समस्त लीर्षी में स्थान तथा सम्युग् यानों में दीक्षित होने पर के
 दशन से हीने वाले पुण्य की शोचदो कला के योग्य भी नहीं है ॥११॥

सुदन्तान् यरुण्ययवर्षिण्यः प्रदक्षिणान् ।
 पुनरुद्वानुपुण्यस्य कला नाहेति पौड्योम ॥१३॥
 सुवृत्तपुष्पिभ्युपुण्य पदेवानशान्तं तैः ।
 मत्पुनरुद्वानुपुण्यस्य कला नाहेति पौड्योम ॥१३॥
 यद्विप्रभोजनैः पुण्य पदेव सुसेवतः ।
 सत्युप्याभिपुण्यस्य कला नाहेति पौड्योम ॥१४॥
 पावती वचन श्रुत्वा शिवः प्रदक्षिणान्तसः ।
 शान्तानाम स्वभवम विषय स कान्तवया सह ॥१२॥
 ददां तल्प स्वर्गव तमकाञ्चनसनिभम ।
 इति तत्पान समदाय करवावशसि त सुवम ।
 इदमस्य च यद्वै प तदेवाति मनोहरम् ॥११॥
 सुवृत्तानन्दजलपी निभमनासुरवृषासह ॥१०॥

इति त्रिखण्डिते पावत्या शशिगणेशपुराणम्

प्राप्ति होने पर जो महान् आनन्द होता है वैसा ही इस समय मेरा मन आनन्द मग्न है ॥३३॥ प्यास से सूखे हुए गले वालों को अधिक समय के पश्चात् शीतल एवं सुवासित जल प्राप्त कर जो खुशी होती है वैसी ही प्रसन्नता मेरे मन को हो रही है ॥३४॥ दावाग्नि में पतित श्रीर, निराश्रय में स्थितों को बिना अग्नि वाला आश्रय प्राप्त करके जो आनन्द होता है वैसा ही आज मुझ को हो रहा है । ॥३५॥ चिरकाल तक भूखे और व्रत-उपवास करने वाले लोगों को सामने अच्छा अन्न देखकर जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही इस समय मेरे मन को हो रही है । इतना कहकर पार्वती ने उस अपने नव-जात बालक को गोद में ले लिया था ॥३६॥ परम आनन्द से पूर्ण मनवाली देवी ने प्रीति के साथ उसे स्तन दिया था । भगवान् शंकर ने भी उस बालक को गोद में बिठा लिया और बहुत प्रसन्न मन वाले हुए थे ॥३७॥



५०-गरुडदर्शनार्थं शनैश्चरागमनम् ।

हरिस्तमाशिपं कृत्वा रत्नसिंहासने वरे ।
 दैवैश्च मुनिभिः सार्द्धं मुवास तत्र संसदि ॥१॥
 दक्षिणे शङ्करस्तस्य वामे ब्रह्मा प्रजापतिः ।
 पुरतो जगतां साक्षो धर्मो धर्मवितां वरः ॥२॥
 आवां धर्मसमीपे च सूर्य्य शक्रः कलानिधिः ।
 देवश्चमुनयोब्रह्मन्नूपुःशैलाःसुखासने ॥३॥
 ननर्त्तं नर्त्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ।
 श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम् ॥४॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शङ्करनन्दनम् ।
 आजगाम महायोगी सूर्य्यपुत्रः शनैश्चरः ॥५॥

मृत्यु को प्रणाम किया था फिर उनकी भासा से बालक को देख
 उभने वही भाकर विष्णु-ब्रह्मा-शिव-धर्म-रवि समस्त सुर भीरु सब
 बणु बाला भीरु पीताम्बर को धारण करने बाला परम श्रेष्ठ था ॥७८॥
 वेदव्यास था वही अजय ही देव मूर्ति को विद्या ही-प्रदियन सुन्दर श्याम
 लपाने बाला था ॥७९॥ यह लप के फन की भागी बाला था भीरु
 बहिरु भीरु भीरु ऊणु का स्मरण करने बाला ऊणु ही म मन
 ॥८०॥ यह प्रथम नम मूख बाला-पत्नी भाषी को मू दे ही-
 दर्शन करने के लिये महीन महीन कर्म का पुत्र शुकेश्वर था गया था
 स्तुति कर रही थी ॥८१॥ वही शीव म वही परमेश्वर के पुत्र का
 करने से तथा शक्ति प्रदान से सार रूप एव मूख पर हीरु को
 करने बाला की शक्ति प्रदान करने की-गणव भीरु किन्तु गान
 उष मुनिमनपर विषय हीकर निवास करते थे ॥८२॥ वही परमेश्वर
 भीरु कर्मान्निष्ठ थे । हे शुकेश्वर ! हे शुकेश्वर ! हे शुकेश्वर ! हे शुकेश्वर !
 था जो धर्म बाला म सब श्रेष्ठ है ॥८३॥ धर्म के समीप म शुकेश्वर
 म पाकर धर्म म प्रवर्णित शुकेश्वर-सामने जगती को बाली धर्म
 मन्त्र के साथ वही सुन्दर म निवास किया था । हे उनके दक्षिण
 बहिर् देकर फिर शुकेश्वर की के विद्वेषण पर देवमणु भीरु मुनि
 का निश्चय किया जाता है । मरियणु से कही हीरु ने उसकी भाषी-
 देव प्रणाम म शुकेश्वर के दर्शन के लिये शुकेश्वर के प्राणमन

मूर्ति-दीप्ति बालक श्रेष्ठ जगाम लक्ष्मणाय ॥८४॥
 प्रणम्य विष्णु ब्रह्माण शिव धर्म रवि सुरेश्वर !
 शक्ति-शुद्धः श्याम पीताम्बरधरो वर ॥८५॥
 लप-फलशी नेत्रवती जलदनिर्वाणप्रमः ।
 शान्तवृद्धि स्मरन् ऊणु कर्णकाममनासः ॥८६॥
 शुकेश्वर-शुद्ध-वदन-देव-मूर्ति-वर्णनः ।

प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम् ।
 द्वारिणं शूलहस्तञ्च विशालाक्षमुवाच ह ॥१॥
 शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शङ्करकिङ्कर ।
 विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥१०॥
 आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसन्निधि बुध ।
 पुनर्यामि शिशुं द्रष्टुं विषयासक्तमानसः ॥११॥
 आज्ञावहो न देवानां नाहं शङ्करकिङ्करः ।
 द्वारं दातुं न शक्तोऽहं विनाऽऽत्ममातुराज्ञया ॥१२॥
 इत्युक्त्वाभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया ।
 ददौ द्वारं ग्रहेशायविशालाक्षो मुदा ततः ॥१३॥
 शनिरभ्यन्तरं गत्वा ननाम नम्रकन्धरः ।
 रत्नसिंहासनस्थाञ्च पार्वती सस्मितां मुदा ॥१४॥

यह शनैश्वर प्रधान द्वार पर पहुँचकर इसने शिव के ही तुल्य पराक्रम वाले-शूल हाथ में लिये हुये द्वारपाल विशालाक्षणे को देखकर उससे यह बोला शनैश्वर—हे शङ्कर के सेवक ! मैं शिवकी आज्ञा से शिशु का दर्शन करने के लिये जा रहा हूँ । इस आज्ञा में विष्णु प्रमुख देवों का तथा मुनियों का भी अनुरोध है ॥१॥१०॥ हे बुद्ध ! मुझे आप अब पार्वती के समीप में जाने की आज्ञा दे दो । मैं विषयों में आसक्तमन वाला शिशु को देखकर चला जाऊँगा ॥११॥ विशालाक्ष ने-कहा—मैं देवों की आज्ञा का वहन करने वाला नहीं हूँ और न मैं कोई शिव का ही सेवक हूँ । मैं अपनी माता की आज्ञा के बिना द्वार के अन्दर जाने की आज्ञा देने में असमर्थ हूँ ॥१२॥ इतना कहकर वह अन्दर गया और शिवा की आज्ञा से प्रेरित होते हुये उस विशालाक्ष ने प्रसन्नता से फिर उस ग्रहेश शनैश्वर के लिये द्वार खोल दिया था ॥१३॥ शनि ने अन्दर प्रवेश करके नम्रमस्तक होकर प्रसन्नता से स्मित से युक्त और रत्नों के सिंहासन पर स्थित पार्वती को प्रणाम किया ॥१४॥

कल्पों में भी लुप्त नहीं होता है । कर्म से ही जन्तु ब्रह्मा इन्द्र और सूर्य के मन्दिर में जन्म ग्रहण किया करता है कर्म के द्वारा ही मनुष्य के घर में तथा पशु आदि में जन्म लेता है ॥११॥२०॥ कर्म के कारण यह जीवात्मा नरक में पतित होता है और कर्म के अनुसार ही वैकुण्ठ का वास प्राप्त किया करता है । अपने कर्मों के फल से ही राजेन्द्र होता है तथा कर्म से यह मृत्यु होता है ॥२१॥

कर्मणासुन्दरःशश्वद्व्याधियुक्तःस्वकर्मणा ।

कर्मणाविपयीमालर्निलिप्तश्चस्वकर्मणा ॥२२॥

कर्मणा धनवान्लोकोदेन्ययुक्तःस्वकर्मणा ।

कर्मणासत्कुटुम्बीचकर्मणावन्धुकण्टकः ॥२३॥

सुभाय्यंश्चसुपुत्रश्चसुखीशश्वत्स्वकर्मणा ।

अपुत्रकश्चकुस्त्रीवान्निस्त्रीकश्च स्वकर्मणा ॥२४॥

इतिहासश्चातिगोप्य शृणु शङ्करवल्लभे ।

अकथ्यं जननीसाक्षाल्लज्जाजनककारणम् ॥२५॥

आवालात् कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः ।

तपस्यासु रतः शश्वत् विषये विरतः सदा ॥२६॥

पिता ददौ विवाहे तु कन्याश्चित्ररथस्य च ।

अतितेजस्विनी शश्वत् तपस्यासु रता सती ॥२७॥

एकदा सा ऋतुस्नाता सुवेश स्व विधाय च ।

रत्नालङ्कारसंयुक्ता मुनिमानसमोहिनी ॥२८॥

कर्मों से यह परम सुन्दर तथा कर्म वश ही व्याधि से युक्त रहता है । हे माता ! कर्म के अनुसार ही विपयों में आसक्त यह जन्तु होता है और कर्म के द्वारा निलिप्त रहा करता है ॥२२॥ कर्मों के ही फल से धनी और दीनता युक्त हुआ करता है कर्मों से ही अच्छे कुटुम्ब वाला तथा बन्धु कण्टक होता है ॥२३॥ अच्छी भार्या वाला अच्छे पुत्र वाला भी सर्वदा अपने कर्मों के अनुसार होता

हैक एवम् कर्म त्रिषु मन्त्रेषु १ । । एतद् एवम् । । इति १ । ।

॥१॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥२॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥३॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥४॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥५॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥६॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥७॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥८॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥९॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 ॥१०॥ ॥ इति १ । । इति १ । । इति १ । ।

इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।
 इति १ । । इति १ । । इति १ । ।

वाली आ गई थी ॥२६॥ जब मैंने उसकी ओर नहीं देखा तो ऋतु के नष्ट हो जाने वाली उसने क्रोधित होकर मुझे शाप दे दिया था। जब कि मैं वाहिरी ज्ञान से रहित और उस समय ध्यान ही में एक तान मन वाला था ॥२७॥ उसने यह शाप दिया था कि तूने मुझे नहीं देखा है और मेरे ऋतु काल की रक्षा इस समय नहीं की है। हे मूढ़ ! अब तू जिस भी किसी को देखेगा वह सभी नष्ट हो जायेगा ॥२८॥ मैं जब ध्यान से विरत हुआ तो इसके बाद मैंने उस सती को उस समय सन्तुष्ट किया था। वह फिर उस दिए हुये शाप से मुक्त कराने में समर्थ न हो सकी थी और पीछे उसने बड़ा पश्चाताप किया था ॥२९॥ इससे हे माता ! अपने नेत्र से किसी भी वस्तु को नहीं देखता हूँ। तभी से मैं प्रकृति से ही नीचे मुख वाला रहता हूँ क्योंकि मुझे सर्वदा प्राणियों की हिंसा होने का भय बना रहता है ॥३०॥ शनैश्वर के इस वचन का श्रवण कर हे मुने ! पार्वती बहुत हँसी थीं और वहाँ पर जो नर्तकी किन्नरी के गण थे वे भी सब बड़ी जोर से हंस गये थे ॥३१॥

५१-शनिना बालकदर्शनम्

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हरिमीश्वरम् ।
 ईश्वरेच्छ्रावशीभूत जगदेवेत्युवाचाह ॥१॥
 साचदेवी वशीभूता शनि प्रोवाच कौतुकात् ।
 पश्यामां मच्छिद्युमिति निषेकः केनवाय्यते ॥२॥
 पार्वतीवचनं श्रुत्वा शनिर्मनेहृदा स्वयम् ।
 पश्यामि किं पश्यामि पार्वतीसुतमित्यहो ॥३॥
 यदि वा नो मया दृष्टस्तस्य विघ्नो भवेद् ध्रुवम् ॥४॥

मूर्च्छां संप्राप सादेवी विलप्यच भृशंमुहुः ।
 मत्ताइव पृथिव्यान्तुकृत्वा वक्षसिवालकम् ॥८॥
 विस्मितास्ते सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ।
 देवयश्च शैला गन्धर्वाः शिवः कंलासवासिनः ॥९॥
 तान् सर्वान् मूर्च्छितान् दृष्ट्वै वारुह्य गरुडं हरिः ।
 जगाम पुष्पभद्रां स उत्तरस्यां दिशि स्थिताम् ॥१०॥
 पुष्पभद्रानदीतीरे ददर्श कानने स्थितः ।
 गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम् ॥११॥
 दिश्युत्तरस्यां शिरसंमूर्च्छितं सुरतश्रमात् ।
 परितः शावकान् कृत्वा परमानन्दमानसम् ॥१२॥
 शौघं सुदर्शनेनैव चिच्छेद तच्छिरोमुदा ।
 स्थापयामास गरुडे रुधिराक्तं मनोहरम् ॥१३॥
 गजच्छिन्नाङ्गविक्षेपात् प्रबोध प्राप्य हस्तिनी ।
 शावकान्बोधयामास चाशुभं वदतीतदा
 रुरोद शावकैः साद्धं सा विलप्य शुचातुरा ॥१४॥

उस समय शिशु की ऐसी दशा से वह देवी अत्यन्त दारुण रुदन और विलाप करके मूर्च्छित हो गई थीं और उस बालक को वक्षस्थल में लगाकर पृथिवी में मन्त की भाँति भ्रमिष्ठ हो गई थी ॥८॥ उस समय समस्त सुर चित्रगत पुतली के भाँति स्तम्भित हो गये थे । उस समय में देवियां-शैल-गन्धर्व-शिव-और सभी कैलाशवासी मूर्च्छित हो गये थे । उन सबको देखकर हरि गरुड़ पर समावृढ होकर उत्तर दिशा में स्थित पुष्पभद्रा नदी पर गये थे ॥९॥१०॥ पुष्पभद्रा नदी के तट पर वन में स्थित होकर हरि ने वहाँ पर निद्रित एक गजेन्द्र को देखा था जो शयन किये हुए था और हस्तिनी के सहित था ॥११॥ सुरत के श्रम से उसका शिर मूर्च्छित और उत्तर दिशा में था, उसके सभी और बच्चे थे और वह परमानन्द से युक्त मन वाला था ॥१२॥ हरि

जगत् के कान्त-सुदर्शन को घुमाते हुए-शाप के खंडन करने में समर्थ और निपेक के जनक-विभु-निपेक के योग के प्रदान करने वाले और भोगों के निस्तार करने के कारण स्वरूप थे । ऐसे हरि का स्तवन किया था ॥१५॥१६॥ हे विप्र ! प्रभु उसके स्तवन से परम सन्तुष्ट होकर उनसे उसे वर दिया था और किसी अन्य गज के मस्तक से मुण्ड को काटकर योजित कर दिया था ॥१७॥ ब्रह्म वेत्ता ने ब्रह्म ज्ञान के द्वारा वहां पर उसे जीवित कर दिया था और उस गज के सर्वाङ्ग में अपने चरणाम्बुज को योजित कर दिया था ॥१८॥ तू आकल्प पर्यन्त गज परिवारों के सहित जीवित रह-यह कहकर मन से ही गमन करने वाले हरि कैलाश में आगये थे ॥१९॥ यहां पर पार्वती के मन्दिर आकर उन्होंने उस बालक को अपने गोद में रख लिया था और उसके शिर को रुचिर बनाकर बालक में योजित कर दिया था ॥२०॥ ब्रह्म के स्वरूप वाले भगवान् ने लीला से ही ब्रह्म ज्ञान के द्वारा हुङ्कार के उच्चारण से जीवन कर दिया था ॥२१॥ फिर पार्वती को समझा-बुझाकर उस शिशु को उनकी गोद में रखकर कृष्ण ने आध्यत्मिक विशेष बोधनों के द्वारा उस देवी को ज्ञान करा दिया था ॥२२॥

ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं जगद् भुङ्क्ते स्वकर्मणा ।
जगद्बुद्धिस्वरूपासि त्वं न जानासि किं शिवे ।२३।
कल्पकोटिशतं भोगो जीविनां तत् स्वकर्मणा ।
उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतियोनौ शुभाशुभैः ।२४।
इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनीं जन्म लभेत् सति ।
कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेन वै ।२५।
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना ।
मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमः स्वप्राक्तनेन च ।२६।
सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणाः फलम् ।
सुकर्मणाः सुखं हर्षमितरे प्रापकर्मणाः ।२७।

श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती ।
 स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम् ।३३।
 तुष्टाव पार्वती तष्टा प्रेरिता शङ्करेण च ।
 पुटाञ्जलियुता भक्त्या विष्णुं त कमलापतिम् ।३४।
 आशिषं युयुजे विष्णुः शिशुञ्च शिशुमातरम् ।
 ददौ गले बालकस्य कौस्तुभञ्चस्वभूषणम् ।३५।

विधि (ब्रह्मा का भी विधाता-मृत्यु का भी मृत्यु काल का भी काल-निपेक का भी निपेक करने वाला-कर्मों का फल देने वाला-संहारक का भी संहार करने वाला-पाता (पालन करने वाले) का भी रक्षक और पर से पर गोलोक के नाथ स्वयं परिपूर्ण तम श्रीकृष्ण ही हैं ॥२६॥१०॥ जिस पुरुष की हम ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर सभी एक कला होते हैं । यह महा विराट् भी उसका ही एक अंश है जिसके लोम के छिद्रों में यह जगत् रहा करता है ॥३१॥ कुछ तो उसके धर्म में कलांश है और कुछ कलांश के भी अंश हैं । इसी प्रकार से यह सम्पूर्ण चराचर जगत् है और उसमें विनायक स्थित थे ॥३२॥ श्री विष्णु के इन वचनों का श्रवण करके पार्वती परितुष्ट हो गई थीं । फिर उस देवी ने गदाधर को प्रणाम करके उस अपने शिशु को स्तन दिया था ॥३३॥ शंकर के द्वारा प्रेरित होकर फिर भक्ति के भाव से अपनी अञ्जलि का प्रद वजाकर तुष्ट हुई पार्वती ने कमला के पति विष्णु का स्तन किया था ॥३४॥ विष्णु ने शिशु को और शिशु की माता को आशीर्वाद दिया था और बालक के गले में अपना भूषण कौस्तुभ पहिना दिया था ॥३५॥

ब्रह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मश्च रत्नभूषणम् ।
 क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम् ।३६।
 तुष्टाव तं महादेवश्चातीवहृष्टमानसः ।
 देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोपितः ।३७।

रक्ताक्षास्ते रक्तमुखाः कोपप्रस्फुरिताधराः ।
 तां धर्मं साक्षिणं कृत्वा विष्णुञ्च शप्नुमुद्यताः ॥४४॥
 ब्रह्मा तान् बोधयामास विष्णुना प्रेरितैः सुरैः ।
 रक्तास्यां पार्वतीञ्चैव कोपप्रस्फुरिताधराम् ॥४५॥
 ब्रह्माण्णमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम् ।
 भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा ॥४६॥
 दुर्दृष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा ।
 बालं ददर्श यत्नेन तस्यैव मातुराज्ञया ॥४७॥
 तं धर्मं साक्षिणं कृत्वा पुत्रस्य मातुराज्ञया ।
 मत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ददर्श पार्वती सुतम् ॥४८॥
 यथा निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह ।
 तत्पुत्रस्याङ्गभङ्गश्च भविष्यति न संशयः ॥४९॥

इस प्रकार से पार्वती के द्वारा शाप प्राप्त होने वाले शनि को देखकर सूर्य-कश्यप और यम अत्यन्त रुष्ट होकर शंकर के आवास स्थान से जाने वाले होते हुए खड़े हो गये थे ॥४३॥ तब सबकी आंखें लाल हो गई थीं और क्रोध से होठ फड़क रहे थे । उन्होंने धर्म को साक्षी बनाकर उस पार्वती देवी को तथा विष्णु को शाप देने के लिये वे उद्यत हो गये थे ॥४४॥ ब्रह्मा ने उनको समझाया था । विष्णु के द्वारा प्रेरित सुरों से लाल मुख वाली और कोप से प्रस्फुटित होठों वाला पार्वती को भी समझाया था ॥४५॥ वहाँ पर वे सब देवगण ब्रह्मा जी से बोले जो कि क्रम से समय के उचित था । समस्त देवता मुनिगण और पर्वत डरे हुए थे ॥४६॥ कश्यप ने कहा—यह शनि बड़ा दुष्ट है जिसने पुराने अपनी पत्नी के शाप से ही सर्वदा यह दोष प्राप्त किया था । बालक को इसने उसकी माता की आज्ञा से ही यत्न के साथ देखा था ॥४७॥ श्री सूर्य ने कहा—उस धर्म को साक्षी बनाकर पुत्र की माता की आज्ञा से मेरे पुत्र शनि ने पार्वती के पुत्र को प्रयत्न से देखा

जोकि शिव के द्वारा प्रसन्न कर दी गई थी तथा ब्रह्मा के द्वारा परिसेवित की गई थीं ॥५५॥

ग्रहराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः ।
 चिरजीवी च योगीन्द्रो हरिभक्तस्य का विपत् ॥५६॥
 अद्य प्रभृतिनिर्विघ्नाहरौभक्तिर्द्धास्तु ते ।
 मच्छापामोघते वत्सकिञ्चित्खञ्जोभविष्यति ॥५७॥
 इत्युक्त्वा पार्वतीतुष्टावालंकृत्वाचवक्षसि ।
 उवास योषितां मध्ये तस्मैदत्त्वाशुभाशिषम् ॥५८॥
 शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः ।
 प्रणाम्य भक्त्या तां ब्रह्मन्म्विकां जगदम्बिकाम् ॥५९॥

पार्वती ने कहा—हे शने ! नुम मेरे वरदान से ग्रहों के राजा हो जाओ और हरि के प्रिय बन जाओ । और योगीन्द्र तथा चिरजीवी हो जाओ । हरि के भक्त को क्या विपत्ति है ? अर्थात् कोई विपत्ति नहीं होती है ॥५६॥ आज से लेकर हरि में तेरी भक्ति विघ्न रहित और दृढ़ होगी । हे वत्स ! मेरा शाप अमोघ है अतएव इस अमोघता के कारण तू कुछ खंज (लंगड़ा) हो जायगा ॥५७॥ इतना कहकर पार्वती तुष्ट हो गई थीं और फिर बालक को गोद में लेकर स्त्रियों के मध्य में उसको शुभ आशीर्वाद देकर निवास करने लगी थीं ॥५८॥ शनि प्रसन्न चित्त होकर उस जगत् की माता अम्बिका को भक्ति से प्रणाम करके देवों के समीप में चला गया था ॥५९॥



५९-विघ्नेशविघ्नकथनम्

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग ।
 पृच्छामि त्वामहं किञ्चिदतिसन्देहमीश्वर ॥१॥

में मालिका हनन करने वाला था उसे भक्त वत्सल शिव ने अपने त्रिशूल से मारा था ॥६॥ सूर्य ने तेज से शिव के तुल्य शूल से तुरन्त ही चेतना का हनन किया था जोकि रथ से नीचे गिर गई थी ॥७॥

ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम् ।
 कृत्वा वक्षसि तं शोकात् विललाप भृशं मुहुः ॥८॥
 हाहाकारं सुरास्त्रस्ताश्चक्रुर्विललपुर्भृशम् ।
 अन्धीभूतं जगत्सर्वं वभूव तमसावृतम् ॥९॥
 निष्प्रभं तनयं दृष्ट्वा शशाप कश्यपः शिवम् ।
 तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥१०॥
 मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य च ।
 त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नमेवम्भूतम्भविष्यति ॥११॥
 शिवश्च गलिनक्रोधः क्षरोनैवाशुतोषकः ।
 ब्रह्मज्ञानेन तत्सूर्य्यं जीवयामास तत्क्षणात् ॥१२॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकः ।
 सूर्य्यश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थुः पितुः पुरः ॥१३॥
 ननाम पितरं भक्त्या शङ्करं भवत्वत्सलः ।
 विज्ञाय शम्भोः शापञ्च कश्यपञ्च चुकोप ह ॥१४॥

कश्यप ने उत्तान लोचन वाले मृत पुत्र को देखा था । कश्यप उसे गोद में लेकर शोक से बार-बार अत्यन्त करने लगे थे ॥८॥ उस समय देवगण बहुत व्रस्त हो गये थे और हाहाकार करने लगे थे तथा अत्यन्त विलाप किया था । यह समस्त जगत् एकदम अन्धकार से आवृत्त होकर अन्धीभूत हो गया था ॥९॥ अपने पुत्र को प्रभाहीन देखकर कश्यप ने शिव को शाप दिया था । जो कश्यप ब्रह्मा के पौत्र थे तथा परम तपस्वी एवं ब्रह्म तेज से जाज्वल्यमान हो रहे थे ॥१०॥ कश्यप ने कहा—जिस तरह मेरे पुत्र का वक्षःस्थल आज शूल से तुमने छिन्न किया है इसी तरह से तुम्हारे पुत्र का शिर भी छिन्न होगा ॥११॥

फिर सूर्य ने विषय को ग्रहण नहीं किया था और कोप से यह कहा—मैं अब विषय का त्याग करके ईश्वर कृष्ण का भजन करूँगा ॥१५॥ ईश्वर के विना यह सब तुच्छ-अनित्य और नश्वर है । मंगल और सत्य का त्याग करके विद्वान् कभी अमंगल की इच्छा नहीं करता है ॥१६॥ तब देवों के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके वहाँ सभभ्रम के साथ ब्रह्मा जी आये थे और प्रभु ने सूर्य को समझाकर विषय में युक्त किया था ॥१७॥ शिव ने उसको आशीर्वाद देकर और ब्रह्मा ने भी आशीष्ट करके ये दोनों अपने आलय को चले गये थे । कश्यप भी चले गये थे तथा अपनी राशि पर चला गया था ॥१८॥ इसके अनन्तर माली और सुमाली दोनों व्याधि से ग्रसित हो गये थे । इनके शिवत्र और गलित कुष्ठ सर्वाङ्ग में होगया था : ये शक्ति से हीन और प्रभा रहित हो गये ॥१९॥ उन दोनों से ब्रह्मा ने स्वयं कहा था कि तुम दोनों रवि का भजन करो क्योंकि तुम दोनों सूर्य के कोप से ही गलित रोगी और प्रभा से हीन हुए हो ॥२०॥ तब विधाता ने सूर्य का स्तोत्र-कवच और पूजा की विधि उनको कहकर सनातन ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोक को चले गये थे ॥२१॥ इसके उपरान्त उन दोनों ने पुष्कर में जाकर हे भुने ! रवि की सेवा की थी । वे वहाँ त्रिकाल स्नान करके भक्ति पूर्वक उत्तम मन्त्र का जाप वहाँ करते थे ॥२२॥ इसके पश्चात् सूर्य देव से वर प्राप्त कर वे अपने निज के रूप वाले हो गये थे । यह इस प्रकार से मैंने तुमको सब बता दिया है अब आगे और क्या सुनना चाहते हो ? ॥२३॥



५३ - गजमुखयोजनहेतुकथनम्

हरेरंगसमुत्पन्नो हरितुल्यो भवान् धिया ।
तेजसा विक्रमेणैव मत्प्रश्नं श्रोतुमर्हसि ।।१।।

हैं एवं दुर्लभ है ॥५॥ यह चरित्र समस्त दुःखों को छुड़ाने वाला सम्पूर्ण सम्पत्ति को देने वाला—विपत्तियों को हरण करने वाला तथा पापों का मोचन करने वाला है ॥६॥ महालक्ष्मी का चरित सम्पूर्ण मंगलों का भी मंगल होता है । यह सुख और मोक्ष के देने वाला तथा चारों वर्ग का प्रदान करने वाला है ॥७॥

शृणु तात प्रवक्ष्येऽहिमितिहासं पुरातनम् ।
 रहस्यं पाद्मकल्पस्य पुरा तातमुखाच्छ्र तम् ॥८॥
 एकदैव महेन्द्रश्च पुष्पभद्रां नदी ययौ ।
 महासम्पन्मदोन्मत्तः कामो राजश्रियान्वितः ॥९॥
 तत्तीरेऽतिरहःस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे ।
 अतीवदुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवजिते ॥१०॥
 भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते ।
 सुगन्धिपुष्पसंश्लिष्टवायुना सुरभीकृते ॥११॥
 ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकात् समागताम् ।
 सुरतश्रमविश्रामकामुकीं कामकामुकीम् ॥१२॥
 दृष्ट्वा तामतिवेशाढ्यां तत्कटाक्षेण पीडिताम् ।
 इन्द्रोऽतोन्द्रियचापल्यात् प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१३॥
 क्व गच्छसि वरारोहे क्वागतासि मनाहरे ।
 मया दृष्टान (स) सुत्थिरं मत्प्रियाणि तवाधना ॥१४॥

हे तात ! तुम श्रवण करो, मैं अब इस पुराने इतिहास को बताता हूँ । यह पाद्म कल्प का रहस्य है जो कि मैंने अपने पिता के मुख से सुना था ॥८॥ एक वार महेन्द्र पुष्पभद्रानदी के तट पर गया था । यह इन्द्र अपनी महान् सम्पदा के मद से उन्मत्त हो रहा था और राजश्री से युक्त था ॥९॥ उस नदी के तट पर एकान्त स्थान में परम सुन्दर पुष्पोद्यान में जहाँ कि अत्यन्त दुर्गम निर्जन अरण्य (जंगल) था जिसमें कोई भी जीव जन्तु नहीं रहते थे ॥१०॥

हूँ । मैं निरन्तर आप में अनुरक्त हो रहा हूँ । आप जैसी कामिनी को मैं चाहता हूँ ॥१५॥ रम्भा ने कहा—कोनसी मूढ सती है जो आप जैसे गुणों के सागर को नहीं चाहती है । मैं आपकी दासी हूँ आप यहां पर ही मुझे सुख पूर्वक ग्रहण करिये ॥१६॥ यह कहकर उस रम्भा ने उस इन्द्र को मुख और चक्षुं से पान किया था । वह कामाग्नि से दग्ध होकर लज्जा हीन होती हुई उसके सनीप में स्थित हो गई थी ॥१७॥ इसी बीच में वहां मुनियों में परम श्रेष्ठ दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों के सहित उसी मार्ग से वैकुण्ठ से शङ्कर के निवास स्थान को जा रहे थे । ॥१८॥ उस मुनीन्द्र को देखकर इन्द्र स्तम्भ मन वाले हो गये थे । उसने सहसा आकर वहां उनको प्रणाम किया था और ऋषि ने उसे आशीर्वाद दिया था ॥१९॥ नारायण ने जो पारिजात का पुष्प ऋषि को दिया था वह पुष्प महात्मा मुनीन्द्र ने महेन्द्र को प्रसन्न होकर दे दिया था ॥२०॥ महाभाग कृपा के निधि ने वह पुष्प देखकर उससे उस पुष्प का कुछ अपूर्व महात्म्य मुनि श्रेष्ठ ने कहा था ॥२१॥

सर्ववध्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम् ।

मूद्धर्नादिं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ।२२।

पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत् ।

तच्छ्रायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदापि तम् २३।

ज्ञानेव तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण वलेन च ।

सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः ।२४।

भक्त्या मूर्ध्न न गृह्णाति योऽहङ्कारेण पामरः ।

नैवेद्यञ्च हरेरेवसभ्रष्टश्रीःस्वजातिभिः ।

इत्युक्त्वा शङ्करांशश्च जगाम शङ्करालयम् ।२५।

शक्रो रम्भातिके पुष्पं संस्थाप्य गजमस्तके ।

शक्रं भ्रष्टश्रियदृष्ट्वा साजगामसुरालयम् ।

पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाधमा ।२६।

वन में उसने कारिणी प्राप्त करली थी और मत्त होकर उसका उपभोग करता था। वह भी योषित की जाति वाली उसके वश में हो गई थी क्योंकि सुख की इच्छा वाली वह हो रही थी ॥२०॥ हरि ने उसी हाथी का मस्तक को छिन्न करके उस बालक के मस्तक पर योजित किया था। है वत्स ! यह समस्त चरित मैं ने तुमको कहकर सुना दिया है। अब और क्या श्रवण करना चाहते हो ! यह गज की मुख योजना का चरित महान् पापों के नाश करने वाला है ॥२१॥

ते देवा ब्रह्मशापेन निश्चोकाः केन वा प्रभो ।
 बभूवुस्तद्रहस्यञ्च गोपनाय सुदुर्लभम् ॥२०॥
 कथं वा प्रापुरेते तां कमलां जगतां प्रसूम् ।
 किञ्चकार महेन्द्रश्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ।
 गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्दधीः ।
 भ्रष्टश्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम् ॥२१॥
 तां ददर्श निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने ।
 दैन्यग्रस्तां वन्धुहोनां वैरिवर्गैःसमाकुलाम् ॥२२॥
 सर्वं श्रुत्वा द्रुतमुखाज्जगाम मन्दिरं गुरोः ।
 तेन देवगणैः सार्द्धं जगामब्रह्मणःसभाम् ।
 गत्वा ननाम तं शक्रः सुरैः सार्द्धं तथा गुरुः ॥२३॥
 तुष्टाव वेदविधिना स्तोत्रेण भक्तिसंयुतः ।
 प्रवृत्तिं कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम्
 श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रकवचः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२४॥
 मत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद्राजन् श्रिया ज्वलन् ।
 लक्ष्मीसम शचीभर्ता परस्त्रीलालुपः सदा ॥२५॥

नारद ने कहा— हे प्रभो ! वे देवता ब्रह्मशाप श्री हीन हुये थे अथवा किससे निःश्रुक्ति हुये थे ? यह बड़ा एक रहस्य है और गोपनीय तथा दुर्लभ हैं ॥२०॥ ये फिर किस प्रकार से उसे प्राप्त कर सके थे

यद्गतं तद्गतं वत्स निःपन्नं न निवर्त्तति ।

भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्रामिहेतवे ।४२।

इत्युक्त्वा तं जगत्स्रष्टुः स्तोत्रञ्च कवचं ददौ ।

नारायणस्य मन्त्रञ्च नारायणपरायणः ।४३।

श्री ब्रह्माजी ने कहा - हे देवेन्द्र ! तुम मेरे ही प्रपौत्र हो, हे राजन् ! तुम निरन्तर श्री की शोभा से जाज्वल्यमान रहने वाले हो, लक्ष्मी के समान शची के स्वामी होकर भी सदा पराई स्त्री के लम्पट रहा करते हो ॥१७॥ तुम गौतम के अभिशाप से देवों की संसद में भग के अंग वाले हो गये थे फिर भी तुम लज्जा से विहीन हो रहा है और पर स्त्री के साथ रति करने में लम्पट है ॥१८॥ जो पराई स्त्रियों में निरत रहने वाला पुरुष होता है । उसकी श्री अथवा यश कहां से हो सकता है ऐसा पुरुष निन्दा के योग्य होता है और निरन्तर सभी सभाओं में उसकी बुराई हुआ करती है तथा वह पाप से युक्त होता है ॥१९॥ दुर्वासा के द्वारा दिया हुआ श्री हरि का नैवेद्य तूने गज के मस्तक पर रख दिया था क्यों कि रम्भा के द्वारा तैरा ज्ञान सब हत हो गया था ॥२०॥ सबके द्वारा भोगने के योग्य वह रम्भा अब कहां है और श्री से हत हो जाने वाला तू कहां है । जिसके कारण से पद्मात्यक्त हो गई है और वह एक ही क्षण में तुझ से चली गई है ॥२१॥ वेश्या श्री से युक्त की ही इच्छा करने वाली है वह निःश्रीक को चञ्चला कभी नहीं चाहती है । पुराने का त्याग करके वह सर्वदा नये-नये की प्रार्थना किया करती है ॥२२॥ हे वत्स ! जो भी हो गया वह तो हो गया, अब वह वापिस नहीं आता है । अब तो पद्मा की प्राप्ति के लिये तुम भक्ति भाव से नारायण का भजन करो ॥२३॥ नारायण में परायण ने यह कहकर जगत् के सृजन करने वाले का स्तोत्र-कवच और नारायण का मन्त्र उसको दिया था ॥४॥

स तैः सार्द्धञ्च गुरुणा जजाप मन्त्रमीप्सितम् ।

गृहीत्वा कवचं तेन तुष्टाव पुष्करेहरिम् ।४४।

द्विष संयत्नं धारयन् धारिणोऽपि धारयन् ॥२१॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः धरन्तः ॥२२॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥२३॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥२४॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥२५॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥२६॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥२७॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥२८॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥२९॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३०॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३१॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३२॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३३॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३४॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३५॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३६॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३७॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३८॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥३९॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥४०॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥४१॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥४२॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥४३॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥४४॥

धरन्तः प्रवर्तयन्तः ॥४५॥

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम् ।
 परमैश्वर्यं जनकं सर्वशत्रुविमर्दनम् ॥१३॥
 ब्रह्मणो च पुरा दत्तं संसारे च जलप्लुते ।
 यद्भृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधः ॥१४॥
 वभूवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः ।
 सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः ॥१५॥
 षड्क्तिरछन्दश्चसा देवो स्वयं पद्मालया सुर ।
 सिद्धिश्चर्यंजपेष्वेव विनियोगःप्रकीर्तितः
 यद्भृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी भवेत् ॥१६॥
 मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया ।
 नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचनम् ॥१७॥

नारद ने कहा—हे तपोधन ! श्री हरि ने साक्षान् प्रकट होकर उस महेन्द्र के लिये कौनसा लक्ष्मी का स्तोत्र और कवच दिया था उसे कृपा करके मुझे बताइये ॥१३॥ नारायण ने कहा—सुरेश्वर पुष्कर में तप करके विराम को प्राप्त हो गया था । उस समय हरि ने इन्द्र को कण्ठ से युक्त देखकर वहाँ पर ही अपना आविर्भाव किया था ॥१४॥ उस समय हृषीकेश ने उससे कहा था कि त अपना अभीष्टवरदान का वरण करले । उसने लक्ष्मी की प्राप्ति का वरदान मांगा था और लक्ष्मी के ईश ने प्रसन्नता पूर्वक उसे वही वरदान प्रदान कर दिया था ॥१५॥ वरदान देकर हृषीकेश ने फिर कहना आरम्भ किया था जोकि सत्य-हित-सार और परिणाम में सुख देने वाला था ॥१६॥ श्री मधु सूदन ने कहा— हे इन्द्र ! अब तुम समस्त प्रकार के दुष्टों का विनाश करने वाला कवच मुझसे ग्रहण करो । यह परम ऐश्वर्य का जनक और सब शत्रुओं का विमर्दन करने वाला है ॥१७॥ जिस समय यह सम्पूर्ण संसार जल में मग्न था तब पहिले समय में ब्रह्मा के लिये दिया

श्री मेरे कङ्काल की सुरक्षा करें । श्री नमः—यह मेरी दोनों बाहुओं की रक्षा करें । ओं ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः—यह निरन्तर बहुत समय तक मेरे पैरों की रक्षा करें । ओं ह्रीं श्रीं नमः पद्मार्यै—यह मेरे नितम्ब भाग की सदा रक्षा करें । ओं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा—यह मेरे सर्वाङ्ग की सदा रक्षा करें । ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा—यह मेरी सब ओर से रक्षा करें ॥६१॥ हे वत्स ! यह समस्त सम्पत्तियों का करने वाला और सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदान करने वाला परम अद्भुत कवच तुझे बता दिया है ॥६२॥

गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः ।
 कण्ठेवा दक्षिणे वाही स सर्वविजयीभवेत् ॥६३॥
 महालक्ष्मीगृहं तस्य न जहाति कदाचन ।
 तस्य छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि ॥६४॥
 इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं सुमन्दधीः ।
 शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥६५॥
 दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रञ्च षोडशाक्षरम् ।
 सन्तुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम् ॥६६॥
 ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा ।
 ददौ तस्मै च कृपया इन्द्राय च महामुने ॥६७॥
 ध्यानञ्च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् ।
 सिद्धं मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम् ॥६८॥

जो विधि के साथ पहिले अपने गुरु की अर्चना करके इस कवच को धारण करता है । चाहे इसे कण्ठ में तथा दक्षिण बाहु में धारण करे तो वह सबके ऊपर विजय प्राप्त करने वाला होता है ॥६३॥ उस कवच के धारण करने वाले को अर्थात् उसके घर को महालक्ष्मी कभी भी नहीं त्यागती है । यह उसके जन्म-जन्म में छाया की भांति निरन्तर रहा करती है ॥६४॥ इस कवच को न जानकर जो मन्द

की कान्ता महालक्ष्मी का मैं भजन करता हूँ ॥७०॥ हे देवदेव ! इस
 वाली है । भयान शान्त रूप वाली समस्त जगत् की जननी श्री देवि
 सहस्र दल वाले पद्म पर सन्निधत् है-परम स्वयं एव मुमूर्तौ देव स्वयं
 देवस्य से युक्त मुख वाली है-मयने भक्ती पर मर्त्यदेव करने वाली है ।
 तथा रत्नी के द्वारा निमित्त दिव्य मूर्त्तियों से निर्माणा है ॥६९॥ मन्त्र
 प्रभा वाली है-वन्दि के गुण गुह्य व सल का परिधान करने वाली है
 इवैव वपक के गुण के समान भासा से युक्त है-अवधार के समान

भवति वर्युद्धैरिवा च लक्ष्मिपुत्रिणो विष्णु ॥७१॥
 स्त्रियेवतन स्त्रीवैव वक्ष्यमाणेन वपव ।
 भक्त्यादिसिद्धिषु सत्सुचर्वापवासाणिप्राप्यते ॥७२॥
 ध्यानेनानन्दै-दय्यावोलाक्ष्मी मनोहरिणम् ।
 ध्यानाञ्च शीघ्रैः कान्ता वा भक्त्यावा भवेत् ॥७३॥
 सहेतव्यवपस्या स्वस्याञ्च सुमनोहरिणम् ॥
 देवदत्तप्रसन्नस्या भक्त्यायैवैकारकम् ।
 वर्द्धिषुद्धिषुकाधाना रत्नमूर्त्तयोर्भोवाम् ॥६९॥
 श्रुतवत्पद्मवर्णिना शोच-दसमभयम् ।

सिद्धि पर श्री २१२ सुभ है ॥६८॥

नैव है । यह सिद्धी श्रीर मुमूर्तौ के द्वारा श्री दुःखपाय तथा निश्चिन्त
 भा ॥६७॥ राम वैद से कदा हुआ ध्यान सत्य-व सुदुर्लभ श्रीर गोप-
 देवि विष्णु स्वामी"-क्या करके वग इन्द्र के निवे इस भक्त को दिया
 महापुत्र ! वह मन्त्र यह है -श्री ली श्री कर्मा मयी महा लक्ष्म्य
 है जगन्नाथ से उभकी दिया था श्री बर्द्धन मर्त्य देव ॥६६॥ है
 की श्रीर जीव है अक्षर वाले मन्त्र की श्रीर जगती के द्विज का कारण
 पदा वह लक्ष्मी वपव सम्पन्न होला है । नारायण से कदा-इस कवच
 वाला तथा न ही उभकी इसका मन्त्र सिद्धि वपक गद्दी होला है ॥६५॥

प्रकार से देवी महालक्ष्मी का ध्यान करके जोकि अतीव मनोहर हैं । भक्ति की भावना से उस देवी के लिये षोडश उपचारों को देना चाहिये ॥७१॥ हे वासन ! अगे बताये जाने वाले स्तोत्र से इस देवी की स्तुति करके फिर नमस्कार करके उसके पश्चात् वरदान प्राप्त करके तू निवृत्ति को प्राप्त करेगा ॥७२॥

स्तवन शृणु देवेन्द्र महालक्ष्याः सुखप्रदम् ।
 कथयामि सुगोप्यञ्च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥७३॥
 देवित्वांस्तोतुमिच्छामिनक्षमाःस्तोतुमोश्वराः ।
 बुद्धेरगोचरांसूक्ष्मांतेजोरूपांसनातनीम्
 अत्यनिवचनीयाञ्च को वा निर्वक्तुमीश्वरः ॥७४॥
 स्वेच्छामयीनिराकारांभक्तानुग्रह विग्रहाम् ।
 स्तौ मिवाङ्गमनसोः पारांकिंवाऽहंजगदम्बिके ॥७५॥
 परां चतुर्णां वेदानां पारवीजं भवार्णवे ।
 सर्वशस्याधिदेवीञ्च सर्वांसामपि सम्पदाम् ॥७६॥
 योगिनाञ्चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनान्तथा ।
 वेदानाञ्च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ॥७७॥

हे देवेन्द्र ! अब तुम महालक्ष्मी का स्तवन सुनो जो सुख का प्रदान करने वाला है । मैं उसे कहता हूँ । यह तीनों लोकों में सुगोप्य एवं अत्यन्त सुदुर्लभ है । नारायण ने कहा—हे देवि ! मैं आपका स्तवन करने की इच्छा करता हूँ । आपकी स्तुति करने में ईश्वर भी समर्थ नहीं होते हैं । प्राय बुद्धि के अगोचर हैं—परम सूक्ष्म हैं—तेजो रूप वाली और सनातनी हैं—आप अत्यन्त अनिर्वचनीय हैं । आपको कौन की सामर्थ्य है जो वर्णन कर सके । ७३ ॥ ७४ ॥ आप स्वेच्छा मयी हैं—निराकर हैं केवल भक्तों के ऊपर अनुग्रह करके शरीर धारण करने वाली हैं । हे जगदम्बिके ! वाणी और मनसे परे आपकी मैं क्या स्तुति करूँ ॥७५॥ आप चारों वेदों के परे हैं और भवार्णन में पार होने

पर पुत्र तो होते हे किन्तु कहीं पर भी कुमातायें नहीं होती हैं । कहीं पर माता पुत्र के दोष होने पर उसका त्याग कर चली जाती हैं अर्थात् कहीं भी नहीं ऐसा होता है ? ॥८१॥ हे माता ! स्तन पान करने वाले दुध मुंहे शिशुओं की भांति हमको दर्शन दो । हे कृपा सिन्धु के प्रिये ! हे भक्तों पर वत्सले ! हमारे ऊपर कृपा करो ॥८३॥

इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम् ।
 सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सम्पदः पदम् ॥८४॥
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् ।
 महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन ॥८५॥
 इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तञ्च तत्रैवान्तरधीयत् ।
 देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्द्धं तदाज्ञया ॥८६॥

हे वत्स ! यह इस प्रकार से पद्मा का सुख देने वाला-शुभा वह-मोक्षदाता-शुभ प्रद-सम्पदा का स्थान और सार स्तोत्र तुम को कह दिया है ॥८४॥ यह स्तोत्र महान् पुण्य वाला है अथवा पवित्र है । जो इसको पूजा के समय में पढ़ता है उसके घर को महा लक्ष्मी कभी भी नहीं त्यागा करती है ॥८५॥ उसको इतना कहकर हरि वहां पर ही अन्तहित हो गये थे । देव उसकी आज्ञा से अन्य देवताओं के साथ क्षीर सागर में चला गया था ॥८६॥



५४-गणेशस्य एकदन्तत्वे विवरणम्

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
 एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥१॥
 एकदा कार्त्तवीर्याश्च जगाम मृगयां मुने ।
 मृगान्निहत्य बहुलान् परिश्रान्तो बभूव सः ॥२॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनस्य वचनम् ॥
 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥
 मामकाः पाण्डवाश्चैतानि शूरावकथितम् ॥
 १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनस्य वचनम् ॥
 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥
 मामकाः पाण्डवाश्चैतानि शूरावकथितम् ॥
 १ ॥

विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा ।
 लक्ष्मीसमा कामधेनुं कथयामास मातरम् ॥८॥
 उवाच सा मुनि भीतं भयं किं ते मयि स्थिते ।
 जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मयाकोनृषोमुने ॥९॥
 राजभोजनयोग्यार्हं यद् यद् द्रव्यं प्रयान्वसे ।
 सर्वतुभ्यं प्रदास्यामि त्रिपुलोकेषु दुर्लभम् ॥१०॥
 मुनि सम्भृतसम्भारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम् ।
 भोजयामास राजानं ससैन्यमवलीलया ॥११॥
 यद् यत् सुदुर्लभं वस्तु परिपूर्णां नृपेश्वरः ।
 जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्रमुवाच ह ॥१२॥
 द्रव्याण्येतानि सचिवं दुर्लभान्यश्रुतानि च ।
 ममासाध्यानि सहस्रा क्वागतान्यवलोक्य ॥१३॥
 नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहे ।
 राजानं कथयामास वृत्तान्तं महदद्भुतम् ॥१४॥

मुनियों में परम श्रेष्ठ ने राजा को कहकर अपने आवास के आश्रम की ओर सानन्द गमन किया था । वहाँ पर मुनि के आश्रम में स्थित कामधेनु माता से जोकि लक्ष्मी के समान थी प्रार्थना की थी ॥८॥ उस कामधेनु ने मुनि से कहा-मेरे स्थित रहते हुए आप इतने भय से भीत क्यों हो रहे हैं । हे मुने ! मेरे द्वारा तो आप यह राजा क्या चीज है, सम्पूर्णा जगत् को भोजन कराने के लिये समर्थ होते हैं ॥९॥ राजा के भोजन के योग्य जो-जो द्रव्य तुम याचना करोगे मैं तुमको उन सभी को दे दूंगी जोकि तीन लोक में भी दुर्लभ है ॥१०॥ मुनि सभी प्रकार के सम्भार (सामान) से समन्वित हो गये और उसने लीला से ही सेना के सहित राजा को भोजन करा दिया था ॥११॥ जो-जो भी अति दुर्लभ वस्तुएँ थीं उनसे वह नृपेश्वर परिपूर्णा हो गया था । राजा ने ऐसे पात्र को देखकर परम विस्मय किया था और वह बोला-राजा ने कहा ॥१२॥ हे सचिव ! ये समस्त द्रव्य दुर्लभ एवं अश्रुत हे जिनको

वृक्षों की छाँल के वस्त्र धारण करने वाले जटाधारी लोग देखे थे ॥१६॥
 मुनि के आश्रम में एक स्थान में एक परभ सुन्दर-चार भंगों वाली-
 चन्द्रमा के तुल्य आभा से युक्त लाल कमल के समान नेत्र धारिणी
 कपिला देखी थी ॥१७॥ वह तेज से जाज्वल्यमान थी और पूर्ण चन्द्र
 के समान प्रभा से समन्वित एवं सम्पूर्ण सम्पत्ति और गुणों की आधार
 सक्षात् हरि की प्रिया की ही भाँति थी ॥१८॥ सचिव की आज्ञा से
 सब प्रकार से आराधित दुष्ट बुद्धि वाले उस राजा ने काल के पाश में
 निबद्ध होते हुए उस घेनु की मुनि से याचना की थी ॥१९॥ राजा ने
 कहा—हे कल्प तरो ! हे भक्तेश ! हे भक्तों पर अनुग्रह करने में कातर !
 मृग अपने भक्त के लिये कामदा कामघेनु की भिक्षा दो ॥२०॥ आप
 जैसे दाताओं के लिये भारत में कुछ भी अदेय वस्तु नहीं है । दधीचि
 ने देवों को अपनी आस्थियाँ तक दे दी थीं—यह पहिले सुना ही गया
 है ॥२१॥ हे तपो राशि वाले ! हे तपस्या के घन वाले ! आपके
 भ्रूभग की लीला से ही आप कामघेनुओं के समूह का सृजन भारत में
 करने में समर्थ हैं ॥२२॥

अहो व्यतिक्रमं राजन् ब्रवीषि शठ वञ्चक ।
 दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियायनृपाधम् ॥२३॥
 कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना ।
 कामघेनुरियं यज्ञे न देयाः प्राणतः प्रिया ॥२४॥
 ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप ।
 मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ॥२५॥
 गोलकजा कामघेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये ।
 लीलामात्रात् कथमहं कपिलां स्रष्टुमोश्वरः ॥२६॥
 नाहं रे हालिकोमूढत्वयानोत्यापिताबुधः ।
 क्षणेनभस्मसात् कत्तुं क्षमोऽहमतिथिविना ॥२७॥
 गृहं गच्छ गृहं गच्छ मत्कोपं नैव वर्द्धय ।
 पुत्रदारादिकं पश्य दैववाधित पामर ॥२८॥

अथवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात् ।

मत्तोदत्तेन सैन्येन दूरीभूतं नृपं कुरु ॥३५॥

मुनि के उस वचन को सुनकर यह राजा बहुत क्रोधित हुआ था फिर वह विधि से वाधित होकर मुनि को प्रणाम कर सेना के मध्य में चला गया था ॥३६॥ सेना के समीप में जाकर कोप से प्रस्फुरित अघर वाले उस राजा ने धेनु को जबर्दस्ती से लाने के लिये किङ्करो को भेज दिया था ॥३७॥ उस समय कपिला के पास में जाकर मुनि ने रुदन किया था और शोक से हतबुद्धि वाला होकर सम्पूर्ण वृत्तान्त उस मुनि पुङ्गव ने कपिला से कह दिया था ॥३९॥ रुदन करते हुए उस विप्र को देखकर सुरभि उससे बोली जोकि कपिला साक्षात् लक्ष्मी का स्वरूप धारण करने वाली और भक्तों के अनुग्रह करने में अत्यन्त कातर अर्थात् आतुर थी ॥३२॥ सुरभि ने कहा—इन्द्र हो अथवा हालिक हो वह अपनी वस्तु को देने में समर्थ होता है । शास्ता (शासन करने वाला)-पालयिता भी अपनी वस्तुओं का निरन्तर दाता होता है ॥३३॥ हे तपोधन ! यदि आप अपनी इच्छा से राजा के लिये मुझे देना चाहते हों, तो मैं उसके साथ आपकी आज्ञा से स्वेच्छा पूर्वक चली जाऊंगी ॥३४॥ यदि तुम मुझे नहीं दे रहे हो तो तुम्हारे घर से मैं नहीं जाऊंगी । मेरे द्वारा दी हुई सेना से राजा को दूर करदो ॥३५॥

कथं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः ।

संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो नचात्मनः ॥३६॥

त्वंवा कोमे तवाहं का सम्बन्धः कालयोजितः ।

यावदेव हि सम्बन्धो मम त्वंतावदेव हि ॥३७॥

मनो जानाति यद्द्रव्यमात्मनश्चापिकेवलम् ।

दुःखञ्च तस्य विच्छेदात् यावत्स्वत्वञ्च तत्र वै ॥३८॥

इत्युक्तवाकामधेनुश्च सुपावि विधानि च ।

शस्त्राण्यस्त्राणि संन्याजिनसूर्य्यतुल्यप्रभाणि च ॥३९॥

उस समय उस कविता के मूल से तीन करोड़ खंडोंवाली निक

दंडवादी न संग्रहित गजालें । १५१

बन्दवाली न संग्रहित । १५२

कवितासंग्रहालयोंमें समाविष्ट ।

नृत्योत्सवों में प्रदर्शित । १५३

श्रुति: संग्रहालयोंमें प्रदर्शित ।

मुद्रित कृतियों संग्रहित न गणितियों में । १५४

दस्तावेजों संग्रहित कवितासंग्रहालयों में ।

विज्ञानशास्त्रोंमें प्रदर्शित । १५५

कवितासंग्रहालयोंमें प्रदर्शित । १५६

विज्ञानशास्त्रोंमें प्रदर्शित । १५७

कवितासंग्रहालयोंमें प्रदर्शित । १५८

विज्ञानशास्त्रोंमें प्रदर्शित । १५९

कवितासंग्रहालयोंमें प्रदर्शित । १६०

विज्ञानशास्त्रोंमें प्रदर्शित । १६१

संग्रहीत । १६२

कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १६३
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १६४
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १६५
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १६६
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १६७
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १६८
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १६९
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १७०
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १७१
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १७२
 कवितासंग्रहालयों में प्रदर्शित । १७३

थे । उसकी नासिका से पाँच करोड़ शूलधारी निकले थे ॥४॥ उस धेनु के नेत्रों से सौ करोड़ घनुधारी निकले और उसके कपाल से तीन करोड़ दण्डधारी निकले थे ॥४१॥ वक्षः स्थल से कामधेनु के तीन करोड़ शक्तिधारी भट निकले तथा सौ करोड़ गदा के धारण करने वाले वीर उसके पृष्ठ भाग से निकले थे ॥४॥ पैरों के तल से सहस्रों वाद्य भाण्ड निकल आये और जंघा के भाग से तीन करोड़ राजपुत्र निकले थे ॥४३॥ उस धेनु के गुह्य भाग से तीन करोड़ म्लेच्छ जाति वाले निकले थे इस तरह से एक महान् विशाल सेना देकर कपिला ने मुनि को निर्भय दिया था और उसने कहा था कि सैन्य युद्ध करें और तुम वहाँ मत्त जाना ॥४४॥ मुनि इस प्रकार के युद्ध के सम्भारों से समन्वित होकर बहुत ही हर्षित हुए थे । नृप के द्वारा भेजे हुए भृत्य ने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा से कह दिया था ॥४५॥ कपिला के इस सेना के वृत्तान्त और आत्म-वर्ग के पराजय को सुनकर वह नृप शार्दूल बड़ा क्रुस्त हुआ और कातर मन वाला हो गया था । फिर उस राजा ने दूत के द्वारा अपने देश से विशेष सेना बुलवाई थी ॥४६॥



५५-ससैन्यस्य राज्ञोमुनितपोवने युमर्गमनम्

हर्षि स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः ।
 पुनर्जगामारण्यञ्चजमदग्न्याश्रमंतदा ।१।
 स्थानान्च चतुर्लक्षं स्थीनां दशलक्षकम् ।
 अश्वेन्द्राणांगजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ।२।
 राजेन्द्राणां सहस्रञ्च महाबलपराक्रमम् ।
 महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः ।३।

आश्रमस्थान् जनान् सर्वान् समाश्रवास्य च यत्नतः ।
 आजगाम रणस्थान निःशङ्को नृपते. पुरः । १८।
 चकार शरजालञ्च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम् ।
 चच्छाद स्वाश्रम तैश्च मानवं वर्मणा यथा । १९।
 अपरं शरजालञ्च चकार मुनिपुङ्गवः ।
 तैरेव वारयामास सर्वसैन्यं यथाक्रमम् । १०।
 मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम् ।
 तानिसर्वाणिगुप्तानिपत्राणिपञ्जरे यथा । ११।
 राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवहृद्य रथात् पुरः ।
 साद्धं नृपन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम पुटञ्जलिः । १२।
 नत्वा हरोहयानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिषम् ।
 आहरोह नृपेन्द्रश्चस्वयानं हृष्टमानसा । १३।
 नृपैः साद्धं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप मुनिपुङ्गवम् ।
 अस्त्रं शस्त्रं गदां शक्तिं जघानलीलयामुनिः । १४।
 मुनिश्चिक्षेप दिव्यास्त्रं चिच्छेद लीलया नृपः ।
 शूलश्चिक्षेपनृपतिर्जघान तत्तदामुनि ॥
 अपरं शरजालञ्च चिक्षेप मुनिपुङ्गवः । १५।

मुनि ने आश्रम में स्थित समस्तजनों को यत्न पूर्वक आश्वासन देकर निःशङ्क होते हुये स्वयं राजा के आगे वह रण स्थान में आ गये थे ॥ १८ ॥ उस मुनि ने भनजों के साथ वहां पर शरों का जाल कर दिया था । जिस तरह कवच से कोई मानव अपने शरीर को समाच्छादित किया करता है उसी भाँति उन शरों से मुनि ने अपने आश्रम को आच्छादित कर दिया था । १९। इसके उपरान्त मुनि श्रेष्ठ ने एक दूसरा शरों का जाल किया था और उन्हीं शरों से यथाक्रम सम्पूर्ण सेना को वारण कर दिया था । १०। इस तरह से मुनि ने अपने शरों के जाल से राजा की सम्पूर्ण सेना को समावृत कर दिया था । उस समय वे सब पञ्जर में पत्रों की भाँति गुप्त हो गये

क्या था जो कि मनीष के अतिरिक्त से उत्पन्न हो निवारण का उपाय
उस समय में मनुष्य के अन्तर्गत का प्रकृत

विषय लोचनानामो नामोऽपि विदुषः १२१

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् १२०

पुत्रोऽपि सवैश्यानां वैश्या गी मन्वृषकम् ।

पुत्रोऽपि सवैश्यानां वैश्या गी मन्वृषकम् १२१

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् १२०

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् १२१

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् १२०

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् १२१

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

वैश्यादिनामो यो गी मन्वृषकम् ।

द्वारा राजा के शर के सहित धनुष को रथ को सारथि को और दुर्वह वर्म को छिन्न कर दिया था । १७। इसके पश्चात् राजा महान् क्रुध हो गया था जबकि उसने अपने समीप में यह देखा था । उसने फिर दत्तात्रेय के द्वारा दी हुई उस एक पुरुष के घात के करने वाली शक्ति को ग्रहण किया था । १८। राजा ने उस समय दत्तात्रेय को प्रणाम किया था और सौ सूर्य के समान प्रभाशाली अत्यन्त मुलण शक्ति को घुमाया था । १९। हे नारद ! समस्त देवों का तेज नारायण का तेज-शंभु और ब्रह्मा तथा माया का तेज जो है उसको वहां पर ही उस योगी ने मन्त्र पूर्वक आवाहन किया था और तेज के द्वारा दशों दिशाओं क द्योतित कर दिया था ॥२०॥२१॥

दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारंचकारह ।
 आकाशस्थाश्चसमरंपश्यन्तोदुःखिता हृदा । १२१।
 चिक्षेपतांघूर्णयित्वाकात्तं वीर्यार्जुनः स्वयम् ।
 सद्यःपपातसाशक्तिर्ज्वलन्ती मुनिवक्षसि । १२३।
 विट्वाप्यरो मुनेः शक्तिर्जगाम हरिसन्निधिम् ।
 दत्ताय हरिणा दत्तादत्ते नैवनृपायसा । १२४।
 मूच्छ्र्वा सम्प्राप्य स मुनिः प्राणां स्तत्याज तत्क्षणम् ।
 तेजो ऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह । १२५।
 युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः ।
 है तात तातेत्युच्चार्य गोलोकंसा जगाम ह । १२६।
 सर्वं सा कथयामास गोलोके कृष्णमीश्वरम् ।
 रत्नसिंहासनस्थं गोपैर्गोपीभिरावृतम् । १२७।
 कृप्येन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा ।
 सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन् भृगुणा जमदग्नये । १२८।
 नत्वा च कामधेनुनां समूहं सा जगाम ह ।
 तदश्रुविन्दुना मर्त्ये रत्नसङ्घो बभूव ह । १२९।

प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुकासती ।
 मुनिवक्षसिसस्थाप्यक्षणं मूर्च्छामिवाप सा ॥३१॥
 तदा सा चेतनां प्राप्य न हरोद पतिव्रता ।
 एहि वत्स भृगोराम राम रामेत्युवाच ह ॥३२॥
 आजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणेन पुष्करादहो ।
 नमाम मातरं भक्त्या मनोयायोचयौगवित् ॥३३॥
 दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकात्तार्त्तां जननीं सतीम् ।
 आकर्ष्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां गुच्चा ॥३४॥
 विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च ।
 चिताञ्चकार योगोन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम् ॥३५॥

अपने प्राणों के स्वामी को मृत सुनकर सती रेणुका वहाँ गई थीं और वह मुनि के शव को वक्षःस्थल पर संस्थापित कर एक क्षण के लिये मूर्च्छित हो गई थीं ॥३१॥ इसके अनन्तर उसने चेतना प्राप्त की और पतिव्रता वह रौने लगी थी । वह हे वत्स । हे राम-हे राम-आओ ऐसा बोली थी ॥३२॥ थोड़ी ही देर में पुष्कर से शीघ्र भृगु वहाँ आ गये थे । मन के अनुसार गमन करने वाले और योग के वेत्ता उसने भक्ति पूर्वक माता को आकर प्रणाम किया था ॥३३॥ राम ने वहाँ पर अपने पिता को मृत और अपनी माता को शोक से दुःखित देखा था और रण का समस्त वृत्तान्त तथा शोक से कपिला का गमन करना श्रवण किया था ॥३४॥ यह सुनकर परशुराम ने हे तात, हे जननी—यह कहते हुये अत्यन्त विलाप वहाँ पर किया था और इसके पश्चात् उस योगेन्द्र ने चन्दन की लकड़ियों से घृत समन्वित चिता बनाई थी ॥३५॥

रेणुका राम मादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि ।
 चुचुम्ब गण्डेशिरसि हरोदोच्चैर्भृशंमुहुः ॥३६॥
 राम राम महाबाहो क्व यामि त्वां विहाय च ।
 वत्सवत्सेतिकृत्वैवविललापभृशंमुहुः ॥३७॥

सार और नीतिका सार माता को समझाया था ॥४२॥

पितुः शासन हन्तारं पितुर्वधविधायकम् ।

यो न हन्ति महामूढोरीरवसन्नजेद्भ्रुवम् ॥४३॥

अग्निदां गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।

क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः ॥४४॥

सतत मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः ।

एकादशते पापिष्ठा वधार्हा वेदसम्मतः ॥४५॥

द्विजानां द्रविणादान स्थानान्निर्वासनं सति ।

वपनं ताडनञ्चैववधमाहुर्मर्नोपिणः ॥४६॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम भृगुः स्वयम् ।

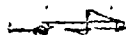
अतित्रस्तो मनस्वी च हृदयेनविद्वयता ॥४७॥

दृष्ट्वा तं रेणुका रामो विनयञ्च चकार ह ।

सतावुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च ॥४८॥

परशुराम ने कहा—पिता के शासन का हनन करने वाले और पिता के वध को करने वाले को जो पुत्र हनन नहीं करता है वह महान् मूढ़ पुत्र निश्चय ही रौरव नरक में पतित होता है ॥४३॥ अग्नि लगाने वाला-विष देने वाला-शस्त्र हाथ में लेकर घन का अपहरण करने वाला-क्षेत्र और स्त्री का अपहरण करने वाला-पितृ बन्धु विहिंसक-निरन्तर मन्द कार्य करने वाला-निन्दक और कटु वचन बोलने वाला ये ग्यारह मनुष्य महान् पापिष्ठ हैं और वध के यो य हैं—ऐसा वेद के समस्त सिद्धान्त हैं ॥४५॥ हे सति ! ब्राह्मणों के घन का लेना-उनको स्थान से निकाल देना वपन कराना और विप्रों का ताड़न करना इन सब कार्यों को मनीषी लोग वध ही कहते हैं ॥४६॥ इसी बीच में वहां पर भृगु स्वयं आ गये थे । यह मनस्वी थे तो भी विद्वयमान हृदय से अत्यन्त त्रस्त हो गये थे ॥४७॥ रेणुका और राम ने उनको देख कर उनसे विनती की थी और उसने उन दोनों से परलोक के हित लिये जो वेदोक्त सिद्धान्त था वह कहा था ॥४८॥

दशा-शान्ति-क्षमा तथा कान्ति आदि सब परमात्मा के चले जाने पर प्राण-ज्ञान और मन सभी चले जाया करते हैं । ५४॥ इसलिये अब पारलौकिक वेद में कथित जो कर्म हैं वह करो । परलोक की भलाई के लिये जो होता है वही बन्धु और पुत्र होता है । ५५॥



५६-परशुरामेण राजसमीपे दूतप्रेषणम् ।

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालाच्य च तैः सह ।
 दूतप्रस्थापयामास कार्त्तवीर्याश्रमंभृगुः ।।
 स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्त राजसंसदि ।
 वेष्टितं सचिवैः साढ्वं मुक्त्वा च नृपतोश्चरम् ।२॥
 नर्मदातीरसान्निध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके ।
 स भृगुभ्रातृभिः साढ्वं त्वं तत्र गन्तुमर्हसि ।।३॥
 युद्धं कुरु महाराज जातिभिर्जातिभिः सह ।
 त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिव्यतिमहोमिति ।४॥
 इत्युक्त्वा रामदूतश्च जगाम रामसन्निधिम् ।
 राजा विधाय सत्राह समरं गन्तुमुद्यतः ।५॥
 गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा ।
 तमेव वारयामास वासयामास सन्निधौ ।६॥
 राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः ।
 तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ।७॥

इस अध्याय में परशुराम के द्वारा राजा के समीप में दूत के भेजने का वृत्तान्त निरूपित किया गया है । नारायण ने कहा — उस भृगु ने प्रातः काल का आह्निक कर्म करके उन सबके साथ विचार

कात्तवीर्यजुं न ने कहा—हे कान्ते ! महान् जमदग्नि का पुत्र मुझको ही बुला रहा है । वह इस समय नर्मदा के तट पर स्थित है और भाइयों के साथ मुझे युद्ध के लिये बुला रहा है ।८। उसने भगवान् शङ्कर से हरि का मन्त्र—कवच और अस्त्र प्राप्त कर लिया है । वह इक्कीस वार इस भूमि को राजाओं से रहित करना चाहता है । ११। वार-वार संक्षुभित मेरा मन हो रहा है और मेरे प्राणों को आन्दोलित करता है । मेरा वाम अङ्ग स्फुरण कर रहा है । हे कान्ते ! मैंने आज स्वप्न देखा है उसका तुम श्रवण करो । १०। मैंने अपने आपको सम्पूर्ण शरीर में तेल लगाकर गधे के ऊपर बैठा हुआ देखा है और घोड़े पुष्प की माला तथा रक्त चन्दन धारण करने वाला अपने आपको देखा है । ११। मैंने स्वप्न में देखा है कि मैं लाल वस्त्र धारण करने वाला तथा लोहे के भूषण पहिने हुये हूँ और निर्वाणाङ्गारों के समूह से क्रीड़ा कर रहा हूँ तथा हंस रहा हूँ । १२। हे सति ! मैंने स्वप्न में इस भूमि को भस्म से आच्छन्न तथा जया के पुष्पों से समन्विता देखा है । यह आकाश मण्डल ऐसा देखा है जिसमें सूर्य और चन्द्र दोनों में कोई भी नहीं है । १२। १३।

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम् ।

शोकात्तानाञ्च वचनं नप्रशंस्यं सभासुच । १४।

सुख दुःखं भयं शोकं कलहः प्रोतिरेव च ।

कर्मभागार्हकालेन सर्वं भवति सुन्दरि । १५।

कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम् ।

कालः सृजतिसंसारं कालः संहरतेपुनः । १६।

करोति पालन कालः कालरूमी जनार्दनः ।

कालस्यकालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेवच । १७।

संहर्तुर्वापि संहर्ता पातुः पाता निपेककृत् ।

स निपेको निपेकेण ददाति तपसां फलम् । १८।

कः केन हन्यते जन्तुनिपेकेण विना सति । १९।

१२१ : पञ्चमः अध्यायः ।
 १२२ : अथ शिवः ।
 १२३ : अथ शिवः ।
 १२४ : अथ शिवः ।
 १२५ : अथ शिवः ।
 १२६ : अथ शिवः ।
 १२७ : अथ शिवः ।
 १२८ : अथ शिवः ।

॥२९॥ अथ शिवः ।

अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।
 अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः । अथ शिवः ।

१० : अथ शिवः ।
 ११ : अथ शिवः ।

उभयोः सेनयोर्द्वन्द्वं बभूव तत्र नारद ।
 पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः ॥
 क्षतविक्षतसर्वाङ्गाः कार्तवीर्यप्रपीडिताः ॥२५॥
 नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां वरः ।
 न ददर्श स्वसैन्यञ्च राजसैन्यं स्वमेव च ॥२६॥
 चिक्षेप वह्निं रामश्च बभूवाग्निमयं रणे ।
 निर्वापयामास राजा वारुणोनावलीलया ॥२७॥
 पपात शूल समरे रामस्योपरि नारद ।

मूर्च्छामवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन् ॥२८॥

इसके अनन्तर परशुराम ने उक्त राजेन्द्र को युद्ध भूमि में देखा था । जोकि रत्नालङ्कारों तथा करोड़ों राजाओं के साथ भूपित होकर वहां आया हुआ था ॥२५॥ रत्नों के छात्र से विभूपित तथा रत्नालङ्कारों से सुशोभित चन्दन से उक्षितसर्वाङ्ग वाले स्मित से युक्त परम सुन्दर मुनीन्द्र को देख कर राजा रथ से उतरा और मुनीन्द्र को प्रणाम करके फिर रथ पर नृपगणों के साथ स्थित हो गया था ॥२२।२३॥ परशुराम ने भी समायोचित उसको शुभाशीर्वाद दिया था । और उस गतार्थ को सानुग स्वर्ग को जाओ-यह कहा था ॥२४॥ हे नारद ! वहां पर दोनों की सेनाओं का युद्ध हुआ था । उस समय परशुराम के शिष्य और महान् बलवान् भाई लोग सब भाग गये थे । कार्तवीर्य के द्वारा सभी क्षत विक्षत अङ्गों वाले एवं प्रपीडित हो गये थे ॥२५॥ राजा के शरों के जाल से शस्त्रधारियों में परम श्रेष्ठ परशुराम ने अपनी सेना-राजा की सेना और अपने आपको भी उस समय नहीं देखा था ॥२६॥ राम ने रण में अग्नि से परिपूर्ण वह्निका क्षेपण किया था । राजा ने वारुणशस्त्र के द्वारा लीला से ही उसको शान्त कर दिया था ॥२७॥ हे नारद ! फिर राजा ने राम के ऊपर शूल का प्रहार किया था उससे युद्ध भूमि में वह भृगु मूर्च्छा को प्राप्त हो गये और हरि का

राजा ने कहा—मैंने क्या पढ़ा है—क्या दिया है और क्या पृथ्वी का शासन किया है ? मुझ जैसे न मालूम कितने ही राजा इस वरणी तल में समुत्पन्न होकर चल वसे हैं ॥३३॥ यह कह कर कार्तवीर्य ने राम को प्रणाम किया था और स्मित के सहित होकर रथ पर आरुढ़ होकर उसने शीघ्र ही उसके शर के सहित धनुष प्रहरण कर लिया था ॥३४॥ इसके अनन्तर राम ने ब्रह्मास्त्र से राजा की सेना का हनन किया था । राजा ने पाशुपत अस्त्र से श्री हरि का स्मरण करते हुये हनन किया था ॥३५॥

एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुन्धराम् ।
 रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवंस्मरन् ॥३६॥
 गर्भस्थं मातृक्रोडस्थं शिशुं वृद्धञ्च मध्यमम् ।
 जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञा पालनाय वै ॥३७॥
 कार्त्तवीर्यश्च गोलोकंजगामकृष्णसन्निधिम् ।
 जगाम परशुरामश्च स्वालयंश्रीहरिस्मरन् ॥३८॥
 त्रिपत्त कृत्वो निर्भूपां महीं दृष्टुः महेश्वरः ।
 पशुना रमणं दृष्ट्वा पशुं रामञ्चकार तम् ॥३९॥
 देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ।
 सर्वे चक्रुः पष्पवृष्टिं राममूर्द्धनि च नारद ॥४०॥
 स्वर्गे दुन्दुभ्यो नेदुर्हरिशब्दो बभूव ह ।
 परशुरामस्य यशसा शुभ्रेण पूरितं जगत् ॥४१॥

इस प्रकार से परशुराम ने इक्कीस बार क्रम से इस वसुन्धरा को भूयों से रहित किया था और शिव का स्मरण करते हुए लीला से ही कर दिया था ॥३६॥ राम ने गर्भ में स्थित-माता की गोद में स्थित शिशु-वृद्ध और प्रौढ़ सभी क्षत्रियों को अपनी प्रतिज्ञा के परिपालन के लिये हनन कर दिया था ॥३७॥ कार्त्तवीर्य राजा भी कृष्ण की सन्निधि में गोलोक को चला गया था और परशुराम श्री हरि का

स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवम् सप्तसु जन्मसु ।

श्रोणीवक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियाः ।

कामतोऽपि विमूढश्च सोऽन्धो भवति निश्चितम् ॥७॥

इस अध्याय में गणेश्वर के समीप में राम का शिव और शिवा के दर्शन की प्रार्थना तथा उन दोनों के कथोप कथन का वर्णन किया गया है । परशुराम ने कहा-हे भाई ! मैं अब ईश्वर को प्रणाम करने के लिये अन्तःपुर में जाऊंगा और भक्ति पूर्वक माता को प्रणाम करके फिर शीघ्र अपने गृह को जाऊंगा ॥१॥ मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को लीला से भूयों से रहित कर दिया है और कार्त्तवीर्य और सुग्यन्द्र को जिस देव एवं देवी की कृपा से मार डाला है उनके दर्शन करना चाहता हूँ ॥२॥ जिनसे मैंने अनेक विद्याएँ प्राप्त की थीं और विविध प्रकार के दुर्लभ शास्त्रों की अध्ययन किया है उन गुरुदेव जगत् के नाथ का इस समय मैं दर्शन करना चाहता हूँ ॥३॥ श्री गणेश्वर ने कहा-हे भाई ! क्षण भर रुको और एक क्षण भर ठहर कर मेरे वचन का श्रवण करो । रहःस्थल में नियुक्त अपनी पत्नी सहित किसी भी पुरुष का दर्शन नहीं करना चाहिए ॥४॥ जो नराधम स्त्री के सहित पुरुष को एकान्त स्थान में देखता है अथवा भंग कर देता है वह निश्चय ही काल सूत्र नामक नरक में जाता है ॥४॥१॥ हे द्विज ! वहाँ उस नरक में वह पापी पुरुष जब तक चन्द्र और सूर्य स्थित रहते हैं तब तक उस नरक में पड़ा रहता है । विशेष कर वह महान् पापिष्ठ होता है जो ऐसी स्थिति में अपने पिता-गुरु और भूत पति को देखता है ॥६॥ ऐसे पुरुष का स्त्री से सप्त जन्मों तक विच्छेद हो जाता है । जो स्त्री का श्रोणी-वक्षःस्थल और पराई स्त्री का मुख देखता है वह भी इस दण्ड का भागी होता है । जो काम से विमूढ होता है वह निश्चय ही भ्रन्वा होता है ॥७॥

गणेशस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भृगुनन्दनः ।

तमुवाच महोकोपान्निष्ठुरं वचनं मुने ।८॥

शक्तियों से भी संयुक्त नहीं होता है । जब वह सृजन करने की इच्छा वाला होता है तो शक्ति में आश्रित होकर निर्गुण भी सगुण हो जाया करता है ॥१३॥ हे महा मुने ! जितने भी ये शरीर हैं वे सब भोग के योग्य हुआ करते हैं और सभी प्राकृत होते हैं केवल श्रीकृष्ण ही का विग्रह अप्राकृत होता है ॥१४॥

गणेशवचनं श्रुत्वा स तदा रागतः सुधीः ।
 पशुं हस्तः पशुं रामो निर्भयो गन्तुमुद्यतः ॥१५॥
 गणेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाययत्नतः ।
 वारयामास संप्रीत्या चकार विनयं पुनः ॥१६॥
 रामस्तं प्रेषयामास हंकृत्वा तु पुनः पुनः ।
 वभूव च ततस्तत्रवाग्युद्धं हस्तकर्षणम् ॥१७॥
 पशुं निक्षेपणं कर्तुं मनश्चके भृगुस्तदा ।
 हाहाकृत्वा कार्तिकेयो बोधयामास संसदि ॥१८॥
 अव्यर्थमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपुत्रे कथं क्षिप ।
 गुरुवद् गुरुपुत्रञ्च मा भवान् हन्तुमर्हति ॥१९॥
 पशुं क्षिपन्तं कुपितं रक्तपद्मदलेक्षणम् ।
 गणेशो रोधयामास निवर्त्तिस्वेत्युवाच तम् ॥२०॥
 पुनर्गणेशं रामश्च प्रेरयामास कोपत ।
 पपात पुरतो वेगाद्धिद्यमानो गजाननः ॥२१॥
 गजाननः समुत्थायधर्मं कृत्वा तु साक्षिणम् ।
 पुनस्तंबोधयामास जितक्रोधः शिवात्मजः ॥२२॥

नारायण ने कहा—उस समय में गणेश ने बहुत क्रुद्ध समझाया तो भी गणेश के वचनों को सुना अनमुनाकर वह सुधी राग से परशु हाथ में लेकर निर्भय होते हुए परशुराम अन्दर गमन करने को समुद्यत हो ही गये थे ॥१५॥ गणेश ने उस समय उठकर देखा तो शीघ्र ही यत्न पूर्वक नीति के साथ पुनः उनको रोका था और विनती की थी ॥१६॥

बिना आपकी अन्दर प्रवेश करने में क्या शक्ति है ? ॥२३॥ आप मेरे भाई हैं जोकि निश्चय ही विद्या के सम्बन्ध से होते हैं—आप इस समय अतिथि के स्वरूप वाले हैं और ईश्वर के परम प्रिय शिष्य हैं इसीलिये मैं यह सब आपकी हठधर्मिता को सहन कर रहा हूँ ॥२४॥ अन्यथा मैं कार्त्तवीर्य नहीं हूँ और न मैं क्षुद्र जन्तु वे राजाओं का समूह ही हूँ जिनको आपने मार गिराया था । हे विप्र ! आप मुझे विश्वेश्वर के पुत्र को नहीं जानते हैं ॥२५॥ हे ब्राह्मण ! हे अतिथे ! एक क्षण मात्र ठहर जाओ । समर में लौट जाओ । एक क्षण के अन्तर में तुम्हारे साथ मैं ईश्वर के समीप में जाऊंगा ॥२६॥ नारायण ने कहा—हे रम्ब (गणेश) के वचन को सुनकर राम बार-बार हंस गये थे । और उसने हरि शंकर को प्रणाम करके अस्त्र के क्षेपण करने का मन किया था ॥२७॥ क्रोध से परशु को फेंकते हुए मरने की इच्छा वाले परशुराम को गजानन ने देखा तो देवेश ने धर्म को साक्षी किया था ॥२८॥

चकारहस्तं योगेन सतदा कोटियोजनम् ।
 योगीन्द्रस्तत्र सन्तिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनःपुनः ।२९।
 शतधा वेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्र वै ।
 ऊर्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्रार्हि गरुडो यथा ।४०।
 सप्तद्वीपांश्च शैलांश्च काञ्चनीं सप्त सागरान् ।
 क्षरोन दर्शयामास रामं योगेन स्तम्भितम् ।३१।
 क्षरोन चेतनां प्राप्य पपात वेगतो भुवि ।
 बभूव दूरीभूतञ्च गणेशस्तम्भनं भृगोः ।३२।
 सस्मार कवच स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम् ।
 अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुरुम् ।३३।
 चिक्षेप पर्शुं मव्यर्थं शिवतुल्यञ्च तेजसा ।
 त्रीणमध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने ।३४।
 पितुरव्यर्थमस्त्रञ्च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम् ।
 जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थञ्चकारह ।३५।

निद्रा वमत्त निद्राया निद्रे गत्वा जगत्प्रभो ।
 आजगान बाहेः सन्धुः पार्वत्या सह सम्भ्रमात् ॥४१॥
 पुरो ददर्श हेरन्वं लोहितास्त्रं क्षतं नतम् ।
 भग्नदन्तं जितक्रोधं सस्मितं लज्जितं मुने ॥४२॥
 यप्रच्छ पार्वती शास्त्रं स्कन्दं किमिति पुत्रक ।
 स च तां कथयामास वात्तां पांवीर्यां भिया ॥४३॥
 कुक्रोप दुर्गा कृपया खरोदच मुहुर्बुहुः ।
 उवाच सन्धोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥४३॥

उस समय में सनस्त देवगण-वीरभद्र-कात्तिकेय-सब पार्षद तथा
 अत्र पान ने महान् भय से आकाश में हाहाकार किया था ॥३७॥
 गरुड का वह दांत रक्त के सहित बड़ी ध्वनि करता हुआ भूमितल
 पर गिर गया था और ऐसा प्रतीत हुआ था मानों गैरिक से युक्त महा
 शक्ति का पर्वत भूमि पर गिर पड़ा हो ॥३८॥ उस समय गरुड के
 दाँवों दाँत के गिरने से ऐसी महा ध्वनि हुई थी कि हे विप्र ! पृथिवी
 भय से कांप गई थी तथा कैनाग गिरि पर रहने वाले सभी मनुष्य
 भय से क्षण भर के लिये नृच्छित हो गये थे ॥३९॥ निद्रा के ईग
 जगत् के प्रभु की निद्रा का भंग ही गया था । सन्धु पार्वती के साथ
 मन्त्रम से बाहिर निकल आये थे ॥४०॥ सानने धिब ने और पार्वती
 ने गरुड को देखा था जो रक्त से लियड़े हुए मुख वाले-क्षत-नत-जिन
 क्रोध-सस्मित-लज्जित और टूटे हुए एक दाँत वाले थे ॥४१॥ हे मुने !
 फिर पार्वती ने वीप्र ही स्कन्द से पूछा था कि हे पुत्र ! यह कैसे
 हुआ है ? उस स्कन्द ने आगे पीछे की सम्पूर्ण बात पार्वती से भय के
 नाप कहकर सुना दी थी ॥४२॥ तब तो दुर्गा देवी बहुत ही क्रोधित
 हुई थीं और बार-बार वह खदन करने लगीं थीं । फिर पार्वती अपने
 पुत्र गरुड को अपनी छाती से लगाकर सन्धु के आगे उसे करके
 बोनीं थीं ॥४३॥

बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विवेचन की एक मौलिक कृति

विष्णु रहस्य

लेखक :—डा० चमन लाल गौतम, पू० सम्पादक 'जीवन यज्ञ' मथुरा, 'युग संस्कृति', वरेली

“यह अपने विषय की प्रथम पुस्तक है। इसमें भगवान् विष्णु के वैज्ञानिक स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है और वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, गीता, पुराण, स्मृति और भारतीय प्राचीन वाङ्मय में वर्णित विष्णु के स्वरूप को भी यथावत रूप में प्रकाशित किया गया है। इसके अतिरिक्त बौद्ध, जैन एवं संत साहित्य के साथ मध्यकालीन काव्य साहित्य में भी वर्णित विष्णु स्वरूप को प्रकट करते हुए भारतीय ललित कलाओं में निहित विष्णु स्वरूप को भी प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार विष्णु की व्यापक मान्यता का स्पष्ट चित्र लेखक ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है।”

इस कृति में अवतारवाद पर वैज्ञानिक रीति से विचार करते हुए विष्णु के विभिन्न अवतारों का जहां रहस्य उद्घाटित किया गया है, वहां विष्णु के मूल स्वरूप तथा विभिन्न अवतारी स्वरूपों से सम्बद्ध अनेक देव, मुनि आदि पात्रों व नायकों तथा उनके आयुष्य आदि विभिन्न पदार्थों के रहस्य को भी प्रकाशित करने का यथाशक्ति मौलिक प्रयास किया गया है।”

यह लेखक का मौलिक प्रयास है और साथ ही इस क्षेत्र में यह सर्वप्रथम पथ प्रदर्शक प्रयास है, अतः सर्वथा प्रशंसनीय व अभिनन्दनीय है।”

—‘साहित्य परिचय’ आगरा

मूल्य केवल ६)

प्रकाशक :—

संस्कृति संस्थान, खवाजाकुतुब, वरेली